

समाज-दर्शन की रूपरेखा

प्रकाशक

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
दिल्ली

●

ॐ १९६२ हिन्दी समुदाय
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

●

प्रथम संस्करण बुलाई १९६२

●

मूल्य

७ रुपये

●

मुद्रक

धर्मप्रकाश मुद्रा

नवीन प्रेस दिल्ली

भूमिका

सम्बन्ध स्कूल बोर्ड इकनामिक्स एण्ड पॉलिटिक्स के १९१६ १७ के सत्र में दिये गए मापकों से इस पुस्तक का आबिर्भाव हुआ। मैंने अपने मापकों की सामान्य रूपरेखा को सुरक्षित रखा है, परन्तु उनकी सामग्री को बढ़ा दिया है। जब इस पुस्तक को सत्रसम तीस वर्ष पूर्व लिखे गए एक 'परिचय' के स्थापन पर समझ जा सकता है जिसका प्रकाशित संस्करण अब प्राप्त नहीं। इस पुस्तक का बोध घोर रूपरेखा पहले की रचनाओं से पर्याप्त रूप से भिन्न है। मेरा उद्देश्य तो इस विषय के विद्यार्थियों के लिए एक उचित पाठ्य-पुस्तक देना रहा है। यह विषय अब अनेकों लोगों द्वारा पढ़ा जाता है परन्तु सभी की धारणा प्राथमिक तैयारी और उद्देश्य बहुत भिन्न होते हैं और उन सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए कोई उपयुक्त पुस्तक लिखना कठिन कार्य ही है। मैंने मुख्य-मुख्य सिद्धांतों को ऐसे ढंग से विस्तार देने का प्रयास किया है जिससे वे प्रारम्भिक पाठकों के लिए बुद्धिमत् और रोचक हो सकें। और इसके साथ ही कुछ ऐसी सामग्री प्रदान करने की कोशिश की है जो अल्प श्रेणी के छात्रों के लिए साहाय्यक सिद्ध हो तथा उन्हें इस विषय में उठने वाले प्रश्नों पर प्रकाश डालने के लिए सहाय्य प्रदान करे। इस प्रकार के प्रयासों के लिए कई स्थानों पर नोटों के 'रिपब्लिक' का सामान्य आचार के रूप में प्रयोग किया गया है। मेरा विश्वास है कि यह एक उचित प्रयत्न है और इसी आचार पर मैंने इस कृति का सर्वत्र जल्दोत्तर किया है और परिशिष्ट में उस पर कुछ टिप्पणियाँ भी जोड़ी हैं। जो पाठक 'रिपब्लिक' का अध्ययन न कर रहे हों वे इन टिप्पणियों को छोड़ सकते हैं। प्रारम्भिक पाठक भी इस पुस्तक के प्रथम अध्ययन में इसके परिचय तथा द्वितीय अध्याय के अनुपम अध्याय के अन्त में प्रस्तुत टिप्पणी को छोड़ सकता है।

इस प्रकार के विषय का विवेचन करते हुए अपने देस और काल अर्थात् वर्तमान समस्याओं का प्रचुर मात्रा में जल्दोत्तर देना उचित और स्वाभाविक ही लगता है। उनमें भी कुछ माम के नयों की बटनाओं को जो उचित महत्त्व दिया गया है वह भी विवेचन लाञ्छनीय है। मैंने परापोषक ढंग से बचतियों से बूझ रहे थे या भी प्रयास किया है। मुझे अच्छी तरह पता है कि जिस विषयों का मैंने जल्दोत्तर किया है उन्हें अनेकों विभिन्न पक्षों से देखा जा सकता है और

उन्को साथ सम्बन्ध-समस्याओं को लेखना के इत्फाकिया प्रबल से ही नहीं सुल-
 जाया जा सकता । मेरा सर्वत्र मुख्य उद्देश्य तो पाठकों को सूचना प्रदान करने
 का था अपने मंथन को कोपने के प्रयत्न की अपेक्षा उनके विचारों को श्रेष्ठ
 तथा अध्ययन की दिशाओं में सुझाव देना रहा है । मेरे सामान्य विचार व्यापक
 रूप से टी० एच० पीन तथा डॉ० बोसोंके जैसे लेखकों के विचारों पर आधारित
 हैं । यदि यह पुस्तक कुछ पाठकों को इन पूर्वोक्त तथा अन्य लेखकों की नीति
 वादीय तथा राजनीति-सम्बन्धी कृतियों से परिचय कराने में कुछ सहायता कर
 सके तो मेरा मुख्य ध्येय सिद्ध होगा ।

जे० एस० मेकेंजी

विषय सूची

प्रस्तावना
परिषय

१

१ सामाजिक-दर्शन का लक्ष्य २ अन्य शास्त्रों के साथ इसका सम्बन्ध ३ इसकी विधियाँ ४ इसका प्रारम्भिक रूप ५ भाव का विकास ६ इसकी केन्द्रीय समस्याएँ ।

प्रथम खण्ड

समाज-व्यवस्था का आधार

प्रथम अध्याय

मानव प्रकृति

१५

१ ब्रह्माण्ड में मानव का स्थान २ मानव की परिमाणा ३ मानव जीवन के तीन मुख्य पहलू ४ मानव की सामाजिक प्रकृति ५ कुछ ऐतिहासिक विवरण ।

द्वितीय अध्याय

समुदाय

२६

१ समुदाय का प्राकृतिक आधार २ समुदाय में परम्परागत तत्व ३ सामाजिक संविदा की अवधारणा ४ धनीय एवता की अवधारणा ५ मजबूत नियमित कार्य ६ सामाज्य इच्छा की अवधारणा ७ सामाज्य हित की अवधारणा ८ धार्मिक एवता ९ सामाजिक भिन्नताएँ ।

तृतीय अध्याय

साहचर्य-प्रणालियाँ

४६

१ समाज और अनेक समाज सामाजिक संस्थाएँ ३ भाषा का स्थान ४ निर्माणशास्त्रिक संस्थाएँ ५ धार्मिक संस्थाएँ ६ बर्बर संस्थाएँ ७ सरकार-सम्बन्धी संस्थाएँ, ८ नास्तुति

संस्कारों, ९ संस्कारों की धर्मोप-विधा १० सभ्यता का धर्म धारण के धर्मियों की रूपरेखा ।

द्वितीय अध्याय

राष्ट्रीय-धर्मस्था

प्रथम अध्याय

परिवार

—५७

१ परिवार का प्राकृतिक आधार २ परिवार का परम्परागत पहलु ३ बच्चा केन्द्र के रूप में ४ लैंगिक-धर्म ५ विवाह ६ परिवार के सामूहिक काम ७ परिवार के धार्मिक कार्य ८ परिवार की कमजोरियाँ ।

द्वितीय अध्याय

सामूहिक सभ्यताएँ

—७१

१ शिक्षा का सामूहिक महत्त्व २ शांति के कार्य ३ तकनीकी शिक्षा ४ बाल शिक्षा ५ पूरक शिक्षा ६ शिक्षा और धर्मकास ७ राज्य और शिक्षा ।

तृतीय अध्याय

सामूहिक सभ्यताएँ

—८३

१ धर्म का महत्त्व २ धर्म-विकास ३ सहकारिता ४ धर्म से सम्बन्धित भूमि और पुत्री ५ सम्पत्ति ६ धर्म और निर्भयता ७ प्रतिभोक्तिता ८ धर्मशास्त्र और समाजवाद । ९ धर्म और धर्मकास ।

चतुर्थ अध्याय

राज्य

—९५

१ राज्य क्या है—(१) स्वतंत्रता (२) अनुशासन (३) जनता (४) धर्म (५) शांति (६) राष्ट्रियता (७) राष्ट्र (८) सरकार (९) राज्य (१०) सम्पूर्ण प्रकृतिक-सामूहिक राज्य २ राज्य का प्राकृतिक आधार ३ धर्म के रूप में राज्य ४ कानून निर्माता के रूप में राज्य ५ राज्य और परिवार ६ शिक्षा के रूप में राज्य ७ राज्य और भूमिधरता ८ सरकार के प्रकार ९ स्थानीय सरकार १ राज्य का धर्म-विकास । राज्य-न्यायधीन शिक्षाधीन धर्म शिक्षाधीन ।

पंचम अध्याय

न्याय

— १२१

१ न्याय-सम्बन्धी सामान्य भवधारणा २ विवरण सम्बन्धी न्याय
३ लोचक न्याय ४ विविध सम्बन्धी न्याय ५ पुरस्कार और
दण्ड (१ साम्य) ७ प्राकृतिक अधिकार ८ अधिकार और
भावेन्द्र ।

षष्ठम अध्याय

सामाजिक भावर्ष

१३५

१ भावर्षों का सामान्य महत्त्व २ अधिजात्य भावर्षों ३ लोक
तन्त्रात्मक भावर्ष ४ भावर्ष ५ समता ६ स्वतन्त्रता
७ व्यक्तिगत विकास ८ स्वतन्त्रता ९ सामाजिक भावर्ष संक्षिप्त
रूप में ।

तृतीय खण्ड

विश्व-व्यवस्था

प्रथम अध्याय

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

१५१

१ सामान्य रूपन २ अन्तर्राष्ट्रीय नीतिकता ३ अन्तर्राष्ट्रीय
कागूत ४ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ५ युद्ध और शान्ति
६ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रगति ।

द्वितीय अध्याय

धर्म का स्थान

१६३

१ धर्म का धर्म २ धर्म के प्रमुख पहलू, ३ धार्मिक संस्थाएँ
४ धिया में धर्म ५ धर्म और समाज सेवा ६ धर्म और
धर्म ७ धार्मिक सहिष्णुता ८ अन्तर्राष्ट्रीय धर्म ९ धर्मों
के बीच १० धर्म में प्रगति ।

तृतीय अध्याय

संस्कृति का स्थान

१८३

१ संस्कृति का धर्म २ संस्कृति और पाश्चिम्य प्रकाशन ३ विज्ञान
का स्थान ४ कला का स्थान ५ साहित्य का स्थान ६
धर्म का स्थान ७ वैयक्तिक अनुभूति का स्थान ८ संस्कृति

का सामाजिक महत्त्व ६ मानव जीवन के लक्ष्य के रूप में
 संस्कृति ।

उपसंहार

सामान्य परिणाम १६५

१ सारम २ समाज-रक्षण का व्यावहारिक सूत्र ३ प्रगति
 की प्रमुख विभाएँ—(क) प्रकृति पर नियंत्रण (ख) सामाजिक
 नियंत्रण (घ) भारत नियंत्रण ४ प्रमुख खतरे—(१) वर्षी
 घातकपक्षियों की प्रभुता (२) पारंपरिक प्रकृतियों की
 प्रकृता (३) पारंपरिक प्रकृता (४) घातकपक्षिता (५) कृषिवाद
 ५ भाषा के मुख्य अधिकार ।

परिशिष्ट—क

प्लेटो के रिपब्लिक पर कुछ टिप्पणियाँ २११

१ प्रारम्भिक परिचय २ प्रथम पुस्तक का विवेचन ३ द्वितीय
 चतुर्थ पुस्तकों का विवेचन ४ पंचम-सप्तम पुस्तकों का विवेचन
 ५ अष्टम एवं नवम पुस्तकों का विवेचन ६ दशम पुस्तक का
 विवेचन ।

परिशिष्ट—ख

मुक्तचित्त तथा प्लेटो पर टिप्पणी २२५

परिशिष्ट—ग

पुस्तक-सूची २३०

परिचय

सामाजिक दर्शन (सोसल विनासफी) को पूरा रूप से एक दृष्टक विषय के रूप में अध्ययन का व्यवसर वर्तमान काल में ही प्राप्त हुआ है और इसका

एक काफ़ी मुनिश्चित ढंग में प्रयोग होने लगा है। इसका

१ सामाजिक-इशान समाज-शास्त्र (सोसियोलॉजी)से घपना प्रसंग शत्र है।
का क्षेत्र समाज-शास्त्र की ध्याना बादि ध्यानाक धर्षों में की

बाए तो समाज-दर्शन को उसके एक निश्चित ढंग क

रूप में ग्रहण करना पड़ेगा। समाज-शास्त्र भावा-सम्बन्धी धर्काधों से सुरत एक प्रस्पष्ट दृष्ट होने पर भी ध्यानाक ढंग बाभा भाभा बाएगा। इससे मानव-समाज

के उद्भव उनके विभिन्न रूपों का अध्ययन नियम बड़ाधार सत्वा, भाषा विद्वांस विचारबारा बावना और कार्य धादि को ज्ञानकाये प्राप्त करना है।

संशोध में यह कहा जा सकता है कि मानव-जीवन को समस्त ज्ञानकाये समाज वास्तव के धर्मर्यंत ही धा जाती है। समाज शास्त्र का धनक विभिन्न धर्मवाधों

में लसी तरह का सम्बन्ध है जिस तरह धर्म-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र धन शास्त्र, नुजनन-शास्त्र विद्या-शास्त्र नीति-शास्त्र धादि का घपनी समस्थाधों

से। धत यह ऐया विषय है जिसे कठिनाई से ही कोई एक व्यक्ति एक पुस्तक में पूर्णत बलिष्ठ कर सक। इन सभी तरह विभागों में बाटना पहना जिस जीव

विज्ञान की धनपरति विज्ञान प्राणि-विज्ञान तथा वरीर-रचना-विज्ञान के धनेक उपविभागों में विभक्त करना बड़ता है। समाज-दर्शन का क्षेत्र समाज-शास्त्र से

धमिक सीमित है। यह घपनी एक नीमा मं बंधा है। यह समाज-शास्त्र की विधेय धाबाधों में लसी तरह भिन्न है जिस तरह सामान्य रूप में दशन धारत्र धम्य विधेय विज्ञानों से दृष्टक है।^१

१ इस धिद धर बा० र के बाविद में बाकी पुस्तक द दिवामनी धरिमाशास्त्र मोंधेन में लक्ष्मी नाह से प्रसंग बाभा है। निरनमें समाज शास्त्र की विभिन्न विधिष्ट शाकाधों पर धरूर भाषा में निघा गया है पर धनमात्र धाल में इन धरूपुव दिधक धर निधने बा बाेर धग्दा प्रदास मरीं दिवा दया लैदिन धनेदिवा में इस तरह का निगुन

परन्तु यह उनका विस्मयण करने की चप्टा करता है। यह कैम हाता है। वमण धाने मानुम पड़ेगा। सामान्य बलम्य क रूप म इतना ही पर्याप्त है।¹

समाज शास्त्र के प्रथमतः धाने बाने विज्ञाना में समाज शास्त्र का सामान्य स्थान पहल ही संत बुके है। पर हम इसका सम्बन्ध कुछ विधेय सामाजिक विपर्या क साप देलना है। जिनक साज इसका यमिष्ठ २ प्रथम सास्त्रों क साप सम्बन्ध है। इनन स प्रपात शास्त्र हैं—जीव विज्ञान इसका सम्बन्ध मनोविज्ञान मिथा-शास्त्र नीति शास्त्र राजनीति शास्त्र कानून धर्म-शास्त्र इतिहास धोर धर्म शास्त्र। इनका सम्बन्ध संक्षेप म निम्नलिखित प्रकार स है—

मानव-जाति स्पष्टतः जीवन का एक प्रकार है। जीवन क सामान्य अध्ययन स उसक स्वभाव पर घबड़ा प्रकारा दासा जा सकता है। विघपठ विकासवाद की प्रकाशमान विचारधारा हमार इस अध्ययन म सहायक हो सकती है, जैसे यह धन्य महत्त्वपूर्ण अध्ययना म सहायक रही है। इरवट स्पेन्सर का कार्य धन्य प्रकार म कुछ भी महत्त्व रखता हो पर मानव-जीवन की व्याख्या के रूप म उसन जो विचार स्पष्ट किय तथा उस जो पुष्टि दी है। उसके लिए वह हमसा प्रयत्न का पात्र रहेगा। निस्सन्देह उसक मत का पूर्वाभास प्रस्तुत हीगत क्रॉम्ट और धन्य लोगों की विचारधारा म मिलता है। धमेक दृष्टिकोणों स इनक विस्मयण विमपठ प्रथम सा विज्ञाना क बड़ महत्त्वपूर्ण है। परन्तु सामान्य जीव-विज्ञान क साज सम्बन्ध सम्भवतः निश्चित रूप स स्पेन्सर म ही स्थापित किया है।

मानव-जीवन म जतना का प्रस्तित्व ही उनका सबसे बड़ा महत्त्व धोर विघप मधण है जो उसके प्रम-विक्राय की निम्न तथा उन्नत प्रवस्थाओं में

१. समाज-दशा म जो समाज शास्त्र क क्षेत्र के प्रथमतः मान सना जन्म है वा नहीं, इस विषय पर आधुनिक संशोधनों क विचारों में मठभेद है।

धमेके महोरन का निधान का संस्थापक माना जाय है। व रोमे समाज के सामान्य-दशा म प्रयुक्त करने का भी प्रयास किया है। इसी तरह इरवट स्पेन्सर महाकप के बारे में जो कहा जा सकता है। परन्तु इन दोनों विषयों क बारे में यह संदेहास्पद है कि क्या इरॉन-सम्बन्धी इनकी यह विचार धारा आधुनिक-विज्ञान का रूप धारण करने के लिए पर्याप्त है? या दरमिज जरा प्रतिधारित समाज-शास्त्र विधि का सामान्य विवरण बारा म इस विषय का महत्त्वपूर्ण धार दे। पर उक्तमें जो समाज-शास्त्र पर कुछ प्रयत्न नहीं वाला गया है। दूसरी तरफ जो ध्यान के धरनी पुस्तक उत्तम मोशिया साजी रूप -३ में उने स्थान दिया है। समाज शास्त्र के विगत प्रवस्थापक रूप को दृष्टि में एतल दुर नरा यह विचार है कि उसके सभी विचार विवरणों क प्रारम्भ में आरम्भ के सामान्य उन दार में समाज-दशा के रूप म आते निज ही क विचार स संभव है वा न मडना है।

विज्ञान विद्येय तत्त्वों पर सामान्य चर्चों प्रथम इन चर्चों का समूह होता है। इसके साथ ही उक्त खोजने के लिए कुछ-एक परिमित प्रश्नों तक सीमित रहने वाली संयोजित विधियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। उसमें उन तत्त्वों और तत्त्वों को उसी सीमित धर्म में ध्याना करने और समझने का दृष्टि कोण भी निहित रहता है। मानव-जीवन जो बहुत-कुछ धर्मों में सर्वत्र सामाजिक होता है कुछ ऐसे उद्देश्य उपस्थित करता है जिनके सम्बन्ध में विविध विधियाँ निर्धारित की जा सकें तथा बहुत से अधिकतर एक महत्वपूर्ण तत्त्वों तथा तत्त्वों की पुष्टि को जा सकें। समाज-शास्त्र का हमसे सम्बन्ध है परन्तु इसे उनसे उसी प्रकार पृथक् किया जा सकता है जिस प्रकार मानव-जीवन के व्यक्तिगत पहलुओं को सामाजिक जीवन से। यदि मानव विज्ञान से मानवता के साधारण सम्बन्ध का धर्म लिया जाता है तो उस दो प्रमुख शाखाओं—व्यक्ति-शास्त्र तथा समाज-शास्त्र-के रूप में विभक्त किया जा सकता है। इनमें से भी प्रथम को अपने पृथक् शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। दूसरी ओर दर्शन-शास्त्र जिसकी विज्ञान से अपनी पृथक् स्थिति है कुछ विशेष तत्त्वों के बारे में चिन्तन का प्रयास है जो पूर्व से सम्मिलित है। अपने व्यापक चर्चों के रूप में वह अपने अनुभवजन्य संसार के विशेष तत्त्वों और तत्त्वों की ध्याना करने की चेष्टा करता है जो समूचे विश्व प्रथम ब्रह्माण्ड का धर्म या पहलु है। समाज-दर्शन विद्येय रूप से मानव-जाति के सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और उस संगठन के साथ वह मानव-जीवन के सामाजिक पहलुओं के महत्त्व की ध्याना करने का प्रयास करता है। वह विद्येय रूप से जीवन के मूल्यों उद्देश्यों तथा धारणों का सम्बन्ध है, परन्तु उनका सम्बन्ध नहीं जो प्राथमिक रूप से धरणीय है या रहे हैं या धरणीय हो सकते हैं किन्तु जीवन के इन तत्त्वों का धर्म और महत्त्व लिया जाता है। इसका धर्म यह नहीं कि कुछ विशेष समाज-विज्ञान जिन बातों की पुष्टि करता है यह उनको जनेसा करता है। दर्शन-शास्त्र में किसी भी बात की जनेसा करना संभव है। समाज-दर्शन का विशेष धर्म तत्त्वों की खोज करना नहीं बल्कि इन धर्म विज्ञानों से अपने तत्त्व पहलु करने पड़ते हैं

साहित्य प्राण है। मरत एक बात की रचनाई जति शुरुवात है और जति संविद्य निररक में एक एक सिद्धि महोदय की पुस्तक 'दिशितरक एक सोहावती' में मिल सकता है (इसमें एक कथन पुस्तक-रूपी भी दी हुई है)। साहित्यिक इतिहास में जो एक एक धारा की पुस्तक मरत ओषिधाताजी की जनेसा है। जो समाज और विज्ञान की एक छोटी पुस्तक इन इतिहासिक रूप में छोटी एक सोहावती' इस विषय के प्राथमिक लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध होती।

परन्तु यह उनका विरमण करने की चला करता है। यह कंस होता है जमण
प्राप्ति मानुस पक्ष्या सामान्य बलव्य क रूप म इतना ही पर्याप्त है।
समाज-शास्त्र क अन्तगत भ्रम वाले विज्ञान म समाज र्दान का सामान्य
स्थान पहल ही हेम चुक है। अब हम इसका सम्बन्ध कुछ विमेष सामाजिक

२ अन्व्य दास्त्रों के साथ सम्बन्ध है। इनम स प्रयात दास्त्र है—जीव विज्ञान
इसका सम्बन्ध मनोविज्ञान विद्या-शास्त्र नीति-शास्त्र राजनीति
शास्त्र कानून धर्म-शास्त्र इतिहास और धर्म शास्त्र।

इनका सम्बन्ध संशय म निम्नलिखित प्रकार स है—
मानव-जाति स्पष्टत जीवन का एक प्रकार है। जीवन क सामान्य अध्ययन
स उसक स्वभाव पर अन्वेषण प्रकाश डाला जा सकता है। विषयत विकासवाद
की प्रकाशमान विचारप्राप्ता हमारे इस अध्ययन म सहायक हो सकती है,
जैस बहु धर्म्य महत्त्वपूर्ण अध्ययनों म सहायक रही है। हरबट स्पेन्सर का
काय धर्म्य प्रकार से कुछ नी महरण रखता हो पर मानव जीवन की व्याख्या
क रूप म जगन या विचार व्यक्त क्रिय तथा उस जो पुष्टि हो है उसके लिए
बहु हमेसा प्रससा वा पात्र रहुवा। निस्सम्बद्ध उसक मत का पूर्वाभास परल्लू
हीमल कोटे और धर्म्य नामा की विचारप्राप्ता म मिलता है। प्रमक दृष्टिकारणों
स उनक निस्सेपण विषयत प्रथम वा विज्ञानों क बहु महत्त्वपूर्ण है। परन्तु
सामान्य जीव-विज्ञान क साथ सम्बन्ध सम्भवत निश्चिन रूप स स्पेन्सर न ही
स्थापित किया है।

मानव-जीवन म जतना का अस्तित्व हो उसका सबसे बड़ा महत्त्व और
विषय लक्षण है वा उसके जम-विनाम की निम्न तथा उन्नत अवस्थाओं में

- १ समाज-दान को समाज शास्त्र के क्षेत्र क अन्तगत नाम लेना उचित है वा नहीं, इस
विषय पर कानुनिक क्षेत्रों क विचारों में मतभेद है।
कोन्ट महोदय को विज्ञान का अन्वेषण माना जाता है। उन्होंने समाज के
सामाजिक-दान का प्रश्न करने का नी प्रकाश किया है। परन्तु अब दोनों विचारों क बारे में स्प
महोदय क बारे में नी कहा जा सकता है। परन्तु अब दोनों विचारों क बारे में स्प
सन्देहास्पद है कि क्या दान-स जमी बनकी यह विषय भाग अन्वेषण शिला का रूप
धारण करने क निष्कर्षों है? या दक्षिण द्वारा प्रतिपादित समाज शास्त्र-विधि
क सामान्य विषय दान में हम विषय का महत्त्वपूर्ण धार दे पर उसमें भी
समाज-दान पर कुछ प्रकाश नहीं डाला गया है। दूसरी तरफ प्रो एचड वे
पानी पुलक अन्वेषण नीतिशास्त्री एच एच मै ग्रे स्थान दिया है। समाज शास्त्र
के विषय प्रनाशात्मक रूप को दक्षि में स्थान दान का पर विचार है कि इसके सभी
विचार विचारों क आन्ध्र में और रूप क सामान्य रूप पर में समाज-दान के
कुछ में नाद निम्न को के परिवार स सम रूप दिया जा सकता है।

विज्ञान विशेष तथ्यों या सामान्य सत्यों प्रकटा इन बातों का समूह होता है। इसके साथ ही उसे खोजने के लिए कुछ-एक परिमित पदार्थों तक सीमित रहने वाली समोचित विधियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। उसमें उन तथ्यों और सत्यों को उची सीमित ध्वन में व्याख्या करने और समझने का दृष्टि कोण भी निहित रहता है। मानव-जीवन को बहुत-कुछ घंटों में संक्षेप सामाजिक होता है। कुछ ऐसे उद्देश्य उपस्थित करता है जिनके अध्ययन से विभिन्न विधियाँ निर्धारित की जा सकें तथा बहुत से शक्तिर एव महत्त्वपूर्ण तथ्यों तथा सत्यों की पुष्टि की जा सके। समाज-शास्त्र का इनसे सम्बन्ध है परन्तु इसे उनसे उची प्रकार पृथक् किया जा सकता है जिस प्रकार मानव-जीवन के व्यक्तिगत पहलु को सामाजिक जीवन से। यदि मानव विज्ञान से मानवता के सामारण अध्ययन का अर्थ लिया जाता है तो उससे प्रमुख शाखाएँ—व्यक्ति-शास्त्र तथा समाज-शास्त्र-के रूप में विभक्त किया जा सकता है। इनमें से भी प्रत्येक को धनेक पृथक् शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। दूसरी ओर दर्शन-शास्त्र जिसकी विज्ञान से अपनी पृथक् स्थिति है कुछ विशेष तथ्यों के बारे में चिन्तन का प्रयास है जो पूर्व से सम्बन्धित है। अपने व्यापक उद्देश्यों के रूप में वह अपने प्रमुखवाचक संसार के विशेष तथ्यों और सत्यों की व्याख्या करने की चेष्टा करता है जो समूचे विश्व प्रकटा ब्रह्माण्ड का अर्थ या पहलु है। समाज-दर्शन विशेष रूप से मानव-जाति के सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और उस संगठन के साथ वह मानव-जीवन के सामाजिक पहलुओं के महत्त्व की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह विशेष रूप से जीवन के भूत्यों उद्देश्यों तथा प्रावर्तों का अध्ययन है, परन्तु उनका अध्ययन नहीं जो प्राथमिक रूप से अपेक्षित है या रहे है या अपेक्षित हो सकते हैं किन्तु जीवन के इन रूपों का अर्थ और महत्त्व लिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि कुछ विशेष समाज-विज्ञान जिन बातों की पुष्टि करते हैं यह उनकी उपेक्षा करता है। दर्शन-शास्त्र में किसी भी बात की उपेक्षा करना मयाह्व है। समाज-दर्शन का विशेष कार्य तथ्यों की खोज करना नहीं क्योंकि इन अर्थ विज्ञानों में अपने तथ्य ग्रहण करने पड़ते हैं

साहित्य प्राप्त है। अन्तर एक शक्ति की रचनाएँ अति सुन्दर हैं और जिनके संक्षिप्त विवरण में एक नए विद्विद् महोदय की पुस्तक 'मिथिलपत्त अफ सोसायटी' में मिल सकता है (इसमें एक उद्यम बुद्धि-शुद्धी की ही इत है)। आधुनिक इतिहास में जो एक उद्यम की पुस्तक अन्तर सोशियलिस्टों की उन्नीसवीं है। जो समाज और विन्सेबर की एक छोटी पुस्तक 'न एन्डोइजटन इ ए न्यूरी ऑफ सोसायटी' एक दिवस के मारजिक लोगों के लिए उपरोक्त लिखे शक्ति है।

विज्ञान विशेष तथ्यों या सामान्य तथ्यों भ्रमवा इन दोनों का समूह होता है। इसके साथ ही उसे जोखने के लिए कुछ-एक परिमित पदार्थों तक सीमित रहने वाली संश्लेषित विधियाँ भी सम्मिलित रहती हैं। उसमें उन तथ्यों और तथ्यों को उची सीमित क्षम में ध्याक्या करने और समझने का दृष्टि-कोण भी निहित रहता है। मानव-जीवन को बहुत-कुछ घंटों में सरल सामाजिक होता है कुछ ऐसे उद्देश्य उपस्थित करता है जिनके अध्ययन से विविध विधियाँ निर्धारित की जा सकें तथा बहुत से बचिकर एवं महत्वपूर्ण तथ्यों तथा तथ्यों की पुष्टि की जा सके। समाज-शास्त्र का इनसं सम्बन्ध है परन्तु इस उनसे उची प्रकार पृथक किया जा सकता है जिस प्रकार मानव-जीवन के व्यक्तिगत पहलु को सामाजिक जीवन से। यदि मानव विज्ञान से मानवता के साधारण अध्ययन का धर्म लिपा जाता है तो उसे दो प्रमुख शाखाओं—अभित-शास्त्र तथा समाज-शास्त्र-के रूप में विभक्त किया जा सकता है। इनमें से भी प्रत्येक को धनेक पृथक शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है। इसी और दर्शन-शास्त्र जिसकी विज्ञान से अपनी पृथक् स्थिति है कुछ विशेष तथ्यों के बारे में विस्तृत का प्रयास है जो पूर्व से सम्बन्धित है। अपने व्यापक उद्देश्यों के रूप में वह अपने अनुमानात्मक संसार के विशेष तथ्यों और तथ्यों की ध्याक्या करने की चेष्टा करता है जो समूचे विश्व भ्रमवा ब्रह्माण्ड का भय या पहलु है। समाज-दर्शन विशेष रूप से मानव-जाति के सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और उस संगठन के साथ वह मानव-जीवन के सामाजिक पहलुओं के महत्व की ध्याक्या करने का प्रयास करता है। यह विशेष रूप से जीवन के मूल्यों उद्देश्यों तथा धारणों का अध्ययन है परन्तु उनका अध्ययन नहीं जो प्राथमिक रूप से अपेक्षित है या रहे है या अपेक्षित हो सकते हैं किन्तु जीवन के इन रूपों का धर्म और महत्व लिया जाता है। इसका धर्म यह नहीं कि कुछ विशेष समाज-विज्ञान जिन बातों की पुष्टि करते हैं यह उनकी उपेक्षा करता है। दर्शन-शास्त्र में किसी भी बात की उपेक्षा करना भयावह है। समाज-दर्शन का विशेष धर्म तथ्यों की खोज करता नहीं क्योंकि हमें प्रायः विज्ञानों से अपने तथ्य ग्रहण करने पड़ते हैं

साहित्य प्रायः है। शब्द एक बात की एतन्तरे प्रति हानो है और जबकि संचित विवरण को एक एक निश्चित महोदय की तुल्य विनिश्चित व्यक्त होता है। (इसमें एक कथन पुस्तक-रूपी भी दी हुई है)। आधुनिक हठियों में जो एक एक एतन्त की तुल्य 'जगत साहित्यशास्त्री' भी बल्ले-धर्म है। जो एक एतन्त और विन्धे-रु की एक छोटी पुस्तक इन हठोत्तरतम हू ए हठी व्यक्त साहित्यी हठ विवरण के आर्थिक लोगों के लिए उपरोधी विवरण होती है।

परन्तु यह उमका विज्ञापण करने की चेष्टा करता है। यह कैसे होता है, कमजोर भाषे मातृम पढ़ना सामान्य बाल्य क रूप में इतना ही पर्याप्त है।^१

समाज-शास्त्र के अन्तर्गत जाने वाले विज्ञानों में समाज-दर्शन का सामान्य स्थान पहले ही देना चुके हैं। प्रथम रूपे इसका सम्बन्ध कुछ विशेष सामाजिक विषयों के साथ देना है। जिनके साथ इसका संबंध प्रथम शास्त्रों के साथ सम्बन्ध है। इनमें से प्रधान शास्त्र हैं—जीव-विज्ञान इनका सम्बन्ध मनोविज्ञान शिशा-शास्त्र नीति शास्त्र राजनीति शास्त्र कानून, धर्म-शास्त्र इतिहास और वन शास्त्र। इनका सम्बन्ध संगण में निम्नलिखित प्रकार से है—

मानव-जाति स्पष्टतः जीवन का एक प्रकार है। जीवन के सामान्य अध्ययन से उसके स्वभाव पर अच्छा प्रकार ज्ञान जा सकता है। विशेषतः विकासवाद की प्रचलित विचारधारा हमारे इस अध्ययन में सहायक हो सकती है, जैसे वह अन्य महत्वपूर्ण अध्ययनों में सहायक रही है। हरबर्ट स्पेन्सर का नाम अन्य प्रकार से कुछ भी महत्त्व रखता हो पर मानव-जीवन की व्याख्या के रूप में उमने जो विचार व्यक्त किये तथा उसे जो पुष्टि दी है उससे किण्व वह हमें प्रथमता का पात्र रहेगा। मिस्रमैह उसका मत का पूर्वाभास प्रस्तुत हीमन कोर्टे और अन्य लोगों की विचारधारा में मिलता है। अनेक दृष्टिकोणों से उनके विवेचण विशेषतः प्रथम या विज्ञानों के बड़े महत्वपूर्ण हैं। परन्तु सामान्य जीव-विज्ञान के साथ सम्बन्ध सम्भवतः निश्चित रूप से स्पेन्सर में ही स्थापित किया है।

मानव-जीवन में जन्म का अस्तित्व ही उमका सबसे बड़ा महत्त्व और विशेष मध्य है जो उमके जन्म-विश्वास की निम्न तथा उन्नत अवस्थाओं में

१. गमाइ-रयान को समाज शास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत मान लेना उचित है या नहीं, इस विषय पर अल्पनिष्ठ लेखकों के विचारों में मतभेद है।

डॉ. ए. जे. होब्स को शिशा का संस्थापक माना जाता है। उन्होंने समाज के सामान्य-दर्शन का प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न किया है। उन्हीं तरह हरबर्ट स्पेन्सर महत्त्व के बारे में जो कहा जा सकता है। परन्तु इन दोनों विचारों के बारे में यह लक्ष्य-साधक है कि क्या वर्तमान अन्तर्गत इनकी यह विचारधारा आधार शिशा का रूप धारण करने के लिए बर्तोज है? प्रा. ए. टाटलम द्वारा प्रतिपादित समाज शास्त्र-निधि का सामान्य विचारधारा में इन विचारों का महत्वपूर्ण अर्थ है, पर जहाँ भी समाज-दर्शन पर कुछ प्रकाश में आया गया है। दूसरी तरफ प्रा. ए. स्मान ने प्रथम पुस्तक अन्तर्गत शिशा का जो कुछ है उसे स्थापित किया है। समाज शास्त्र के विज्ञान प्रभावशालक रूप को शिशा में समाज का प्रकाश है कि उसके लक्ष्य विज्ञान विचारों के प्रारम्भ में शिशा का सामान्य उपाय में समाज-दर्शन के रूप में समाज-विज्ञानों के परिचय का समर्थन दिया जा सकता है।

स्पष्ट बीज पड़ता है। इस सम्बन्ध में हमें जेतना की व्याख्या करने कास विज्ञान से सहायता लेनी पड़ेगी। मानव-समाज की कार्य प्रकृतियों तथा विकास के बारे में सोचते समय हम क्षुब्ध मनोवृत्ति तथा संवेग भावि की व्यवहेतना नहीं कर सकते। मानव प्रकृति के इन पहलुओं का साधारणतः मनोविज्ञान के विज्ञान उनकी विस्तृत व्यक्तिगत अभिव्यक्ति में अध्ययन करते हैं। परन्तु समाज-मनोविज्ञान को भी अब अध्ययन की एक महत्वपूर्ण शाखा मान लिया गया है।^१ भीड़ मनो-विज्ञान इसकी एक विशेष शाखा है।^२ मापा का अध्ययन इसका अन्य पहलु समझा जा सकता है।^३ मानव-समाज के अध्ययन के समय मानव प्रकृति में विस्तृत प्राकृतिक उत्थों के निमोजन और निर्मास विशेष विचारणीय विषय हैं।

समाज दर्शन के अध्ययन क दृष्टिकोण से शिक्षा-विज्ञान का बड़ा महत्व है। विशेषतः वह जस जस तक अधिक महत्वपूर्ण है वहाँ तक वह उच्च शिक्षा की ओर संकेत करता है जिससे व्यक्ति संघटन प्राकृतिक विकास और भयत बाह्यपत्र प्रदर्शन से अपने जीवन के निश्चित क्षेत्रों की पूर्ति करता हुआ समाज के एक उत्तरदायी सदस्य के रूप में विकसित होता है।

नीति विज्ञान उन उद्देश्यों की व्याख्या करता है जो इस जीवन में संचित हैं। अतः इसका समाज-दर्शन से अन्य-विषयों की अपेक्षा अधिक अनिच्छ सम्बन्ध है। वस्तुतः समाज-दर्शन नीति-शास्त्र का एक भाग कहा जा सकता है अथवा नीति शास्त्र समाज-दर्शन का एक भाग कहला सकता है। सारास में इन विषयों का स्पष्ट-सम्बन्ध देखा जा सकता है। पहला उन व्यक्तियों क व्यवहार से सम्बन्धित है जो कम-अ-कम समाज में लगे रहते हैं। दूसरा समुदाय से सम्बन्धित है परन्तु स्मरण रहे कि वह समुदाय व्यक्तियों द्वारा संभलित होता है। व्यक्तियों और समुदाय के उद्देश्य एक ही हैं। परन्तु इन दोनों विषयों को पृथक-पृथक रूप से अध्ययन के लिए सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त रूप से मिल सकती है। इन दोनों का आपस में सम्बन्ध कुछ इसी तरह का है जैसा कि व्यक्ति और सामाजिक मनोविज्ञान में।

उत्पत्ति-शास्त्र या राज्य के विज्ञान समाज के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण पहलु हैं। सभी समाज अपने मूलतम विकास की स्थिति में सरकार के किसी न-किसी रूप को प्राप्त कर लेते हैं। सरकार से सम्बन्धित समस्याएँ इतनी

१. इस विषय में और अधिक विवरण के लिए डॉ. जैकबोवेल को 'सोशल डिजाइनिंग' नामक पुस्तक पढ़नी है। प्रो. बॉलेस की 'ग्रुप बेवोर इन फासिबिलिटी' को भी देखिए।

२. इस विषय पर ली बॉन का कार्य देखिए।

३. श्री बुबल महोदय के दो मागी ग्रन्थ 'Volkpsychologie' बृहत् भाग से ही ली गयी है।

जटिल बटल तथा महत्वपूर्ण मुत्तियों से युक्त जाती है कि उन्हें एक पृथक विज्ञान के रूप में विश्लेषण की आवश्यकता है। इस विषय में कबल सामान्य बातों की ही समाज-दर्शन में स्थान दिया जा सकता है।

समाज-दर्शन का जिन प्रश्नों से सम्बन्ध है उन सबसे व्यापक प्रश्न का है। उसमें विधि-शास्त्र का कनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु यही फिर हमारे विषय की परिधि में बहुत सामारण बात ही घा पाती है।

उद्योग और वाणिज्य मानव-समाज की मतिविधि का इतने व्यापक भ्रम में निर्माण करने हैं कि किसी भी समाज-दर्शन में उनका स्थान अनिर्धारित सावधानी से निषेधित किया जाता है। परन्तु इस विषय में भी कुछ ऐसी जटिल समस्याएँ हैं कि उनका विश्लेषण एक पृथक विज्ञान के रूप में करना पटना है—वह है धर्म-शास्त्र। इस विषय से सम्बन्धित बहुत से प्रश्न माना जा रहा बहिष्कृत किये जा सकते हैं और स्वयं बहिष्कृत की प्रक्रिया चलाना मते हैं। धर्म-दर्शन में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन करने वाले धर्म विषय की अपेक्षा अधिक मायातम्य व्यक्त करने की शक्ति है। इसी कारण समाज-विज्ञान के धर्म भाग की अपेक्षा विज्ञान के रूप में यह अधिक उपयोगी सिद्ध होने के कारण विवर्जित हो गया और व्यवहार-रूप में अधिक लोगों की अत्यधिक रुचि का विषय बन गया। इसके मायातम्य तथा कार्य-रूप में परिणत हान के ज्ञानमय मूल्य धर्म-धर्मोक्ति के रूप में स्वीकृत नहीं हैं। इसकी यथास्थिति तो कुछ सम्दिग्ध साम्य-ताओं पर आधारित है तथा इसका व्यावहारिक रूप भी कुछ विचारणीय परिचयन चाहता है। धर्म विषय-क्षेत्र में धर्म नाम कुछ धर्म-प्रश्नों पर संग्रह में हम धर्म विचार करते हैं।

सामाजिक जीवन के ये सब पहलू समय-समय पर परिवर्तित और विवर्जित होने लगते हैं। उनकी विशेषताएँ समय और स्थान की धर्मों परिस्थितियों के कारण निरन्तर और परिवर्तित होती रहती हैं। इतिहास हम प्रकार की परिस्थितियों और परिवर्तनों का लेखा-जोखा है और सामाजिक जीवन के धर्मों महत्वपूर्ण धर्मों पर प्रकाश डालता है। इसी और सामान्य-समाज-दर्शन हमें यह विश्लेषण करने में सहायक होता है जिसके बिना इतिहास के बिना रहने स्वच्छाकारी और सम्बन्धित विचार होते हैं। परन्तु ऐतिहासिक विज्ञान का विस्तृत अध्ययन स्पष्टतः हमारे विषय में बाहर है।

१. यहाँ शीघ्र महोदय की 'विज्ञान-की भाव-द्विती' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यों ही ही अतिरिक्त की द्विती भाव-निवर्तितान को हम बारे में महत्वपूर्ण है। यों ही ही महोदय की प्रथम विन्सीयन भाव-रूप निवर्तितान में भी कुछ धर्मों हैं। परन्तु हम जाने पुस्तकों में अनिश्चित विवेक विचारों को कुछ मात्रा में महत्व देना चाहिए। यों ही भाव-के समाज-साध्य पर बह

के विश्वास धारण और प्रयोगों को धर्म के रूप में धाँपी है मानव-इतिहास में एक महान् स्थान रखती है और मानवता की अग्र्यतम विशेषताओं का निर्माण करती है। उनका कुछ विशेषण भी समाज-वर्षन में प्राबल्यक है यद्यपि उसके कुछ भाग नीति-शास्त्र और अध्यात्म-शास्त्र से सम्बन्धित हैं और कुछ भाग अध्यात्म के पृथक् विषय हैं।

इस सबसे यह स्पष्ट है कि समाज-वर्षन का अनेक विषयों से सम्बन्ध है और सामग्री एक बलि दोनों का समाज भी नहीं है।

प्राचीन जिस विषय का निर्माण ही हो रहा हो उसके विकास के सम्बन्ध में निश्चित रूप से धारणा में ही कुछ कहना सरल नहीं है। इसे सिद्धान्तों या पूर्वमाप्यताओं के साथ प्रारम्भ करना बर्धन है।

३. इसकी विधियाँ अन्तर्भावनात्मक अध्ययन में होने के कारण तथ्यों को इकट्ठा करके प्रारम्भ करना कठिन भी है। यह सम्भव हो सकता है जैसे हम पहले देख चुके हैं कि इसका नीति-शास्त्र के शास्त्र के रूप में विशेषण प्रारम्भ हो। परन्तु पूर्ण रूप से देखने पर यह प्राबल्यक-सा हो जाता है कि इस एक स्वतन्त्र विषय के रूप में प्रारम्भ किया जाए। हम मानव जीवन के एक विषय पहलू से सम्बन्धित है। इसलिए यह उचित होगा कि उस जीवन की सामान्य विशेषताओं के अध्ययन से इसका प्रारम्भ करें। इसके उपरान्त के सामान्य विशेषताएँ सामाजिक संयोजन के विषय रूप को जैसे उत्पन्न करती हैं उन्हें जानने के लिए धाने बढ़ेंगे। एक हम इन विषयों का सुम्भलस्थित ढंग से अध्ययन कर सकते हैं। यदि यह सम्भव हो जाता है तो विषय-वस्तु से स्वतः ही अध्ययन की विधियाँ निकल आती हैं। इस स्तर पर इसका एक महत्त्व ऐतिहासिक विवरण प्राप्तकरके सिद्ध हो सकता है और इसके अध्ययन के एक सामान्य ढंग को उचित सिद्ध कर सकता है जैसा मैं धाने बता रहा हूँ।

संगत सभी वैज्ञानिक और शार्सनिक विषयों का प्रारम्भ प्राचीन यूनानी विचारकों की इच्छाओं में मिलता है। उनसे पूर्व अनेक अस्पष्ट कल्पनाएँ थीं। उनमें

से कुछ बहुत अच्छी भी हैं परन्तु उन्हें वैज्ञानिक महत्त्व

४ इसका प्राथमिक रूप का मानना कठिन है। यहाँ तक कि यूनानी

विज्ञान के विचारों में कुछ शारतन्त्र क्या है यह शोध

निकालना भी कठिन है। यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपने चारों तरफ की दुनिया

को पृथक-पृथक रूप में देखा और उनमें तात्त्विक भेद छोड़ा जैसे धर्म

बाद जिस और अन्य कठोर पदार्थों के सम्बन्ध तथा उनका सामान्य नामकरण

रोबक पुलक सिद्धी है विशेष रूप से वह इतिहास के द्वारा *Philosophie der Geschichte als Soziologie* के इतिहास से कल्पनी है।

पृथ्वी के रूप में किया। तत्पश्चात् उन्होंने धार्क्यक घोर वृष्टि प्रकृतियों में स्थायी घोर परिवर्तनशील में एकरव घोर बहुत्व में पदार्थ घोर प्राकृति में घोर इसी प्रकार धन्य वस्तुधर्मों में घोर प्रविष्ट किया।^१ जीवन का सामान्य तथ्य भी उन धारमिक वस्तुधर्मों में से था जिसने उनका ध्यान धारणित किया। उन्होंने उसका धन्ये चारों तरफ से संसार के धन्य तत्वा के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। उदाहरणस्वरूप हेराक्लिटीस में इस उच्चार-व्यक्ति की सामान्य प्रकृति में वेला। उसे ऐसा मया कि प्रकृत प्रकृति में चारों तरफ यही हलचल चल रही है उस—माप के उठने घोर ज्ञान में भरने में परमी घोर सरवी में आगने घोर सोन में जीवन घोर मरण में विक्रम घोर विनाश में गुण घोर दोष में तथा उन्नति घोर पतन में। इन प्रकार का भिन्न प्राचीन यूनानी विद्वानों को विकासवात् के सिद्धांतों तथा जीवन में उसका प्रयोग क कुछ निकट ला सका। परन्तु बहुत धारमिक धन्यता में से मानव-जीवन की नियमितताया से विशेषतया उनके सामाजिक पहलू में प्रभावित होन शुरू हो गए होने। उन्होंने प्राकृतिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में उनके एक-सा होने के कारण एक काफी मुनि विषय धन्यकारणा निरिषय की भी थी। उन्होंने देखा कि धर्म के जमाने का एक निरिषय तरीका है जैसा यूनान में बसा ही फारस में भी। सारांश में यही धर्मों के विकास धानवर्ग की प्रकृति नरार्थों के जमान तथा धन्य प्राकृतिक हलचलों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। यत समझा गया कि यह प्राकृतिक वस्तु की एक विषयता है जो धर्मित एवं एक-सी है। धन्यता मानव जीवन ही विशेषतः धन्य सामाजिक पहलू में स्पष्ट धन्यकारक रूप में दिखलाई पड़ता है। जीवन की स्वतन्त्रता या मानव को प्राप्त है सर्वप्रथम पूर्ण स्वेच्छाधार ही दिखलाई पड़ती है। इसमें उच्चतर नियमों की वृत्ति के लिए एक निरिषय वृद्धि की धारण्यता है। यही एक कि न्यमान समय में भी हम मानव के कार्य की नियमितता तथा प्राकृतिक पटनाया की नियमितता जैसे बहु-धन्य धारि की पति में भव प्रदमित करने को उद्यत हो जाते हैं। वे न एक सकते हैं न माग में घटक धन्यते हैं परन्तु हमारी धन्य धारणाएँ ऐसा कर सकती हैं।

पाँचवीं पलायों (ईसा पूर्व) के धन्य यूनान में जन गिराकों के एक समूह न जिस सामान्यतः वृत्तियों कहा जाता है इन प्रतिस्थापना को प्रकृतता से निरि यथा यह प्राकृतिक या स्वाभाविक है धन्यता स्वेच्छाधारपूर्ण एवं नररपरगत। ये धन्यने उन धान्य प्रचारक न। ये माग विभिन्न स्थानों के

^१ इस विषय में कृपया माधव विवरण भा० २ में की पुस्तक 'धर्म की प्रकृति' में उपलब्ध हो सकता है।

विभिन्न रीति-रिवाजों निबन्धों तथा संविधान के विषय कपो से विषय प्रभावित हुए। इसीलिए उन्होंने व्यक्त किया कि प्राकृतिक तत्त्वों में जो साम्यता नहीं है उसे केवल परम्परागत समझ आना चाहिए। वे मानव की स्वीकृति या समझीते पर या विशेष शासकों के स्वेच्छाकारी कुशाव पर आधारित हैं वास्तविक रूप में नीतियों के स्वभाव पर आधारित नहीं है। इस प्रकार उन्होंने प्राकृतिक नियमों तथा मानव निर्धारित नियमों के अन्तर में परिचय कराया और उस पर बल दिया।^१

शब्द विशेषतः इसी वैधर्म्य या प्रतिस्थापना से सम्बन्ध रखने वाला समाज-वर्धन पर प्रथम ध्यान भिन्ना गया जो सबसे पहला तथा शब्द भी अनेक दृष्टियों से उत्कृष्ट एवं रोचक है। प्लेटो का रिपब्लिक' मुख्यतः एक प्रश्न से सम्बन्धित प्रथमयत्न है कि क्या मानव-नियम के सम्बन्ध में यह माना जाए कि उनका आधार कुछ प्राकृतिक नियमों में है? यह प्रश्न स्वयं या सत्य के धर्म की छागरीन से प्रारम्भ होता है तथा उससे सामाजिक व्यवस्था पर धा जाता। क्या सामाजिक व्यवस्था जिसमें स्वयं भी सम्मिलित है प्राकृतिक है या कृत्रिम? प्लेटो के रूप में मुकुरात का दृष्टिकोण है कि वह वस्तुतः प्राकृतिक है। उसने सामाजिक गठन का जन्म मानव प्रकृति में एक विशेष तथ्य से सुविद्यत होते हुए दिखाने की चेष्टा की है। वह तथ्य यह है कि मानव भात्म-निर्मर नहीं है। फलस्वरूप उसे दूधों से सहयोग लेना पड़ता है। इसी आधार पर उसने मानव संवर्धन के ढाँचे की रूपरेखा खींचने का प्रयास किया है। उसमें सहयोग की उस भाग और धारक्यता को पूर्णतः दिखाया गया है। इस प्रकार हम धार्मिक राज्य के विचार तथा उस राज्य की व्यवस्था के लिए धारक्यता दिखा के विचार तक पहुँच जाते हैं। जैसे-जैसे हम प्राये बढ़ते जाते हैं हमें इस प्रकार की धनेक बातें देखने की मिलती है।

प्लेटो के रिपब्लिक' का महत्त्व उसकी बम्भीर बिसदण बुद्धि व्यापक दृष्टिकोण एवं दूरदर्शिता पर आधारित है। उसने सभी आधारभूत समस्याएँ मानव-जीवन के सभी प्रमुख तत्त्वों से सम्बन्धित कर ली हैं। परन्तु यहाँ हम अपनी आधारभूत समस्याओं तक ही सीमित रहेंगे।^२

प्रधान रूप से प्लेटो के राज्य का ढाँचा जिसमें उनका अत्यधिक परिचय था छोटा नगर-राज्य है जो यूनान में अथवा पूर्ण विकास पर था। इस प्रकार

१. इस विषय पर भी ली वर्ने महोदय का 'ग्रीक रिपब्लिकी प्रैक्स में प्लेटो तक धारक्यता' है। १९११। इनका प्रारम्भिक अन्ती ग्रीक रिपब्लिकी दृष्ट १२ १३ भी बर्णन कीव है।

२. परिशिष्ट में प्लेटो महोदय के रिपब्लिक' पर साह है। १९११।

के राज्य और प्राधुनिक राज्य जसा सामान्यतः हम सोचते हैं। म धनक महत्त्वपूर्ण धर्मर हैं। इनकी जास विधेयता इनका धनिष्ठ संगठन धीर प्ठठा की जो प्राधुनिक विद्यास साभ्राय्यों या ध्राज के धयेसाकृत छोटे राष्ठा म उधी प्रकार से नहीं मिल सकती। प्राधुनिक राष्ठीं व उनके नागरिधों के सामाजिक जीवन के धम्य पहलुधों के काशी धन्तर है। परन्तु छोटे नगर-राष्ठीं में नागरिक जीवन धीर सामाजिक जीवन में कोई धन्तर नहीं बा। धत ज्येठो के धनुसार ममाज-धर्धन एध राजनीति-सास्त्र भगभग एक ही है तथा नीति-सास्त्र एध विद्या-विद्यान्तो से भी इनका पृथक करना कठिन है। कुछ मी हो प्ठाने के सामान्य धम्ययन की धाधार-विधा धधधे धीर उधी ढग स रली है। धीर फिर यह कहना भी सत्य ही है कि उसम जितना धधध्या परिचय हम पा सकने हैं उतना किसी धन्य लजक ढास नहीं।

समाज धर्धन क विद्यास के सम्बन्ध में हमे धधिक ध्यापक रूप से कुछ नहीं कहना है क्योंकि कबस विरल रूप सेना के धतिरिक्त इन धर्धन में रचना भी धति धति है।

ज्येठो की धयेसा धरस्तु के राजनीति तथा नीति-सास्त्र में एक निरिधन धन्तर दग्गाबा यधपि उधन तत्कत ज्येठो के ही रूप की समझा। धरस्तु नागरिधों के धारे में मिध्रता है तो ज्येठो नगर के धारे में। परन्तु धरस्तु के जो धेध धनमाया है वह ज्येठो की धयेसा बहुत स्पष्ट है। उसन यह स्पष्ट किया है धीर प्ठाने के भी कि एक मनुष्य किसी राष्ठी के नागरिक के धतिरिक्त कुछ धीर भी है। नागरिकता मनुष्य के ध्यापक जीवन बा एक छोटा धंध होना बाधिए। विधयो के हमारे प्राधुनिक धम विधारेण के धनुसार धरस्तु के नीति-सास्त्र के कुछ भाग विधेयन ध्याप तथा मिधता-सम्बन्धी कुछ धंध नीति-सास्त्र की धयेसा ममाज-धर्धन क भाग होना धधिक उचित धैधेगे। व नीति-सास्त्र धीर राजनीति-सास्त्र में सम्बन्ध स्थापित करने वाली कड़ियां हैं।^१

धरस्तु के पदधान् कीर-नगर राष्ठीं की समाधि धीर पतन में नीति-सास्त्र धीर राजनीति-सास्त्र में कुछ धधध स्पष्ट भेध रीदा हुआ। विद्यास साभ्राय— पाहू के धेधधौधिया क हों या रोम क उनके नागरिधों की नविध धेरणा क प्रतीक नहीं बन गके जगा धाधध रूप छोटे नगर राष्ठी प्राण कर सधेधे। धन-स्टोदर धीर एरिधधूरिधक ज्येठे त्ठाने धरस्तु की कर्क नहीं रोधक मध कि एध ध्यापक बा जीवन एक संगठित नाग्य क गाध धाधध है। स्टोदरों क धधुमार

१ आगे की विशेष जानकारी के लिए की धार्मेध धास्त्र मधोदध की पुष्क दि धतिरिक्त बाध बाध प्ठाने एध धतिरिक्त धध-धधनीध है।

है। यह जैसा हम पहले देख चुके हैं जेटो और धरमू ने भी स्वेच्छाचार के विरुद्ध कुछ ऐसा ही करना चाहा था। प्रमाण-स्वरूप उनका यह ठर्क था कि जो प्राकृतिक है वह अनिवार्यतः अपरिवर्तनशील नहीं है। मानव प्रकृति के विशेष रूप विशेष प्रकार की व्यवस्था को जन्म देते हैं। यद्यपि उनमें साम्यता नहीं होती तथापि वे बिना नियम व्यवस्था कारण के नहीं होते। वास्तव में उन्होंने यहाँ तक व्यक्त किया कि मानव की भौतिक प्रकृति धर्मों की अपेक्षा व्यवस्था का एक अधिक निश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत करती है जो धर्म्य कहीं उपलब्ध नहीं हो सकता। और अस्तित्व के उच्चतर रूपों की अपेक्षा निम्नतर श्रेणी के ही रूपों को धर्मि यन्त्रित धर्मियमित और धर्म्यवस्थित कह सकते हैं क्योंकि उनमें कुछ धार्मिक परिवर्तन के तरक रहते हैं। 'स्टोइक सौम्य प्रकृति' के नियम की धर्मिभक्ति का प्रयोग किया करते थे। ये नियम प्राथमिक रूप से ठर्क द्वारा निर्मित तथा व्यवस्था के सिद्धान्तों से सम्बन्धित हैं मानव-समाज के यत्न में जग हैं। यह प्रदर्शित करना भौतिक विज्ञान का काम है कि इस भौतिक विज्ञान और मानव जीवन में प्रकृति के सिद्धान्त कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार बहुत कुछ धर्मों में बात एकवचन बदल गई है। अथवा पुराना प्रतिपक्ष कुछ धर्मों में जमकर बैठ जाना चाहता था और समय-समय पर यह नम रूप से जोर पकड़ता आता था विशेषतः सामाजिक संविदा के सम्बन्ध में। उदाहरणस्वरूप ब्राह्मण प्रकृति की दशा और सामाजिक व्यवस्था में अन्तर दिखाया है जो संविदा के रूप में रखा गया है। इसी के सामाजिक संविदा के इस प्रारम्भिक कथन से कि मानव स्वतन्त्र उत्पन्न हुआ है फिर भी वह सर्वत्र बन्धनों में बँधा हुआ है प्रतिपक्ष को एक ध्यापक शक्ति दी है यद्यपि स्वयं इसी में इसे दूर करने का काफ़ी प्रयास किया था। और कम-से-कम उस धार्मिक उधार बनाने के लिए पूर्ण चेष्टा की कि मानव-समाज संविदा पर ही आधारित है और मानव-संविदा का आधार मानव ही है। इसी मार्भरता का पता अन्त में सामने आया। इस बीच यह विशेष समस्या हमें अध्ययन का एक ऐसा विद्यालय क्षेत्र उपस्थित करती है जिसमें हम यह आधार मिलता है कि मानव-समाज की एकता और व्यवस्था स्वभाव विशेषतः मानव-स्वभाव पर आधारित है। इस प्रकार धर्म के अध्यायों में हम मानव-प्रकृति के सर्वोत्तम आधारभूत पहलुओं का विवेचन करने का ध्येय करेंगे।

१. इस विषयक विशेष जानकारी के लिए हम पुस्तक के मूल लेखक श्री के. एम. मैकेन्ज़ी यशो-व की पुस्तक "जीववत्स व्यापक अन्तर्दृष्टि विज्ञानकी" खण्ड १ अध्याय १ उत्सैगनीय है।

प्रथम खण्ड
समाज-व्यवस्था का आधार

प्रथम अध्याय मानव प्रकृति

हमारे इस विद्वान् के बह्मण्ड के रूप में बगल में सम्बन्धित जित्त समस्याओं का विद्वान्पण्य नहीं किया जा सकता। यहाँ पर इतना ही ध्यान में रचना पर्याप्त होगा कि 'आधुनिक' सामाजिक सम्बन्धों और उनके निष्कर्षों पर सामाजिक विद्वान् में हम इस विद्वान् के बारे में यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया है कि यद्यपि यह विद्वान् बड़ा उद्देश्यमय है फिर भी इसमें एक व्यापक पद्धति है और न्यूनाधिक निरन्तर विद्वान् की प्रविष्टि बसती

रहती है।
 यहाँ तक हमारी धारणा पूर्वी का सम्बन्ध है उसमें प्राप्त सब तक के विकास में मानव ही उच्चतम स्तर का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु ऐसा सब जगह समान रूप से नहीं हुआ है और उक्त उच्चतम स्तर में सब का सुधार के लिए गुनाहमा है यद्यपि मानव सब प्राणियों में उच्चतम है। वह जिस विद्वान् में रहता है उसमें वह एक छोटा-सा मयवान् बन जाता है फिर भी वह इस विद्वान् की पारिषद् बस्तुधा में एक है। वह मिट्टी का सर्वोच्च घटक परन्तु वह है बरती का टुकड़ा ही। उस कमी-कमी अपने प्राण पर समस्त हान लपता है कि वह बेचना है या पानु। परन्तु यह इन निष्कर्षों पर पहुँचता है कि वह दोनों का एक मिश्रण है। जगदी बल्पनाएँ धारण में विचरण कर सकती हैं, परन्तु जगदी भौतिक समित्व संवृद्धि है नीचा-बढ़ है। मानव धारणी प्रकृति में ही समन्वय रखता प्राणी है वह बाण उसका सामाजिक और धर्म मयी पदार्थों में भी साधु हानी है। यह समन्वय उसमें निम्न प्राणियों और उच्चतम महत्त्वाकांक्षा के साथ भी व्याप नहीं कर सकता है। परन्तु यह स्पष्ट होना कि हम प्रारम्भ में ही जगदी जन्म प्रकृति के इन बानों पदार्थों का पूर्णतः जानने की वाणिज्य करें। यह स्पष्ट बान के निम्न एवं प्राण बहता जाना कि मनुष्य की सबसे अच्छी परिभाषा क्या है मतलब है। मानव के बान में पंजीयन का वैशेष बान प्राणी जैसा उदाहरणमय

परिभाषाया स सेकर गम्भीर-से-गम्भीरतम एक बुद्धिजीवी प्राणी तब की परिभाषाएँ भी नहीं हैं। परन्तु इनमें से कोई भी पूर्णतः मानव की परिभाषा सम्तोपजनक नहीं है। बेंगहॉर्न ने कहा है मनुष्य पशु रूप में विकरण करने वाला प्राणी है। परन्तु यह उसकी पशु जीवन से सम्बन्धित बनिष्ठता का कुछ निम्न-भूत्सांजन है। यदि हम उसे एक हूँसने वाला प्राणी' कहे तो इस घोर लकड़बाजे (हूँसल वाले प्राणी) तथा कुछ जन्तुओं और पंखों की गम्भीर नृहानियाँ हमारे सामने धाएँगी। यदि फोक्समिथ और कार्लोस के शब्दों में हम उसे 'श्रीकारा का प्रयोग करने वाला प्राणी' कहें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि कुछ मनुष्य तो इनका प्रयोग एकदम जानते ही नहीं बैठे सभी बयस्क ऐसे नहीं होते। निम्न स्थितियों के कुछ प्राणी हाथी भी कभी-कभी इनका प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं।^१ यदि हम माया के प्रयोग की घोर संकल करें तो यह कहना पड़ेगा कि कुछ इस प्रकार के घनेक घन्य प्राणी भी हैं जो धर्मिब्यन्जनात्मक स्वर-नकितों से एक-दूसरे के साथ वार्तालाप करते हैं जबकि मानव की निम्न धेरी की कुछ जातियाँ भी इस निम्न स्तर से स्पष्टतः बहुत धमिक ऊपर नहीं उठ सकी हैं। यह स्पष्ट है कि मानव का बुद्धिजीवी होना उसे पशुधा से पुनक करने वाली सबसे बड़ी विघटता है और इसी से उसकी घन्य सभी विघेपताओं की ब्याख्या की जा सकती है। यह मानव की बुद्धि का ही जमत्कार है कि वह पशुओं की घस्पट भाषाओं को एक मनुष्य माया में विकसित करने में समर्थ हो सका। छोटे छोटे बाहरी पदार्थों के हस्त ब्यापार को एक विकसित श्रीकार और मशीनों के रूप में बदल सका। विघेप ध्वनि रण और रूपों को विविध प्रकार की अनुकरणात्मक और धर्मिब्यन्जनात्मक कला के रूप में शौच को धारमण में नय को सुरक्षा में पुगा को ध्वंय और हास्य में सहानुभूति को शान में धारधर्य को नय में धारम समईए

^१ प्रो. बॉवड महोदय की पुस्तक क्लोमल हारक एवक इन्वेस्टिगेशन्स ५ १०० को देखिए। इसमें मानव को 'श्रीकार-प्रयोग करने वाले प्राणी' के रूप में वर्णित किया गया है वहीं श्रीकार शब्द को बहुत विरलुन धर्म में समझना चाहिए। धर्म में मशीनों, पुलके संस्कार और निम्न जलो के प्राणिक धर्म का धर्मोप भी ध्य माना है। यह कहना भी बलत नहीं होगा कि वह पूर्वी प्रयोग करने वाला प्राणी है। दूसरे प्राणी भी धर्मिब्यन्जनात्मक हैं तथा निम्न प्रकार की संवसिधों और मरदाक जुयति हैं। परन्तु उन सन्में केवल मनुष्य ही पूर्वीवर्ती है और मानव जीवन का प्रत्येक रिश्तास पूर्वी पर ही धारधारित होता है। इस तरह के विरलुन धर्म के अनुमाक प्रत्येक मनुष्य पूर्वीवर्ती होता है। धर्मो धर्मिक * विभाग ४ देखिए।

को सम्मान में प्रमुखा को कामून और सरकार में और पारलमण्टिक सहयोग को सहकारी राष्ट्र-संघत के रूप में परिचरित कर सता ।

परन्तु इन सब बातों में मनुष्य धकस्मात् ही पारग्यत नहीं हो गया और न ही बृहत् प्रारम्भ से ही इन सब बातों का ज्ञान सेकर कही से आया वा घबवा उन्हें एकत्र समझ गया वा । मानव को उसकी कुछ बिरोप योग्यताओं के बिना बुद्धि-जीवी प्राणी नहीं कहा जा सकता परन्तु उसे एक बिचार-उक्ति ग्यन बासा प्राणी ही कहा जा सकता है । मानव अपने जीवन की क्रियाओं और परिस्थितियों को समझ बिचरित करता हुआ ही धाम की स्थिति तक पहुँचा है ।

परन्तु इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं है । यह स्पष्ट है कि बिचार-उक्ति मात्र से ही मानव-जीवन पैसा बह है धाम नहीं हुआ होता यदि वह एक बिधय घाटीरिफ बाँचे से बिनुपित न होता । बिचरित मांस पेधियों और हड्डियों के ऊपर बाँचे न बिना वह अपने शरीर को बह्यज और घग्ने धाम को सीधा करके घय को धपने वय न रग्ने म समर्थ नहीं हो सकता वा । मुबिबमित्त धाँसों और घग्ने इन्डियों के बिना वह पयावों को धपने उहय म सहायक बनान और उमरो यधार्थता के साथ मिटीसाण करने में समर्थ नहीं हो सकता वा । गतिधील हाबा^१ के बिना वह बिबिध धौजारों और घग्ने मतीनों को जिनमे धाम हमारा परिचय है मुबिबम से ही निर्माण और प्रयोग कर सका होता । पहस य धौजार और मतीनें धपनी प्राचमिक घबस्वा में उमके घाटीरिफ घबयवों के बिभाग से कुछ ही अधिक सपभी जा मकती थी^२ । एक बटिल स्वर-यग्न के बिना वह मानव-भाव में प्रचलित इन भावाओं का बिस्तार और प्रयोग नहीं कर सता हाता मूकम घबय-उक्तिवों के बिना वह उन्हें समझ भी नहीं मकता धंगुणिया के बिना वह उन्हें स्थायी रिवाइ के रूप म निर्माण भी नहीं कर सका होता । मूकम स्नायु-संस्थान के बिना वह कला के उच्चतम रूपों की उत्पाति और मून्याकन करने में मुबिबम से ही योग्य हुआ होता । यहाँ तक कि बिचार के प्रयोग न सिए मरिणक वा होना भी घाबरघ प्रतीत हाता है । मनुष्य केवल बुद्धि

१ बबेस्तमरत की प्रकृति वह प्रतीत हाती है कि वह मनुष्यभाव को मेषना पूर्वत उमके हावो के कारण समनता वा पर इसके मनुगाण को बह्यज का रवाग भी कहा होना चाहिए । बनें महोरद की पुस्तक मन्वीयोड रिनालची १ २६७ भी देगा । हाबा और वरो की रिग्ना को बह महत्वपूर्ण रिनाम मानना चाहिए ।

२ कब लाना में से मेषुमक बह्यज यहाय ने रत पर घपनी पुस्तक Erewbon ब २२ में प्रग्ना टगा है ।

परिभाषाओं से लेकर गम्भीर-से-गम्भीरतम एक बुद्धिजीवी प्राणी' तक की परिभाषाएँ की गई हैं। परन्तु इनमें से कोई भी पूर्णतः मानव की परिभाषा सन्तोषजनक नहीं है। बेंगहॉर्न ने कहा है मनुष्य पशु रूप में विकरल करने वाला प्राणी है। परन्तु यह उसकी पशु-जीवन से सम्बन्धित बनिष्ठता का कुछ निम्न-मूल्यांकन है। यदि हम उसे एक 'हंसने वाला प्राणी' बने तो इस और सफ़रबत्ने (हंसने वाला प्राणी) तथा कुछ अंगलियों और छतों की मम्मौर कहानियाँ हमारे सामने आएँगी। यदि फौजलिन और कार्साइन के शब्दों में हम उसे 'धौबारा का प्रयोग करने वाला प्राणी' कहें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि कुछ मनुष्य तो उनका प्रयोग एकदम जागृत ही नहीं बँसे सभी बयस्क ऐसे नहीं होत। निम्न शक्तियों के कुछ प्राणी हाथी की कभी-कभी समका प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं।^१ यदि हम माया के प्रयोग की ओर संकट करे तो यह कहना पड़ेगा कि कुछ इस प्रकार के अनेक धर्म्य प्राणी भी हैं जो धर्मिष्य-अधनात्मक स्वर-मकेतों से एक-दूसरे के साथ बातसिाप करते हैं जबकि मानव की निम्न श्रेणी की कुछ जातियाँ भी इस निम्न स्तर से गपटण बहुत अधिक ऊपर नहीं उठ सकी हैं। यह स्पष्ट है कि मानव का बुद्धिजीम होना उसे पशुओं से पुनक करने वाली सबसे बड़ी विवेपता है और इसी से उसकी धर्म्य सभी विवेपताओं की व्याख्या की जा सकती है। यह मानव की बुद्धि का ही बमत्कार है कि वह पशुओं की धस्पष्ट भाषाओं को एक मजुर माया में विकसित करने में समर्थ हो सका। छोटे छोटे बाहरी पदार्थों के हस्त ध्यापार को एक विकसित धौबार और मधीमो के रूप में बदल सका। विवेप ध्वनि रग और रूपों को विविध प्रकार की धनुकरणात्मक और धर्मिष्य-अ नात्मक कला के रूप में श्रौब को धाकमण में भय को सुरला में धृणा को धर्म्य और हास्य में सद्धानुभूति को शान में धारधर्म्य को धय में धागम समरख

१ प्रो. लॉवट महारथ की पुस्तक एबीमल हाइक एण्ड इन्वेस्टिगेशन्स पृ. १३० को देखिए। इसमें मानव को 'धौबार-प्रयोग करने वाला प्राणी' के रूप में वर्णित किया गया है वहाँ धौबार शब्द को बहुत विरलत अर्थ में समझना चाहिए। इसमें मशीनों पुस्तके संस्कारों और निम्न श्रेणी के प्राणियों ध्वनि का उपयोग भी जा जाता है। यह कहना भी पसत नहीं होगा कि वह धौबी प्रयोग करने वाला प्राणी है। इतर प्राणी भी धर्मिष्य करते हैं तथा निम्न प्रकार की संघटिकाँ और नवकार जुयते हैं। इतु एक अर्थों के एक समुह ही धौबी है और मानक जीवन का प्रत्येक निम्नत धौबी रर ही धाधारित होत है। इस शब्द के विरलत अर्थ के धनुकार प्रत्येक मनुष्य धौबीधारी होत है। आने अध्याय ० दिवाल ४ देखिए।

को सम्मान में प्रभुता को कामून और सरकार में और पारस्परिक सहयोग को सहकारी राष्ट्र-मंडल के रूप में परिवर्तित कर सका।

परन्तु इन सब बातों में मनुष्य अकस्मात् ही पारवर्त नहीं हो गया और न ही [बहु प्रारम्भ से ही इन सब बातों का ज्ञान लेकर कही से प्रामाण्य प्रकटा उन्हें एकत्र समझ गया था। मानव को उसकी कुछ विरोध योग्यताओं के बिना 'बुद्धि-जीवी प्राणी' नहीं कहा जा सकता परन्तु उसे एक विचार-युक्त रखने वाला प्राणी ही कहा जा सकता है। मानव अपने जीवन की विभाषाओं और परिस्थितियों को क्रमशः विकसित करता हुआ ही आज की स्थिति तक पहुँचा है।

परन्तु इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं है। यह स्पष्ट है कि विचार-युक्त मानव से ही मानव-जीवन पैदा बहु है आज नहीं हुआ होता यदि वह एक विषय सार्विक ढाँचे से विभूषित न होता। विकसित मानव वैश्वियों और हस्तियों के ऊपरी ढाँचे के बिना वह अपने शरीर को चरमने और अपने मानव का सीमा करके सब को अपने पास म रखने में समर्थ नहीं हो सकता था। सुविकसित धर्मों और अन्य दृष्टियों के बिना वह पदार्थों को अपने चरम म सहामय बनाने और उनको सकार्यता के साथ निरीक्षण करने में समर्थ नहीं हो सकता था। गतिशील हाथों के बिना वह विविध धर्मों और अन्य मधीनों को बिलम्बे आज हमारा परिचय है मुक्ति के ही निर्माण और प्रयोग कर सका होता। पहले ये धर्म और मधीनों अपनी प्राथमिक समस्या में अपने सार्विक धर्मों के विभाषण से कुछ ही अधिक समझी जा सकती थीं। एक व्यक्ति स्वयं-यत्न के बिना वह मानव-मान में प्रवृत्त इन भाषाओं का विस्तार और प्रयोग नहीं कर सका होता। सूक्ष्म धर्म-युक्तियों के बिना वह उन्हें समझ भी नहीं सकता। धर्मियों के बिना वह उन्हें स्थायी रिक्तों के रूप में निर्माण भी नहीं कर सका होता। मूल्य स्थापना के बिना वह जमा के उच्चतम रूपों की उत्पत्ति और मूल्यांकन करने में मुक्ति से ही भाग्य हुआ होता। यहाँ तक कि विचार के प्रयोग के लिए प्रतिष्ठा का होना भी आवश्यक प्रतीत होता है। मनुष्य केवल बुद्धि

१. जनेसमोस की प्रवृत्ति यह मनीष होती है कि वह मनुष्यता के अन्तर्गत पूर्ण उच्चके शक्तों के कारण समझता था यह उसके अनुसार तो मनुष्य का स्वयं भी कहा जाना चाहिए। १९०० मरीट की पुस्तक 'मनीषीय विचारों' १९० भी देखिए। हाथ और शरीर की विद्युत् की एक महत्वपूर्ण विद्युत् मनुष्य चाहिए।

२. अन्य लोगों में से सिगमुण्ड फ्रायड ने इन पर अपनी पुस्तक 'Eros and Thanatos' १९२० में लिखा है।

भीषी प्राणी ही नहीं है परन्तु वह एक विशेष प्रकार का प्राणी है जो एक विशिष्ट एवं जटिल शारीरिक ढांचा रखता है। उसी पर उसके विचार भाव भावें और कार्य पूरी तरह से सुनिश्चित और आचारित होते हैं। यदि मनुष्य एक उच्चतर-श्रेणी के बन्दर की अपेक्षा एक बोड़े के रूप में होता जैसे किन्तु महोदय का हिंस्र तो उसका बौद्धिक जीवन वर्तमान अवस्था से बहुत ही भिन्न होगा वह भस्मे ही उस रूप में कितना ही विकास क्यों न कर पाता। यदि चींटियों और मक्खनों में विवेक विकसित होता तो उससे हमारे इस सुपरिचित मानव-जीवन के विवेक से भिन्न परिणाम निकलते। मानव के शारीरिक-मठन की पूर्ण विशेषताओं को जाने बिना हम मनुष्य के जीवन को पूर्ण-रूप से नहीं जान सकते। यहाँ इन सब विशेषताओं के विवेचन की हम आवश्यकता नहीं क्योंकि वह हमें कहीं विषय से बाहर न भ जाए। उन्हें हम शरीर रचना विज्ञान शरीर विज्ञान मनोविज्ञान प्राकृतिक-इतिहास और मानव-विज्ञान आदि विषय के लेखकों पर छोड़ देने हैं। हम पहले से ही इस विषय की मुख्य-मुख्य बातों से पर्याप्त रूप से परिचित हैं और यहाँ अब हमें उन पहलुओं की कुछ आचारतृत बातों से आगजादी करके संतोष करना चाहिए।

यह मान लेने पर कि मानव एक विशेष प्रकार का प्राणी है उसमें अपने-विशेष अभिरूचियाँ और प्रवृत्तियाँ हैं वह जानना आवश्यक हो जाता है

कि जन्तुओं की सामान्य विशेषताएँ क्या हैं। हम इसे

३ मानव-जीवन के संक्षेप में ही रखेंगे। यह स्पष्ट है कि कुछ बातों में तोम मुख्य पहलु पशुओं का जीवन वनस्पतियों से मिलता-जुलता है

परन्तु कुछ बातों में वह स्पष्ट तथा भिन्न भी है। कुछ

दृष्टिकोणों से उसे निम्न श्रेणी का समझा जा सकता है। सामान्यतः जन्तुओं

में वह शक्ति एकरमता और लोभ्य नहीं है जो वनस्पति जीवन के कुछ रूपों

में प्राप्त है। परन्तु जो माप-दण्ड में निम्न श्रेणी के ठहराए जाते हैं उनमें

सामान्यतः श्रेष्ठता की कुछ बातें होती हैं। यहाँ तक कि कुछ बातों में निर्वास

पराश भी वनस्पतियों से कुछ श्रेष्ठ होते हैं। फुलों में वह शक्ति और संकीर्णता

बहुत है जो शारदत पर्वणों में है? बाल्म क्रिस्टमन में निम्न श्रेणी के प्राणियों

और मानव जाति के अग्रान्त अस्तित्व में भेद प्रदर्शित किया है वे अपनी

स्थिति के सम्बन्ध में कठोर धर्म और बिलाप नहीं कर सकते वे अश्वकार में

जागते पड़े रहकर अपने पापों के लिए गहन मही कर सकते। उनमें से कोई भी

आहारणीय अथवा शीम-नु-भी नहीं होता सामान्यतः जहाँ अश्विकता अधिक

होती है वहाँ शक्ति कम होती है। यह मानव-जीवन में ही देखा जा

सकता है कि 'बचान एव स्वर्ग' है इनमें भी एक सावपूर्ण तत्त्व ज्ञात है।

सामान्यत एक कितान एक दार्शनिक या एक राजनीतिक की विशेषता कम प्रभावित स्थिति में रहता है।

परन्तु सारापिठ जैसे वास्तुओं का जीवन स्पष्टतः वनस्पतियों की विशेषता स्पष्ट और अधिक जटिल होता है, यद्यपि इसी तरह से मानव-जीवन भी अन्य प्राणियों की विशेषता स्पष्टतः और अधिक जटिल होता है। इस प्रश्न का सही गूढ रूप से प्रदर्शित नहीं किया जा सकता कि प्रकृति बहू-प्राकृतिक पदार्थों से प्रदर्शित किया जा सकता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि सामान्यतः वास्तु पेड़-पौधों की तरह उगते और पौधों की तरह अपनी जानि का फिर पत्रों से करन के प्रतिष्ठित एक स्वान म दूसरे स्थान को आने की योग्यता और अपने घास-गास के पदार्थों के प्रति कुछ इतिहास जान रखते हैं और जियाभा के प्रति कुछ मनोवृत्त्यात्मक प्रकृतियों विद्यमान हैं। उच्चतर प्राणियों में जिनके मानव प्रतिष्ठित है, परिस्थितियाँ के प्रति समायोजन के लिए अधिक क्षमताएँ और जटिल गति है। अतः यद्यपि प्राणियों के जीवन के कई प्रकार हैं मरते हैं और पौधों के अन्तर्गत अब हो सकते हैं ता हम कमपूर्वक कह सकते हैं कि हर एक वास्तु छोटी या अधिक मात्रा में कुछ गूढ अनुभूति और जिया करने की संकेत-शक्ति और विशेष योग्यता बाना एक-दूसरी ही है। यदि यह बात सही है तो फिर हम यह भी कह सकते हैं कि एक मनुष्य भी वास्तव में एक पौधा ही है जिसमें जटिल अनुभूति बानी विद्यमान है। तथा बहू-विचार-शक्ति और उच्चतः माय सम्बन्धित अन्य शक्तियों की उल्लेख है। निम्नलिखित अर्थ शक्तियों में से हम मानव की कुछ प्राकृतिक शक्तियों और प्रकृतियों के ह्रास को भी में रखते हैं जिसे केवल कृत्रिम मात्र बाना प्रभावित होगा।

इस प्रकार हम मानव-जीवन में प्राप्त तीन प्रमुख पहलुओं के विषय में विचार कर सकते हैं। पहला पहलू पनरगत-सम्बन्धी क्रमशः पशु-सम्बन्धी और तीसरा पहलू या अधिक महत्वपूर्ण है बहू-स्वयं उच्चतः सम्बन्धित है। मानव-जीवन का गौरव इसी जटिलता पर आधारित है। परन्तु बहू-हमारी कठिनायों का और कभी-कभी हमारे पक्ष का भोग भी होता है। कुछ अर्थों में हमारी बड़े पौधों की तरह ह्रासों और मौसमों का कृपा पर भी आधारित होती है। वास्तुओं की तरह हम अपनी शुद्ध मनोवृत्तियों और संकेतों द्वारा पशुपुत्र भी हो सकते हैं। विशेषतः हमें आत्म-संयम का बग देना है पर बहू-वर्षा विचलित होने वाली शक्ति है। बहू-हमारे अन्तर में उपस्थित निम्नतम पर कठिनाई से ही अविचार कर जाता है। हमारी प्रकृति की जटिलता हमें समय-समय की शक्ति और महानुभूति की सम्भावना प्रदान करती है। यह माना जा सकता है कि इतना कुछ कृत्रिमता में प्रभाव हो सकता है पर यह जटिलता हमारी प्राकृतिक गूढ और सामान्यतः या अति-कम देते ही सम्भावना

जीवी प्राणी ही नहीं है परन्तु वह एक विशेष प्रकार का प्राणी है जो एक विशिष्ट एवं अद्वितीय सार्वत्रिक बीजा रखता है। उसी पर उसके विचार भाव मार्ग और कार्य पूरी तरह से सुनिश्चित और प्राधारित होते हैं। यदि मनुष्य एक उच्चतर-श्रेणी के बन्दर की अपेक्षा एक छोड़े के रूप में होता जैसे स्विफ्ट महोदय का हिंस्र तो उसका बौद्धिक जीवन वर्तमान अवस्था से बहुत ही निम्न होता। वह अपने ही उस रूप में जिनका ही विकास क्यों न कर पाता। यदि पीटियों और मक्खियाँ में विवेक विकसित होता तो उससे हमारे इस सुव्यवस्थित मानव-जीवन के विवेक से निम्न परिणाम निकलते। मानव के पारिरीक-मठन की पूर्ण विशेषताओं को जाने बिना हम मनुष्य व जीवन को पूर्ण-रूप में नहीं जान सकते। यहाँ इन सब विशेषताओं के विवेचन की हमें आवश्यकता नहीं क्योंकि यह हमें कही विषय से बाहर न ले जाए। उन्हें हम पारिरीक विज्ञान, पारिरीक विज्ञान मनोविज्ञान, प्राकृतिक-इतिहास और मानव-विज्ञान आदि विषय के भन्कों पर छोड़ देने हैं। हम पहले से ही इस विषय की मुख्य-मुख्य बातों से पर्याप्त रूप से परिचित हैं और यहाँ अब हमें उन पहलुओं की कुछ प्राधारमूल्य बातों से जानकारी करने सन्तोष करता पाएँ।

यह मान लेते पर कि मानव एक विशेष प्रकार का प्राणी है उसमें धनेकों विशेष अभिरूधियाँ और प्रकृतियाँ हैं यह जानना आवश्यक हो जाता है

कि बस्तुओं की सामान्य विशेषताएँ क्या हैं। हम इसे

३ मानव जीवन के संयोग में ही रखेंगे। यह स्पष्ट है कि कुछ बातों में तीन मुख्य पहलु पदुधों का जीवन बनस्पतियों से मिलता-जुलता है

परन्तु कुछ बातों में यह स्पष्ट तथा निम्न भी है। कुछ

इच्छिकोर्गों से उने निम्न श्रेणी का समझा जा सकता है। सामान्यतः बस्तुओं में यह धामित एकरमता और सीमर्य नहीं है जो बनस्पति-जीवन के कुछ रूपों में प्राण है। परन्तु जो मानव पर्य म निम्न श्रेणी के उहराप जाते हैं उनमें सामान्यतः श्रेष्ठता की कुछ बातें होती हैं। यहाँ तक कि कुछ बातों में निर्जीव पदार्थ भी बनस्पतिया से कुछ स्पष्ट होते हैं। पूर्णतः म यह धामित और संभारना नहीं है जो धारण्य पर्वतों में है? बाल्य शिष्टमेन म निम्न श्रेणी क प्राणिओं और मानव-जाति के अद्यत्त अस्तित्व में भिन्न प्रस्तुत किया है। वे धनी शक्ति के सम्बन्ध में बटोर धम और बिलाप नहीं कर सकते वे धाम्यकार में जादने पड़े रहकर अपने पापी क लिए ररत नहीं कर सकते। उनमें ने कोई भी धारण्यीय अवस्था दीन-बुन्नी नहीं होता सामान्यतः जहाँ मन्धिमता अथिफ होती है वहाँ धामित कम होती है। यह मानव-जीवन में ही देता जा सकता है कि 'बचान एक स्वयं है' इनमें भी एक मावपूर्ण रूप छिपा है।

सामान्य एक किसान एक वार्षिक या एक रात्रनीतिज्ञ की प्रवेष्टा वम प्रशान्त स्थिति में रहता है ।

परन्तु, भारतीय जैसे जन्तुओं का जीवन स्पष्टतः जनस्पष्टिया की धरणा भ्रष्ट और अधिक जटिल होता है, ठीक इसी तरह से मानव-जीवन भी धर्म प्राणियों की मनुष्य भ्रष्टतम और अधिक जटिल होता है । इस धरणा का मनुष्य मूल्य रूप से प्रदर्शित नहीं किया जा सकता जिस प्रकार वह प्राकृतिक पदार्थों में प्रदर्शित किया जा सकता है । परन्तु यह स्पष्ट है कि सामान्यतः जन्तु पेश-पौष की तरह अपने धीरे धीरे की तरह अपनी प्राणियों को फिर पैदा से करने के प्रतिष्ठित एक स्थान से दूसरे स्थान को जान की योग्यता और अपने घास-भोजन के पदार्थों के प्रति कुछ इन्द्रिय प्राप्त करते हैं और कियाया व प्रति कुछ मनोबुद्ध्यात्मक प्रकृतियों दिखाते हैं । उच्चतर प्राणियों में जिनके मानव प्रतिष्ठित है परिस्थितिया का प्रति समाधान के लिए अधिक शक्तियाँ और जटिल मस्तिष्क होता है । यह जटिल प्राणियों का जीवन के कई प्रकार का करते हैं और पौषों के धनकों भद्र हो सकते हैं ता हम समपूर्वक यह कहते हैं कि हर एक जन्तु छोटी या अधिक मात्रा में कुछ मूल्य प्रकृति और किया करने की संवेदन-शक्ति और विषय योग्यता वाला एक पौष ही है । यदि यह बात सही है तो फिर हम यह भी कह सकते हैं कि एक मनुष्य भी भारतवर्ष में एक पौष ही है जिसमें जटिल जन्तुओं वाली विषयताओं भी है तथा यह विचार शक्ति और उसके साथ सम्बन्धित अन्य शक्तियों भी इनमें हैं । निम्नलिखित धर्म शक्तियों में से हम मानव की कुछ प्राकृतिक शक्तियों और प्रकृतियों के द्वारा जो भी से करने हैं जिस संबंध में कुछ मात्रा का प्रमाण होना ।

इस प्रकार हम मानव-जीवन में प्राप्त तीन प्रमुख पहलुओं के विषय में विचार कर सकते हैं । पहला पहलू जनस्पष्टि-सम्बन्धी मूल्य पशु-सम्बन्धी और तीसरा पहलू या अधिक महत्त्वपूर्ण है वह स्वयं उच्च सम्बन्धित है । मानव-जीवन का गौरव इसी जटिलता पर आधारित है । परन्तु यह हमारी शक्तियों का और कभी-कभी हमारे धन का धन भी जाना है । कुछ धर्मों में हमारी जटिल पौषों की तरह जटिल धर्म मीमांसा की कृपा पर भी आधारित होती है । जन्तुओं की तरह हम अपनी तथा मनोबुद्धियों और मस्तिष्कों द्वारा पशुधर्म भी हो सकते हैं । बिना हमें धर्म-भावना का ज्ञान होता है पर वह हमारा विषयित होने वाली चीज है । यह हमारे धर्म में सम्बन्धित निम्नलिखित पर शक्ति से ही आधारित बन जाता है । हमारा प्रकृति की जटिलता हमें मनुष्य की शक्ति और महानुभूति की सम्भावना प्रदान करती है । यह माना जा सकता है कि हमारा कुछ बुद्धि-धर्म से धर्म ही बनता है पर वह जटिलता हमारा आधारित पर जो मानवता का अधिक धन ही सम्भावना

भी रखती है। वह उन्हें धार्मिक उपयोग के लिए बिछुर भी कर सकती है।^१ विवेक स्वयं का प्रकाश कहा जा सकता है परन्तु जब वह धर्म-भिरहित होता है तो इसे सरसता से पकड़ना भी कर सकता है। मैफिस्तो फ्लिच (Mephistopheles) के धनुबाण उसका प्रबोध मानव को एक पशु से भी अधिक पार्थक्य होने में दिया जा सकता है। मानव प्रकृति की महान् समस्या उसके अपने अटिन सचटन के लिए उचित संतुलन प्राप्त करने की है।

अब हमें यह देखना है कि इस अटिनता द्वारा मानव-जीवन का सामाजिक पहलू अपने सामान्य ढाँचे में कौन प्रभावित होता है।

मनुष्य उत्पत्त एक सामाजिक प्राणी है। यह कहाँ तक सही है इस पर विचार करते हुए हम उसके निर्माण के प्रमुख घटकों का एक निबरण प्रस्तुत करना होना। यह स्पष्ट है कि उसकी प्रकृति का \times मानव को सामाजिक बनस्पति-परत सामाजिक सचटन के लिए आधार प्रकृति उपस्थित नहीं करता। पीछे निश्चित धर्मों से पुनर्जनन नहीं बढ़ना सकते और उनका पुनर्जनन स्थिति

की स्वीकार नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि बहुत अरबों वर्षों भी मुक्ति के ही ऐसे हैं। उनमें भी एक कभी नृणासा ~~एक~~ एक समूह होता है। वे धर्म में भारती के विकास की सामान्य प्रकृति के साथ प्रति रोचक और पटिन हय के साथ सम्बन्धित हैं। वे प्रायः पीछे अनुमो और मानव के जीवन पर भी सुख प्रभाव डालते हैं। सभी पीछे कम-से-कम सुदरे पीछों को उत्पन्न करते हैं। उनमें समूह में बढ़ने की प्रकृति होती है। कई पीछों की उन्नतता उनके एक से अधिक रूपों को उत्पन्न करने में समर्थ हो सकती है। प्राणियों के जीवन में जो इस तरह की समाज बर्तते हैं उन्हें उनके प्राथमिक रूप से बनस्पति-परत में समाज जाना चाहिए और वे अधिकतर प्राणियों में जोड़ा बहुत प्रारम्भ उत्पन्न करती हैं। ज्यादातर प्राणियों की पीछियों में तीन-सम्बन्धी विनता और तीन उत्पन्न मिलते हैं। उनके बच्चे कम-से-कम कुछ पक्षों में प्रकृति होते हैं और एक निश्चित काल तक माँ-बाप में से एक या दोनों की सहायता की आवश्यकता अनुभव करते हैं। घाने वाले लहर उन्हें एक समूह बना कर रखा करने की आवश्यकता अनुभव करने के लिए तैयार कर देते हैं। उन्हें कभी-कभी बर्त के किसी माँ में सुदरे लक्षण के उन्नत के लिए भोजन घानों की एकजिन करनी पड़ती है। कभी-कभी वह काम सामूहिक प्रयत्नों द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है। अतः अधिकतर उच्च स्तरी की विनता

१ इस पर मीन महारण की प्रोविनोमेना ह प्रकृत १९६ में प्रकृति लहर से ३६ टाला पता है।

जन्तु जातियों स्वामाशिक रूप से पूष-वर हानी हैं। यह सही है कि वे धार्मिक प्रकृति के समस्त-वश पर स्वामाशिक ही आधारित होती हैं। यद्यपि यह सब कुछ उनकी समझने की शक्तियों क्रियाओं मनोकृतियों तथा उनके मंत्रियों के विकास के द्वारा ही संभव हो सकता है।

यद्यपि यह स्पष्ट है कि मानवीय साहचर्य की भी इसी रूप से व्याख्या की जा सकती है। जैसा कि धरम्पू ने कहा है कि समाज का निर्माण जीवन के निमित्त किया गया। यद्यपि समाज मृत्वर-जीवन के लिए बनाया गया है और उसी के लिए उसको बराबर स्थिर रखा गया है। बच्चों की देखभाल भोजन और पानी का संग्रह पर्याप्त आशय और सरसता का विधान मानव समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। यद्यपि इन कारणों की भी मानव समाज की उत्पत्ति के लिए आवश्यक न समझे तो भी यह कारण मानव-समाज के निर्माण के लिए पर्याप्त सिद्ध होगा कि मनुष्य बिना समाज के अकेला नहीं रह सकता। यदि सामाजिक साहचर्य का कोई रूप उसके वास्तविक जीवन के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार के साहचर्य का प्राकृतिक रूप हम तथ्य से वास्तव के प्रभावित नहीं होता। विभिन्न नाम और स्थानों में उसके भिन्न भिन्न रूप पाये जाते हैं। फिर भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार का आशय पाया जाता है और कुछ स्थानों में उसका संग्रह दूसरे स्थानों की संरक्षा के लिए गहरा रहता है। और जिन अनेक पदों में सुरक्षा करनी पड़ती है वे भी विभिन्न प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए वे कभी-कभी गरमी कभी कभी ठंड कभी अनाकृष्टि कभी बाढ़ों कभी अंधों जानवरों और कभी दूसरे प्राणियों के द्वारा उत्पन्न होने रहते हैं। जन्तु भी कुछ बड़ी हद तक अपने आस-पास विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार अपने में समायोजन हैं। इसीलिए एक-ही जाति में व्यवहार के इस सर्वत्र प्राकृतिक होने हुए भी प्रायः मनुष्य विन्तुस एक जैसे नहीं होते।

परन्तु केवल वस्तु-वस्तु के आधार पर ही नहीं हम सामाजिक जीवन का व्याख्या के साध-साध जातिगत प्रकृति से सम्बन्धित कुछ तथ्य भी हैं जो साहचर्य की स्वामाशिक बनाते हैं। कुछ जन्तु दूसरा का विचार करते हैं यह उनकी प्रकृति का एक सामाशिक तत्व है। यही उन्हें अपने सुरक्षा और कभी-कभी दूसरों पर आक्रमण के लिए साहचर्य की धार प्रकृत करता है। कुछ घण्टा एक-ही जाति के जन्तुओं में करने अस्तित्व के लिए संघर्ष होता है। हम हम बिना-व-वश्य यह गणना है। परन्तु हम सम्बन्धित धनीगुण कुछ घण्टा में साहचर्य की प्रेरक है। कुछ विनयक भोजने और वास्तव में

मानव प्रभुत्व करत है। चिड़ियाँ भी अपने छोटे-छोटे बोंसलों में हमेशा मिस जुसकर राजामन्दी से ही नहीं रहती परन्तु जैसे वे लड़ने के लिए इकट्ठी होती हैं वैसे ही वे परस्पर सहयोग भी करती हैं। यह पूर्णतः एक कल्पना ही नहीं है कि मनुष्य की मनोवृत्ति कभी-कभी सपट्टन की शृंखला भी बन जाती है। सार्वभूमि में अभिन्नता ही व्यक्तियों की पृथक-पृथक रहनी है। संघर्ष और प्यार उन्हें मिलाते हैं। हेराक्लियस ने होमर की इस भावना की निन्दा की है कि

कितना अच्छा होता यदि संघर्ष बेबलाओं और मानव-जाति से नष्ट हो जाता। उसका यह विचार है कि संघर्ष समाप्त हो जाने का अर्थ है जीवन समाप्त हो जाना। इस विचार में न पढ़कर कम-से-कम हम यह तो कह सकते हैं कि प्राणियों के साहचर्य निर्माण में संघर्ष भी एक महत्त्व है। वे कभी मिलकर रहते हैं पर इसलिए नहीं कि वे एक-दूसरे की सहायता करेंगे अपितु इसलिए कि कोई और दूसरा उन्हें किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सके। इन सब सद्देश्यों के बारे में उन्हें किसी प्रकार का ज्ञान नहीं होता व तो मूक भावनाओं के पीछे काम करते रहते हैं। यदि पृथक रहने वाले एक-दूसरे के साथ सहयोग नहीं करेंगे तो वे प्रतिपदिता भी नहीं करेंगे। अतः हम सहयोग और प्रतिपदिता प्रम और संघर्ष इन दोनों को विपरीत होने पर भी एक साथ स्थापित करेंगे। क्योंकि यही बातें भावनाओं में आसन्न होकर जन्तुओं में सामाजिक-संगठन उत्पन्न करती हैं।

स्पष्ट रूप से यद्यपि मानव जीवन में भी इसी प्रकार विभागीय रहती हैं। वारस्परिक सहयोग और प्रतिपदिता कभी-कभी और जन समुदाय के निर्माण के प्रेरक हैं अथवा वे एकता के सूत्रों को और अधिक बृद्धिमान में सहयोग करते हैं किसी समय एक-दूसरे का समर्पण करते हैं तो कभी एक-दूसरे का विरोध। इस प्रकार दोनों बातों में वे एक दूसरे के साथ में तीव्र रहि लेते हैं। इसी भावना पर हम कह सकते हैं कि मनुष्य प्रकृति से ही सामाजिक है अतः ही मानवता के विनाश भूला और जन्तुओं से सम्बन्धित न हो।

परन्तु एक मनुष्य के रूप में उसकी विद्यमानता साहचर्यवासी प्रकृतिओं को एक मया महत्त्व प्रदान करती है। विवेक-वर्णित भूला रूप-सं एक एकल प्रदान करने वाली शक्ति है। भावन-संग्रह की अनेकानेक रूपों के लिए अथवा सहयोग की आवश्यकता है। उसे केवल वर्ष प्रतिवर्ष नहीं अथवा पीढ़ी दर-पीढ़ी इकट्ठा करना होगा है। बच्चों को मोक्ष-विचार के लिए प्रेरित करने और विचारों को मागदर्शन के लिए व्यवहार में आने के लिए एक सभ्य और एक साहचर्य की जिनगी आवश्यकता है। उद्योग आवश्यकता बनना और भावना मीलन में नहीं पड़ती है। बातों और वर्णों की अनेकानेक शक्ति और मशीनों का प्रयोग अथवा अथवा सहयोग और अथवा जन्म प्रविष्टिवादी की

भावना को जन्म देता है। भाषा का प्रयोग एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से घोर एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी से जिस तरह से बाँधता है वसा बंधन बन्तु जगत् में किसी रूप में नहीं पाया जा सकता। इसके साथ ही वह विभिन्न जातियाँ घोर लोगों के बीच कभी-कभी गहन पापबन्ध घोर हड़ बिरोध भी उत्पन्न करता है। परन्तु उससे भी मगलन के जटिल रूपों को अधिक दृढ़ता ही मिलती है। प्राणियों द्वारा बयानुक्रम से जपानित विद्यपताया के बारे में कुछ भी सही सिद्धांत नहीं है। परन्तु यह स्पष्ट है कि मानव की अपनी बिरोध उपसम्बन्धी साहचर्य के द्वारा ही प्राप्त हुई है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि मानव-समाज में मिलने वाली विषमताएँ हम बात के लिए पर्याप्त आधार नहीं बन सकतीं कि साहचर्य मनुष्य के लिए एक प्राकृतिक बन्तु नहीं है। परन्तु इससे यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि मानव-प्रकृति की महान् विषमताएँ विभिन्नता भय भाव घोर बिरोध तथा साथ-ही-साथ एकत्र को भी उत्पन्न करने वाली होती हैं। ये दोनों प्रकृतियाँ कुछ घंटों में साहचर्य मात्र से पूर्ण होती हैं परन्तु स्वभावतः ही साहचर्य के लिये रूपों को जन्म देती हैं जो परस्पर विरोधी घोर परिवर्तनशील होती हैं।

इन बातों को ध्यान में रखन हुए अब हम समुदाय के उन स्वरूपों पर घोर भी निरूपणकारक ढंग से विचार करेंगे जिनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे मनुष्य के लिए प्राकृतिक हैं।

यहाँ पर सामाजिक अध्ययन के आधार के रूप में प्रयुक्त मानव प्रकृति के विवरण के प्रमुख लक्षणों पर ध्यान देना उचित होगा। इस सम्बन्ध में ध्यान धारकित करने वालों में प्रथम श्रेष्ठ ज्येष्ठ

१. कुछ ऐतिहासिक घोर घटने हैं। हम उनके विचारों का यहाँ मक्षिण विवरण प्रस्तुत करेंगे घोर फिर बाद में विचार प्रकृतियों पर ध्यान देंगे।

१. यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका अभी कोर हल नहीं मिला है और हमारी व्याख्या का उत्तरदायित्व बीरशास्त्रियों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। सामाजिक का निर्यात का कि ऐसी विशेषताएँ संज्ञानुक्रम से घली हैं और उसके विचार को मनुष्य रूप से स्वे-स्व मशहब ने स्वीकार किया है। टार्लिन महोदय ने उस पर सन्देह किया था जो मनुष्य ने उन लक्षणों का प्रभावशाली प्रस्तुत किया है। या यह निर्यात करने को व बाव यह दर है कि एक व्यक्ति के जीवन में जन्म की घट विशेषताओं को उनकी सम्झना में नहीं पहुँचाया जा सकता। जन्म सिखा ही एक ऐसा प्रमुख मानव रूप जाता है जिसके मशहब मानव जाति को प्रमुख रूपशाल सम्पत्तियों को सुश्रित रखा जा सकता है। ऐतिहासिक विचारों को मनुष्य सातक ज्योत्स्ना के मुख्य प्रश्नों में से एक है और अभी पर उनही अन्य प्रश्नों में भी हल दिया गया

(क) प्लेटो के 'रिपब्लिक' में तीन प्रकार के विभाग प्रस्तुत किये गए हैं। कुछ धर्मों में उन्हीं को हम यहाँ रख रहे हैं। ये तीन विभाग प्लेटो के धार्मिक-राज्य में उपस्थित तीन विभिन्न वर्गों के बचपन को व्यक्त करने के लिए धारण किये गये हैं। प्लेटो के अनुसार ये तीन तत्व बचपन-शुभा-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बचपन-ऐपण-सम्बन्धी और चिन्तनशीलता-सम्बन्धी होते हैं। इन्हीं में बचपन-सम्बन्धित-वर्ग उद्योग, सेना और धारण हैं। अन्तिम दो वर्ग कई बातों में एक ही वर्ग के दो भाग समझ जाते हैं। इस बारे में कई प्रश्न उठाये जा सकते हैं परन्तु निम्नलिखित प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(१) सभी मनुष्यों में ये तीनों धारण मूल तत्व मिलते हैं। वे समाज में विभिन्न विशिष्ट वर्गों के उत्पन्न होने पर कोई धारण उपस्थित नहीं करते। (२) शुभा का पहलू धर्म से पहलुओं से अधिक बल के साथ पृथक् उपस्थित किया गया है। (३) संवेग या ऐपण सम्बन्धी पहलु, सनातन की धारणों में पर्याप्त रूप से नहीं देखा जाता। (४) एक धारण का कार्य मुक्ति से ही कुछ बुद्धि-सम्बन्धी कहा जा सकता है। इस धारणों के उत्तर में संक्षिप्त रूप से कुछ कहना उचित होगा।

(१) सभी मानव या मानव वर्ग के लिए धार्मिक धारणधर्मों की पूर्ण अनिवार्य है। उदाहरण के लिए जीवन-यापन उत्पत्ति और जातियों की बुद्धि सभी के लिए अनिवार्य है। ये कुछ धर्मों में शुभा के नाम से पुकारी जा सकती है। कुछ धर्मों में ये हमारे इन्द्रिय ज्ञान में भी धारण हैं जैसे गरमी सरसी बुल और धर्म धार्मिक धर्मों की अनुमति। सभी मनुष्य अपनी धारणों की पूर्णता के लिए और अपनी अनुमतिधर्मों को हटाने बचपन पूर्ण तरह से मिलाने के लिए कुछ धर्मों में अपने पक्ष प्रदर्शक विवेक का महारा मेत है। सभी लोग इस बात को जानते हैं कि विवेक एक मनुष्य अनुभव करता है वही केवल एकमात्र धारणधर्मता नहीं होती। धर्म-धर्म-धर्म धारणधर्मता की पूर्णता के लिए धर्म-धर्म-धर्म प्रमुख रूप से काम करते हैं। इसलिये जीवन के किसी विवेक पहलु को पृथक् रूप में लेकर कोई एक वर्ग उन्हीं में सगा रहे यह प्राकृतिक नहीं कहा जा सकता। धर्म विषय का विवेक प्रस्तुत करते समय यह धारण प्लेटो के रूप से उपस्थित किया है। यह धारण धार्मिक राज्य में संगठन पर धारणधर्म बल देता है। परन्तु उम बर्गों में एकदम से विभाजित कर देना लोगों की समाज विचारधारा के विकास को रोक्ता है जो लोगों के संगठन के लिए धारणधर्म भी है।

१. इन धर्मों में सुम्भन सभी बुद्ध के धर्म ३ धर्म ४ को देखा। इन धर्मों के धारणधर्म धारणधर्म की धारणधर्मों की भी धारणधर्म।

राम्म बर्ग चाहे उच्चबर्ग को न समझ सके परन्तु उच्चबर्ग के सुनिश्चित और ज्ञान-संक्रमण चाहे माण निम्न-बर्ग वालों के माथ कुछ मौखिक सहानुभूति प्रकल्प पाये हैं।

(२) यह लोग औद्योगिक वर्ग—को-शुधाया को तृप्ति में सम्बन्धित है या दूसरे दो बर्ग—को विवेक लाकित से सम्बन्धित है। दोनों के वास्तव्य में एक दृष्टिपोषण होता है। केवल दूसरे दो वर्गों के लिए कोई सुनिश्चित सिद्धांत आती है परन्तु औद्योगिक वर्ग कबल दूसरों की इच्छाओं पर निर्भर बना रहें हैं भी अपेक्षित नहीं है। परन्तु बड़े भी धन कार्य में एसी कर्मात्मकता उत्पन्न कर सक्ता है जिसमें सब लोगों के लिए एक सुन्दर वातावरण पैदा हो सके। सम्भव प्यत्रे का विचार यह था कि वास्तव में लोग एसी शिक्षा का प्रकल्प करें जो इन वास्तव्यताओं की पूर्ति कर सके। परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रकार की शिक्षा प्रकल्प ही उच्चबर्ग की शिक्षा के समान होगी और फिर बड़े ऐसा प्रमाण देना करेंगी जिसका कुछ भी धर्म नहीं होगा। धर्म्य समस्याओं के साथ परन्तु महारथ न भी इस समस्या का सम्मुख रगा है।^१ वर्तमान समय में जो यह धीर भी स्पष्ट हो उगी है। धर्म्य लोग उद्योग के तकनीकी तरीकों के माथ गतिष्ठ और धर्म्य विज्ञान का प्रयोग भी करने लगे हैं और इसके माथ मुठ सम्बन्धी सभी मामलों की जानकारी भी चाहत है।

(३) यह भी स्पष्ट गमन है कि भौतिक जीवन को जीवन एक एका प्राकृतिक रूप समझा जाए जिसमें मानव प्रवृत्ति की ऐपणा प्रकृता महत्वाकांक्षा का तत्त्व प्रकट हो। प्यत्रे स्वयं मुठ का एक समान समाज के राज्य से उत्पन्न होने वाला बनाता है। उनका धारण सकार विज्ञान रूप में इसी विचार के माथ प्रायोगिक किया गया है। निरूपण ही मानव प्रवृत्ति का ऐपणा-सम्बन्धी गता प्रम और संघर्ष में जीका भावना में नाहस में बहिता और धर्म्य सभी उच्च बर्गों में बिम्बाई देता है। प्यत्रे यद्यपि स्वयं एक बहि और मानवकार से परन्तु बहिष्क सम्बन्धी कता को उगहोने प्रायोगिक-शिक्षा के परिणित बहो भी कार्य स्पष्ट नहीं दिया और नादयनता का तो एकदम में ही बहो भी नहीं रगा है। यह दिखाई देता है कि बहिष्क न पगनी बाद की और प्रारम्भिक बहिष्काओं में पगनी प्रवृत्ति के समान को अभिष्कण किया है। वर्तमान काल में धर्म्य-जन्मा एवं औद्योगिक कता भी पूरी तरह बर्मानिक और प्रायोगिक बन गई है। इनके माथ ही के प्रमुख रूप में विज्ञान और यंत्रा ग सम्बन्धित लोग के हाथ में भी बनी गई है।

(४) किसी राज्य का शासन निश्चित रूप में एक विचारशील व्यक्ति

^१ धर्म्य बहोदय की पुस्तक "कानिश्कन राज्य" का पृष्ठ २-५ देखिए।

होगा है। निस्सन्देह उसको अपने विवेक का प्रयोग एक उद्योगशास्त्र के मुक्तिया की अपेक्षा अधिक समन्वयारमक-रूप से करना पड़ता है। परन्तु वह अपने विवेक का प्रयोग एक कमाऊ-कार व्यवसायिक से कम ही करता है। प्लेटो चाहता था कि राजा भाग धार्मिक हों। यह तो निश्चित रूप से वाञ्छनीय है कि वे लोग धार्मिक संस्कारों से युक्त हों। परन्तु हम के विभाजन के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार यह दिखाई पड़ता है कि कुछ धीरे व्यावहारिक विज्ञान के विद्यार्थी तथा सिद्धान्त-मात्र या केवल कृत्रिम-भाव जानने वाले विद्यार्थी में कुछ अन्तर प्रकट होगा चाहिए। परन्तु मैं इस पर विरोध करने से बच गया हूँ। उसे ही अब हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

(ख) परन्तु ने जीवन के तीन पहलुओं को सम्मिलित ही है। उनका विवरण हम पहले प्रस्तुत कर चुके हैं। बर्षी-वस को उसने प्रविवेकपूर्ण कहा है और अन्तुष्ठा सम्बन्धी पहलु में विवेक या विचार को स्थान दिया है। उसने विवेक को पाण्डित्य-प्रवृत्तियों के नियमन तथा समय के रूप में धीरे विरोध उद्देश्य के अनुष्ठीयन करने के रूप में विवक्षित किया है।^१

इस विस्तारण को पूर्ण सगोचरजनक नहीं कहा जा सकता। इसने परन्तु की मूलिक मूर्तियों की व्याख्या के समय कुछ असमाज उपस्थित किया है।

उन्हे कुछ अन्त में हमारी जीव धारकमकताया की पूर्ति में नियमितता माने के साध-साध कुछ अर्थों में हमारी पाण्डित्य प्रवृत्तियों को संयमित करने में सम्बन्धित सम्मत्ता चाहिए। परन्तु उनकी पूर्ण व्याख्या का उत्तरदायित्व तो नीतिशास्त्र पर ही छोड़ देना चाहिए। समाज-दलन व्यवसाय राजनीति-शास्त्र में परन्तु महोदय ने बर्षों के तीव्र भद्र की प्रवृत्तियों की है। यह वह जनता के पूर्ण मूलिक संवर्धन की व्याख्या में प्लेटो की अपेक्षा अधिक सफल हुआ है (कम-कम अब रिपब्लिक^२ को हम प्लेटो के विचारों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाली पुस्तक मानते हैं।)

इसकी धारा उसके द्वारा विवेक का दो रूपों में विभाजन^३ उस प्लेटो की अपेक्षा वैज्ञानिक धीरे व्यावहारिक जीवन में एक तीव्र पार्श्वक उद्देश्य करने की ओर से जाना है। कभी-कभी वह ऐसा कहना दीखता है कि

१ परन्तु महोदय की पुस्तक निम्नोक्तिजनक विवेक व्यवसाय ? पृ. १३ का देखिए।

२ यह निम्नोक्तिजनक व्यावहारिक कार्य। निम्नोक्तिजनक यह धीरे का बहुत महत्त्व तक विभागा जा सकता है। कार्य मूलक एक-मा ही रहना है जो कि बलवत् प्रयोग प्रदान-निम्नोक्तिजनक प्रवृत्तियों के सामर्थ्य में किया जाय। यह रूप धार्मिक जनक बर्षों प्रवृत्तियों का समर्थन करता है। यह सत्य है कि कुछ लोग तो अपने विचारों का व्यवस्थित करने में कार्य बलवत् लोग बहुत रूप से अपनी अनुभूति का व्यवसाय करने बर्षों का व्यवस्थित करने में धार्मिक निम्नोक्तिजनक है।

एक दार्शनिक और एक समाजिक का जीवन एक राजनीतिक और एक नागरिक का जीवन से पूर्णतः भिन्न है।^१ परन्तु उनमें उमें यह कह कर कुछ अन्तर प्रकट कर दिया है कि बाप बाप पहले वाले लोगों के लिए आवश्यक आधार प्रस्तुत करत हैं। 'गुलामों के लिए प्राराम नहीं है।' सर्वप्रथम हम जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यहाँ तक कि थोड़ा जावन वाले लोगों के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है। उसके बाद ही ज्ञान और विज्ञान के लिए परमानन्द का काम किसी की ही हो सकता है।^२ परन्तु वह इन बातों को भुलकर यही मान्यता देता बीजता है कि सामान्यतः मनुष्यों के उत्तम जीवन के प्रत्यक्षीकरण के लिए ज्ञान और विज्ञान स्वतः कोई साधन हों। जन्मे या परन्तु में क्या कहा या उनमें हमें ज्ञान कुछ भी वास्तविक सम्बन्ध नहीं रहते। परन्तु हमारा सम्बन्ध तो इस बात में है कि वे लोग क्या कहना चाहते हैं और कितना कह पाए। यदि उन्होंने पूर्णतः उचित कह दिया और उनके कहने का यही मतलब था तो निस्सन्देह वह सब ठीक है। कुछ भी हा उनका विचार वाली सीमा तक ठीक था।

(घ) वर्तमान समय में प्लेटो और परन्तु के सिद्धांतों का एक अच्छा प्रभाव पड़ा है। ये कुछ घंटों में स्टोइका के द्वारा उत्पन्न किए तीव्र विरोध के द्वारा प्रतिगन्धित हो गए थे। स्टोइकों ने मानव प्रकृति के शुद्ध विषय और अकारणता के तत्त्व में विराय उत्पन्न किया है। सारांग में कार्निजियन ने इस विरोध कायना का समर्थन किया है। जीवन के बर्मे-निरपण धार पवित्र पहनुओं के विराय में आ स्वयं भी कुछ मिलता मिय हुए था। धनकों सागा को प्रभावित किया। उनमें एक और ईश्वर को प्रोत्साहन दिया दूसरी तरफ धातु विज्ञान मनोविज्ञान और सभजन जीवन की एकता पर इस प्रकार से बस दिया है कि जीवन के विभिन्न पहनुओं का मूलक बन्ध बिगड़ गई पड़ता है। धन सारांग में मानव-जीवन के विभिन्न पहनुओं में परिपूरकता माने में बनी रही है और कभी-कभी एक साथ और कभी-कभी दूसरे भाग पर अनुचित रूप से बन् देता है। वर्तमान समय में जीवन का आविष्कार-वत् बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। समाज की ध्याना बर्मे वाले विज्ञानों में धन सास्त्र को ध्याना सबसे अधिक का मर् है। वह धनने बने से बाहर केन्द्रीय स्थान को ग्रहण करता आ रहा है। कार्निजियन और एरिस्म ने इसका विराय करके नीतिज्ञता तथा बसा के धितारों को दुर्ज्ञा प्रणय करके एक अच्छा और शशा का कार्य किया है। दूसरी तरफ

१. अज्ञान (१) २० पृष्ठ ७८। इनकी पुस्तक "सिद्धि" में १०८ भी है।

२. कार्निजियन (१) ४ पृष्ठ १२।

संस्कृति के पक्षपाती कभी-कभी यूनानी विचारों द्वारा सोझा-सा सम्बंध पाकर-जीवन के औद्योगिक और वाणिज्य सम्बन्धी पहलु के बारे में समुचित सोझ प्रदर्शित करते हैं। नैतिकता और धर्म के पक्षपाती कभी-कभी औद्योगिक जीवन तथा और संस्कृति के अधिकारों के प्रति सोझी महानुभूति दिखाते हैं। यह प्रथम रूप में दृष्ट-दर्शन का एक नवीनीकरण है और अपने तथा धर्मों की रचनाओं का एक विशेष अध्ययन है जिसे मानव-प्रकृति में सम्बन्धित विभिन्न-तरहों की सम्बन्धित विचारधारा को प्रस्तुत करने में महत्त्वता भी है।

यह विवरण बहुत-बुद्ध रूप में एक समूह विचार ही है परन्तु मावी विरमपण को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सहायक होना।

द्वितीय अध्याय समुदाय

प्रथम अध्याय के विवरण से यह स्पष्ट है कि समाज एक प्राकृतिक सामाजिक व्यवस्था है। मानव प्रकृति के सभी आवश्यक-भूत तत्त्व सामाजिक-संगठन के किसी-न-किसी रूप का जन्म देते हैं। सभी प्राणियों में समुदाय का प्राकृतिक ही कुछ आवश्यकताएँ होती हैं (जिन्हें हम यहाँ 'आधार' कह सकते हैं।) जैसे भोजन और पानी की उपलब्धता और मरती से बचाव की सुरक्षा और बाढ़ से सुरक्षा की और रोग एवं जंगली पशुओं से बचाव आदि की आवश्यकताएँ पड़ती हैं। सभी प्राणी अपनी जाति को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। इसलिए दूसरों से सहयोग प्रत्यक्ष प्राणी के लिए आवश्यक हो जाता है। हमारी विशेष प्राकृतिक आवश्यकताएँ जैसे भोजन और पानी की प्रकृति तथा सभी जैविक आवश्यकताओं के कारण और घूमने वाली विभिन्न मनोवृत्तियाँ और हमारे संविग हमें एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों में बाँधते हैं जो हमारे लिए घनिष्ठ रूप से प्रेरित करते हैं। समुदाय बनाने के लिए इन सभी तथ्यों के लिए घनिष्ठ रूप से बाँधपित करने वाले हमारे कुछ मानवीय गुण हैं जो हमारे सुविकसित चित्त तब से पैदा होते हैं। यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के लिए सामाजिक संगठन का सम्बन्ध-बन्ध जोड़ने-जोड़ने रूप से उत्पन्न हो प्राकृतिक सम्बन्धों के लिए जिम्मेदार तब ही प्रकृति और पानी का जोड़ने-जोड़ने रूप में आवश्यक होता है। बटमर महोदय के शब्दों में 'एक मनुष्य का एक-दूसरे मनुष्य की ओर बाँधपित होना एका एक प्राकृतिक मिश्रण है कि एक ही वन की भूमि पर जन्मने-दिल के कारण एक जमीन ही बसावटी जिन या मानव जन्म लेने के कारण एक-दूसरे के परस्पर एक-दूसरे जलपरी, धरती, पृथिवी का कारण बन पाते हैं तथा उनमें से कोई भी बात हमें महाप्राकृतिक ही होती है। इन प्रकार के सामाजिक के सम्बन्धों जिनके सामान्य के द्वारा नहीं परन्तु निम्न से निम्नतम धरती से लोग ही द्वारा ही सामान्य निर्धारित और प्राकृतिक नियमों से होते हैं। ये सम्बन्ध ही मानव जाति को एक

छोटे से आत्म और सहभागिता के बन्धनों में बाँधने के लिए पर्याप्त है। कितने कमजोर हैं वे बन्धन ! इन्हें ही यदि मूढ़ता से उम मगडन के वास्तविक सिद्धान्त के रूप में समझ लिया जाए तो कितनी उपहासास्पद बात होगी। परन्तु सच्चाई तो यह है कि वे कुछ ऐसे व्यवहारों को उत्पन्न करते हैं जैसे कोई-कोई वस्तु किसी-न-किसी वस्तु से तो उत्पन्न होती है। जिसकी धार हमारी प्रवृत्ति अपने पूर्व मूकान और प्रकृति के अनुसार हमें खींचे ले जाती है। यदि हमारे पूर्व के संस्कारों और हमारी प्रवृत्ति के मूकानों को खान नहीं दिया जाएगा तो इस प्रकार के व्यवहारों का कुछ भी महत्त्व नहीं होगा।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता जैसा बटलर ने पूर्वोक्त संश्लेष में कहा है कि मानव-जाति में पाए जाने वाले साहचर्य को उचित रूप में उसी तरह परम्परागत कहा जा सकता है

२ समुदाय में जैसे कटि व्यवसाय के प्रयोग परम्परागत होते परम्परागत तत्त्व हैं। यह मनुष्य की विचारशील प्रवृत्ति का ही महत्त्व है कि हममें जयन समायोजन और यन्त्रों को चलाने की क्षमता है। हमारे साहचर्य के रूप मनोवृत्त्यात्मक प्रकृति के नहीं होते जैसे निम्न वर्णों के प्राणियों में समूह बनाकर रहने का स्वभाव होता है। हम अपने मित्र और शत्रुओं का जयन कभी-कभी अच्छी तरह सोच-समझ कर कभी-कभी या ही स्वेच्छा से और कभी-कभी मनोवृत्ति के आधार पर विभिन्न प्रकार से करते हैं। हमारे शिक्षण और हमारी प्रथाएँ कुछ घण्टों में अपने शिक्षण पर कुछ घण्टों में बहानुगतकम से प्राप्त होने वाली मानवधर्मों से उत्पन्न धारणा पर कुछ घण्टा में अपने वातावरण के प्रति जमिक और धनज्ञान समा योजन पर कुछ घण्टों में महान् व्यक्तित्व वाले लोगों के धार्मिक प्रभावों कुछ घण्टों में भूमन ध्यान प्रथाओं पर और प्रायः कुछ घण्टों में विशेष लोगों समूहों तथा हमारे लोगों के दबावों पर आधारित होती है। हमारे नियम-कानून और मरकर के ये रूप बहुत सीमा तक विनास की मन्त्र प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त हुए हैं। इस प्रक्रिया में विवेक-सहित जयन का हाथ महत्त्वपूर्ण घण्टों तक रहा है। परन्तु इस प्रकार के बुलाव करन बाय सोप बढ़ी-बढ़ी परिस्थितियों के दबावों में प्रथाओं के भ्रष्टा होने वाली ताकतों से समझौते की इच्छा से तथा धर्म धारस्मिक एवं धवर्गनीय प्रभावों के द्वारा निर्दिष्ट और व्यवस्थित होते रहे हैं। इस तरह से प्राप्त हुए धन में परम्परागत बन जाते हैं और फिर वे परम्पराएँ मनुष्य के लिए स्वाभाविक हो जाती हैं। मनुष्य के लिए विषय कानून नीति विचार और मरकार की विभिन्न प्रणालियों का होना उतना ही स्वाभाविक है जितना विधियाँ के लिए विशेष प्रकार के धर्मों होना आवश्यक होता है। यह भी स्वाभाविक है कि मनुष्य विधियों की प्रयोगात्मक सिद्धि मिलने से।

मनोवृत्ति के परिष्कार प्रदान रूप में एक-समान होते हैं परन्तु ज्ञान के परिष्कार मिश्रतापूर्ण होते हैं। वे कुछ घटकों में हमारी मनोवृत्तियाँ पर और कुछ घटकों में बदलती हुई परिस्थितियों के इशारों पर आधारित होते हैं। वे हमारे जटिल सम्बन्धों की समानता और मिश्रता के दोनों रूपों में मिलते हैं। सारांश में हम अपनी मानव-समाज की व्याख्या में यही बतलाना चाहते हैं।

मानव-साहचर्य की प्राकृतिक और सजीव रूप में साम्यता देना उसे उगक और सम्बन्धी स्वभाव की धार से जाना है। उसे प्राकृतिक और ज्ञान सम्बन्धी होने की साम्यता देना सामाजिक संविदा की व्यवस्था की धार से जाना है। हम जो रूपों पर कुछ प्रकार का ज्ञान हमारी सामाजिक प्रवृत्ति को समझने के लिए आवश्यक मिला हो सकता है। यहाँ संविदा की व्यवस्था से शुरू करना ही उचित होगा।

यह एक पुरानी व्यवस्था है। परन्तु प्यटो के 'रिपब्लिक' के दूसरे भाग में हम स्थान नहीं मिला। प्राचिनकाल में हमारा एक समाज इतिहास मिलता है। बहुत संज्ञा में हम उसका यहाँ विवेचन करेंगे।

१ सामाजिक संविदा की साम्य यहोप्य में सामाजिक संविदा की व्यवस्था

व्यवस्था

की बहुत ही जटिल और बहुत ही ठंड-मगन रूप में प्रस्तुत किया है। साम्य के अनुसार मानवता की

प्राकृतिक स्थिति सब लोगों के द्वारा सबके विरुद्ध एक युद्ध के रूप में भी

जिगम एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए भेड़िया था। उस व्यवस्था में जीवन

पूर्वक हीन-हीन जंदाजी युक्ति और युद्ध था। सभी लोगों की शक्ति

समानता की भावना में किसी एक को स्थायी प्रमुखता प्राप्त करने में सफल

नहीं होने दिया क्योंकि सभी लोग स्वभावतः समानता चाहते थे। सब सब

के मिलकर धारण में भगवा न करने की शक्ति की और पूर्ण शक्ति की स्थापना

की। यह सब कुछ एक संविदा के रूप में सम्पन्न हुआ। हम संविदा के अनुसार

संविदा धारण में अतः (द्वितीयक) धर्मियों को स्थापित और व्यवस्था के लिए एक सरकार की स्थापना की और उसका प्रति निश्चयान् रहने का बचन

दिया। इस प्रकार एक समाजिक स्थापना का कारण मनुष्य मनुष्य के लिए बनना बन गया।

१ साम्य महा न के प्रमुख निष्कर्षों की समीक्षा में संविदा की पुनः उद्घाटन
१ * ११ १३३ में प्राप्त की - मन्त्री है।

है। कसो ने इस सभिता को सवा क लिए घटस नही माना परन्तु उसे घापवी घषबोध के रूप म समाम्य इच्छा क अनुसार निरन्तर नवीनीकरण के रूप में माना है। इस घषधारणा पर हम घामे बिचार करेमे। इस बीच यह कहना पर्याप्त होगा कि बीरे-बीरे लागों न यह मानना सुरु कर दिया बा कि यह बात एकदम कस्यना-माव है पर यह उल्कष्ट कस्यना भी नही कि कभी मानव-जावि म कोई सामाजिक बचन नही बा। घस में मानव और जन्तुघों के जीवन के बीच का सम्बन्ध जिसम मागरिक साहचर्य का घसकृठ प्रारम स्पष्ट बिसाई देता है समाप्त कर दिया गया। परन्तु माधुनिक बिक्रम के सिद्धान्त ने इस घाव धारणा की घषहमना करना हमेशा के लिए घसम्भव बना दिया है। ऐसे सिद्धान्तों की माम्यता स पूर्ण कुच घजों म पाणविक जीवन का साम्बानुमान करना चाहिए। जवाहरण के लिए घषघपीयर महादम ने मधुमबिषया का बखन इस प्रकार क किया

‘प्राणिलस (मधुमबिषया) विला देती हैं प्रकृति के सासन को
 घषबस्था के एक रूप’ को मानव-सासन को।

उनका एक राजा है और हैं सविकारी बर्ग
 उनमे कुच ग्यावाधीघ सुधार करते घपने घर नर

घम्य सीसागरी की तरह करते हैं बिदेश में घ्याघार
 बूवरे सेनिकों को भावि घपने बंको में हुमियारकम

बनाते हैं घरने बूठे घीरम की मजमनो बूब के संकुरी को
 घोर वे स्व-गूठ से सासम्य लिए घनियान में

परुबते हैं मरने-सम्राट् के राग्य-कुडीर पर।
 सस्राट् भी भाही सवेक्षण में है घसत

उपर कलाकार बना रहे हैं स्वसमहल पुकजन में मरत
 नागरिक-गल बुडा रहे हैं घहब;

घरीब मागिब-सै कुली भोग में
 बास रहे हैं घपने बोध को घोड डार के तड नर

उपर निरान-नैत्रों बाता ग्यावाधीघ घपने गुञ्जव से
 बाहता है हुडाना घषबस्थापक-मण्डल के प्रमाव को।”

निरस-बैह, कुच घजो म घे क्राव्य-वसिषया काल्पनिक है परन्तु इन में

घबरना के रूप का घष नही घषवसिष-घष मे है।
 मंवरण मेदरिड महादम का मधुमबिषयो नर निघा गया निराल कुच बंठों में

काल्पनिक है। केम मदीरन मे किक नर किक निराल किया जा मकना है
 कवनी बुकन सासलसाधक म डरनघीरन कक म कीर-नर्गनों क सामाजिक
 बंध को उन्कर बसाहलनों द्वारा पररिण किया है।

पर्यन्त सत्य छिपा है। इसके अनुसार मानव-जीवन को प्राकृतिक स्थिति में पशुओं के जीवन से भी अधिक स्वेच्छाप्रायी माना जा सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य की चिन्तन-शक्ति जो उसे बड़े-बड़े अधिकार पाने के लिए प्रोत्साहन देती है समाज के प्राकृतिक संगठन को तोड़ने के लिए भी तैयार रहती है। इस प्रकार एक अधिक जटिल समूह की संरचना होती है जो एक निश्चित संविदा पर आधारित होता है।^१ इस संरचना को कसो द्वारा लक्षित कहा जा सकता है, यद्यपि स्पष्ट रूप में ऐसा कहा भी नहीं जा सकता। सम्भवतः बर्क की प्रसिद्ध घोषणा इसके लिए वास्तव ही सिद्ध हुई कि समाज वास्तव में एक संविदा है। प्रत्येकान्तिक स्वार्थों के लिए की गई वे सहायक संविदाएँ इच्छा अनुसार समाप्त की जा सकती हैं। परन्तु राज्य को निर्बल और काँटी कपड़ा या लम्बाकू के व्यापार की सामक की रजामन्दी का नाम नहीं समझा जा सकता और इसी प्रकार उसे कोई निम्न प्रेणी की मासूनी-सी चीज भी नहीं समझा जा सकता है जिस कुछ स्वतन्त्रतावादी स्वार्थों के लिए बनाया गया हो और विभिन्न दलों की इच्छाओं के अनुसार समाप्त कर दिया जाए। वह एक सम्मान की वस्तु है क्योंकि वह उन वस्तुओं का साम्य नहीं है जो प्रत्येकान्तिक और तत्पर प्रकृति से स्पष्ट परिचित अस्तित्व के लिए होती हैं। वह सभी विज्ञानों का एक साम्य है, वह सभी कलाओं और सभी पुरुषों के पुरुषत्व का एक साम्य है। इस प्रकार के साम्य का अन्तर्गत पीढ़ियों तक अन्त नहीं हो सकता। वह अविच्छिन्न रहने वाला व्यक्तियों का ही एक साम्य नहीं है परन्तु वह तो उन लोगों के बीच का एक साम्य है जो मर चुके हैं और जो अविद्यम में जन्म लेते। प्रत्येक विशेष स्थिति की प्रत्येक लक्षणा आसक्त समाज के परम मौखिक लक्षणा की एक भाग है। वह निरन्तर निम्नतर और उच्चतर प्रकृतियों को एक मूल में विरोध है, दुःख और अज्ञान संसार को मिटाता है। उसके से सब काय एक निश्चित स्थान पर निम्न लक्षियों द्वारा सम्पन्न होते हैं। उसकी वे लक्षणाएँ भी सभी प्रकार की मोक्षिकता और अतिशयता की शक्तों को दुर्लभ देने वाली होती हैं। राज्य का कानून उन लोगों की इच्छा का विषय नहीं बन सकता जो धरने-धारकों विषयी वैधानिकता के कारण उससे ऊपर समझे हैं और असीम अस्पृष्टता प्रदर्शित करते हैं वे सभी अस्पृष्टता के पालनी प्रपनी इच्छाएँ उन नियम को अर्पित करने के लिए बाध्य होते हैं।^२ इसमें शक नहीं है कि यदि इस उद्धारण का वैधानिक दृष्टिकोण से

१ कसो के विचारों के बारे में बहुत विवाद में ही है, बर्क को दुर्लभ ऐतिहासिक दृष्टिकोण में बाधा का लक्षणा है।

२ बर्क महोदय के विचार अत्यन्त ही कठिन से विचार और आलोचनापूर्ण प्रमाणों से युक्त "ऐतिहासिक विचारों की शक्ति" में प्रस्तुत विवेक है।

देखा जाए तो यह बहुत अधिक अस्पष्ट और धासकारिक दिखाई देगा। पर यह पर्याप्त रूप से समाज के सामान्य समझ और एक राज्य से सम्बन्धित विवेक प्रकार के समझन में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं करता। परन्तु यह कम से-कम एक मौखिक मन्त्रिणा की प्रवचनारणा के बोध को प्रकाश में लाता है और एक प्राकृतिक मन्त्री और अन्य अगोप्य एकता-सम्बन्धी मन्त्र प्रवचनारणा से परिचय कराता है।

मानव-समाज की एक जीवित शरीरधारी अवयवी के साथ तुलना की जा सकती है। यह विचार विस्तारहीन सोचा के मस्तिष्क में बहुत पहले से ही

४ शरीर एकता की प्रवचनारणा

या गया था। इस सम्बन्ध में जेटो के 'रिपब्लिक' में विचार विवेचन किया गया है। इसकी तुलना के और उसके अन्य भागों से की गई है।^१ यह विचार ईमानसीह और शेप्ट पॉल के प्रवचनों में भी मिलता है। और अनेक प्राकृतिक लेखकों ने भी प्रभावपूर्ण ढंग से ऐसे ही प्रयोजन किये हैं। परन्तु इसका अधिक विस्तृत विवेचन हरबर्ट स्पेन्सर^२ और डोफम^३ की समाज-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकों में प्राप्त हो सकता है। इन लेखकों ने मानव-समाज और एक जीवित शरीर की आपसी तुलना की है। परन्तु यह सम्भवतः उतनी ही गमत् है जितनी सही है। उन प्रवचनारणायों में महत्त्वपूर्ण कितना भाग है उसे संक्षेप में देखिए।

समाज एक जीवित वस्तु है अर्थात् यह एक निर्जीव मशीन की तरह नहीं है। संविदा की प्रवचनारणा से यही प्रकट होता है कि उसमें एक स्वाभाविक बृद्धि होती रहती है। और यदि इस बात पर बहुत अधिक बल दिया जाए जैसा कि शरीर एकता के प्रति किया है तो इससे हम मानव-समाज में स्थान व्यवस्था की अवहेलना कर देने की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। एक प्राकृतिक अवयवी (जीवधारी) अपने शारीरिक ढाँचे में न कुछ जोड़ सकता है और न अपने अंगों की रचना में सामान्य परिवर्तन कर सकता है। पर इसके विपरीत एक समाज अपने समय ज्ञान द्वारा अपने-आपको एकदम बदल सकता है और पुरातन में तादात्त नया अंग ही धारण कर सकता है। यदि इसकी बृद्धि होती है तो उसका अनिवायत विनाश आवश्यक नहीं। वह मात्र और प्रतिक्रम नहीं (एक पौराणिक पक्ष) की तरह पुनः पुनः नुवाचन की धारण

१. शरीरधारी की शेरिओलावस इन्डिया।

२. डिग्रीदम्ब ऑफ़ शैथिओलाजी भाग I।

३. "Bau und Leben des sozialen Körpers" एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। परन्तु अनेक इतिहासियों में प्रति निरुद्ध है।

है और इस तरह से व्यक्त किया गया निरूप्य उस समूह में बहुसंख्यक लोगों की इच्छा होगी। इसे हम एक समुक्त इच्छा कह सकते हैं किन्तु एक सामान्य इच्छा नहीं। डॉ० बोसकी^१ और कुछ अन्य लोगों ने इस विरूपण को स्वीकार नहीं किया है। परन्तु उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि लोगों की एक संख्यक इच्छा होती है यद्यपि उसे मरमता न प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उसे बोट की सपेक्षा बहस या बातचीत द्वारा जाना जा सकता है। यह विरूपण प्रथम सन्तोषजनक है परन्तु इच्छा-शक्ति की सामान्य प्रकृति से हम यह जान सकते हैं कि सही रूप से किन घटकों में यह कहा जा सकता है कि लोगों की एक सामान्य इच्छा होती है।

किसी विशेष अवसर पर व्यक्ति की इच्छा उसकी स्वेच्छा से किया हुआ निर्णय होती है। किसी वास्तविक जीवन के समय किया करने के प्रत्येक बंध स्वरूप मान्य होते हैं (कभी-कभी उनमें से कुछ न करना भी एक भाग होता है) जिन पर कोई निर्णय निर्धारित किया जा सकता है। प्रायः प्रत्येक वैयक्तिक मार्ग के पक्ष में कुछ विचार होते हैं और उनका कम या अधिक तुलनात्मक महत्त्व निर्णय ही निर्धारित किया जा सकता है। विपुल व्यक्तिगत निर्णय के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण का पूर्ण निर्णयिक होता है। वह उसके द्वारा हुए सभी और जिन के तुलनात्मक मूल्यांकन के आधार पर निर्णय कर सकता है। परन्तु हमने अन्य मामलों में समस्त बहुसंख्यक मामलों में अन्य लोगों के दृष्टिकोण का भी उस पर प्रभाव पड़ता है।

जब मेरुबेय और मेरी मंत्रालय बनाने की हत्या के बारे में विचार कर रहे थे तो वह कार्य स्वयं मरुबेय द्वारा किया जाता था और प्रथम निर्णय उसी पर आधारित हुआ चाहिए था। परन्तु दासमपीदार के प्रस्तुत करने के बाद न अनुसार (विशेषा काई भी ऐतिहासिक आधार दिगर्द नहीं बना) उनका प्रथम विचार में उसे सारे विरूपण को छोड़ देने के लिए बाध्य कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम निर्णय मेरी मंत्रालय पर छोड़ा जाता तो वह भी इस कार्य को करने में सक्षम करती। वह अपने पति के सबेह और समय को हटाने के लिए पर्याप्त दृढ़ दिगर्द देनी है। परन्तु प्रकृत वह कार्य विधा

१. डॉ० की पुस्तक 'विलासविज्ञान क्या है और कैसे विकसित करवायें' देखिए।
२. इच्छा-शक्ति की सामान्य प्रकृति पर प्रा० ग्यार की पुस्तक 'मनुष्य के चेतन और अचेतन' का अध्ययन करें। इस पुस्तक के अन्तर्गत डॉ० मरुबेय की पुस्तक 'मनुष्य के चेतन और अचेतन' का अध्ययन करें। इस पुस्तक के अन्तर्गत डॉ० मरुबेय की पुस्तक 'मनुष्य के चेतन और अचेतन' का अध्ययन करें। इस पुस्तक के अन्तर्गत डॉ० मरुबेय की पुस्तक 'मनुष्य के चेतन और अचेतन' का अध्ययन करें।

बाधा है। घण नहीं कहा जा सकता है कि इच्छा-शक्ति साहसपूर्ण कार्य है। हम इसे सहकारी कार्य इसलिए कह सकते हैं कि एक व्यक्ति का निर्णय अधिष्ठतर उसके साथ काम करने वाले अन्य व्यक्तियों के इच्छाओं द्वारा प्रभावित घबरा निर्धारित हुआ करता है। इसे हम एक सामान्य इच्छा मुद्रिका से ही कह सकते हैं और उचित रूप से इसे हम समुक्त इच्छा भी नहीं कह सकते हैं। परन्तु इसे हम सहकारी की इच्छा ही कह सकते हैं।

फिर एक दूसरा उदाहरण किसी एक परिवार द्वारा लुट्टिमो में कही जाने निर्णय के बारे में लीजिए। नाम लीजिए कि परिवार का प्रत्येक सदस्य का जान की इच्छा करता है। परन्तु उन सभी के छुट्टी बिताने के बारे में विचार बिसमूम एक-जैसे नहीं है। उनमें से कोई नौका विहार चाहता है, कोई पहाड़ की चोटी चाहता है, कोई साइकिल की सवारी का आनन्द समा चाहता है, कोई विन बताना चाहता है और कोई ला-गीकर ध्यान-तृप्ति चाहता है। ऐसी स्थिति में वे कैसे निर्णय कर? स्पष्टतः कई संभावनाएँ हो सकती हैं। वे अपनी इच्छा द्वारा प्रत्येक पृथक् वा सकते हैं और प्रत्येक घबरा पृथक् निर्णय कर सकता है। यदि परिवार का मुखिया ही उसके स्वाम पर निर्णय करता है, तब दूसरों के विचारों का कुछ भूम्य नहीं रह जाता है। वह एक व्यक्ति की इच्छा होती। फिर व एक ऐसा निर्णय भी कर सकते हैं जो उन सभी इच्छा-पूर्ति के उपयुक्त है। वे सर्व-सम्मति से भी उस निर्णय पर पहुँच सकते हैं। यह सब सागों की समुक्त इच्छा का एक निगम होया। अलग-अलगों के विचारों के बहुमत वाले बना सकते हैं। वे किसी विषय पर बानबीन करते एक ऐसे घब मीने पर पहुँच सकते हैं जो बाड़ा या अधिक सभी को उत्तोय देने वाला हो। यह एक सहकारी या आपसी सहयोग की इच्छा होगी। घबरा उस सम्बन्ध में विचार करते हुए वे इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि एक सदस्य जो संभव बीमार है उसकी आवश्यकता अन्यो की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। तभी ही और उनके लिए दूसरे घबने अधिकारों का बलिदान करन के लिए वह मग हो सकता है। मैं साधता हूँ कि यह अन्तिम निर्णय एसा है जिसे हम आवश्यक में सामान्य इच्छा का सही रूप कह सकते हैं। यह केवल विभिन्न इच्छाओं में एक समझौता ही नहीं है परन्तु एक ऐसा निर्णय है जो लोगों की व्यक्तिगत बाग को छोड़कर एक निश्चय पर पहुँचता है जिसमें परिस्थितियों को एक इच्छा के रूप में देखा जाता है। यदि सामान्य इच्छा का वह एक सही विधानेपण है तो इसके साथ ही बागें संबन्ध विचार देती हैं—(१) कुछ बहुमत-रूप लोगों का एक निगम पर पहुँचता और (२) पूरे समूह को ध्यान में रख कर निर्णय लिया जाता। परन्तु यह कबन मोता की व्यक्तिगत इच्छा को



स्वाम में रखते हैं। उदाहरणस्वरूप एक राजनीतिज्ञ को कोई विशेष निर्लेख करना है। तभी रूप में उसे करने से पूर्व वह न केवल अपने साथियों और मित्रों से परामर्श ही लेता है परन्तु उसे समाचारपत्रों में भी प्रकाशित करवाता है और वह यह भी करता चाहता है कि सांघ का बहुमत उसके बारे में क्या सोचता है। कुछ लोग इस एक अभिमुखित का प्रयोग करते हैं। उनके दिमाग में निश्चय ही बड़ी नियंत्रण मत् और मनोमान धादि का अन्तर स्पष्ट नहीं होता। जिसके द्वारा उसका समर्पण होता है और इनके स्पष्ट ज्ञान के बिना यत्न धर्म भगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए अयो ने यह प्रस्तुत किया है कि ताबा रण इच्छा करनी यत्न नहीं होती। इसमें उस सामान्य बहावत का धारण किया है जिसके अनुसार 'जनता के मुँह से धमकान् बोलता है धर्म सिमा बाधा है। वास्तव में जनता कुछ धर्म तो वह हो सकता है कि बहुमत का निर्लेख यत्न भी हो सकता है और यह भी स्पष्ट है कि एक ऐसा निर्लेख जिसमें सभी लोगों की इच्छाओं को स्थान मिला है उसमें भी कुछ भूल हो। इसके लिए इतना ध्यान कहा जा सकता है कि इस प्रकार का निर्लेख सामान्य धर्म तटीकों से किये गए निर्णयों से सम्भवतः कम यत्न मिद्ध होमा। फिर कभी-कभी यह बात भी हो सकती है कि केवल एक बुद्धिमान् और बहुभूत व्यक्ति उदाहरण के लिए वेरीनमीय धरना केर द्वारा किया गया निर्लेख धनभिन्न लोगों के निर्लेख से उत्तम हो सकता है। हाँ बोलते यह दावा नहीं करते कि सामान्य इच्छा यत्न ही ही नहीं मरनी जेना कि उन्होंने इसके बारे में सोचा है। फिर यह धरणी मबार्थ इच्छा के रूप में धरने बर्तुन को यह मायता देने को संभार है कि उनके द्वारा संचालित इच्छा केवल सामान्य ही नहीं समुदाय के मबार्थ हित की धोर भी धरने करती है। जनकी इन बात की सत्यता में मुझे विश्वास के लिए कोई आधार नहीं मिल रहा। परन्तु यह हवाभा सामान्य हित की धरधारणा की धोर मरते कर रहा है और मैं सोचता हूँ कि इसे सामान्य इच्छा में धरन भी नहीं किया जा सकता। और मुझे यही धधिक मुरक्षित और धधिक लामघर धरधारणा प्रतीत होती है।

एक-दो पीढ़ियाँ पहले सभी जन-बाबों और धरत्वत रूप से व्यक्तिगत

७ सामान्य हित की धरधारणा

बाबों के धर्म के सम्बन्ध में एक मरिण उक्ति प्रसिद्ध थी कि के धधिक-ले-धधिक व्यक्तिमों के लिए धधिक ले-धधिक हित' के लिए हैं।

१. सामान्य इच्छा के धरध कर धधिक विस्लेख ८ धिध प्रो. वेकनरवा की पुनरुद्ध मरुनिरी धरिणियत न और प्रो. हादहाजन की पुनरुद्ध मोगत धोरधुधत धं धोनिधधन धरी, धधध ४ धेधध।

यह यह मान लिया गया है कि यह उचित कमी सामाजिक चिन्त रही होगी पर यह वैज्ञानिक रूप में व्यवहार्य और व्यावहारिक रूप में प्रामाणिक है। इसमें भी सक्षिप्त और मरम समिन्धकित सामान्य हित' इससे कम गत और कम उत्तमन में बासने वाली है यद्यपि यह भी पूरी तरह से सस्पण्टा के बोल से मुक्त नहीं है।^१ पिछले उदाहरणों में से परिवार के कर्म-सम्बन्धी उदाहरण से यह स्पष्ट है कि सामान्य हित की व्यवहारणा व्यावहारिक है। एक व्यवहार का दिन वाकित ही नहीं वाकनीय भी समझा जा सकता है। यह परिवार के सभी सदस्यों के लिए समवा एक के लिए, समवा उन अधिक लोगो के लिए सामाजिक हो सकता है जिन्हें इसकी विशेष रूप से इच्छा है। उससे भले ही पूर्व-विचारित नाम न हो पर कम-से कम हम यह मान सकते हैं कि उन विचार के प्रति ऐसा सोचा गया था। यहाँ तक कि किसी एक ने उसे अपने प्रत्यक्ष नाम के लिए भी चाहा तो भी वह एक सामान्य हित ही होगा क्योंकि वह एक ऐसी चीज है जिसे सभी चाहते हैं। कर्म-मुठों को उत्तेजित करने का नाम एक-जैसा रबैया कैंसे अपना सके, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। ऐतिहासिक उदाहरणों का उतने सरस रूप से विरसेपण नहीं किया जा सकता है जितना किमी विसेप मुद्दे को समझाने के लिए विसेप रूप से बड़े गए उदाहरणों का विस्लेषण किया जा सकता है। कर्म-मुठ-कताँ किसी को अनुवृहीत करने उत्साह विधाने समवा किमी पूर्व-संभावित भाव की अपेक्षा बुरा से प्ररित हुए हों समवा इड भावना को उत्साहित करने वाली शक्ति से प्ररित होकर गेमा किया गया हो सामाजिक यह स्पष्ट विचार्य देना है कि सम्य समाज के अधिकतर सामाजिक कार्य हित को ध्यान में रखकर किये जात हैं। परन्तु तब तक वह कार्य मुदिकम से ही म्यायबुक्त इतलाया जा सकता है जब तक हम यह पूरी तरह निष्कर्ष न निकालें कि उसके द्वारा प्राप्त हित कुछ धर्मों में और कुछ सीमा तक सामान्य हित था।

स्पष्टतः कुछ धर्मों की ओर एक सुन्दर धर्म में सामान्य क रूप में बाँटने की जा सकती है। मिस्रीका के अनुसार प्रत्यधिक हित उन लोगों के लिए सामान्य होता है और सभी लोग उसका उपयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए दूसरे लोगों की पराधीनता से मुक्त होगा सामान्यतः सभी लोग के लिए धर्म है। एक सुन्दर कविता एक तील-विन्न एक सुन्दर भाषण धुम होते हैं और सभी लोग उनही बार-बार प्रशंसा करने हैं। कुछ धर्म धर्मों की बरतुर्णों को प्रयोग से समाप्त

१. श्री टी. एच. धीन ने संभवतः सबसे अधिक इस सामान्य हित की व्यवहारणा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उनकी पुस्तक 'सुन्दर धर्म' में तथा दूसरी पुस्तक 'मिस्रीका के अर्थ-व्यवस्था के आर्थिक-व्यवस्था' में स्पष्ट-संख्या ११७-११९ देखिये।

हो जाती है जतना इस तरह से सामान्य उपयोग नहीं उठाया जा सकता है। फिर भी प्रचुर खाद्यान्न इकट्ठा करना पानी का सुन्दर समरग सामान्य हित की बात है मने ही जतना उपयोग पूषक भावों से हो रहा हो। यह प्रतीत होता है कि पूर्व-निर्गत सामान्य इच्छा इस प्रकार के हित के लिए सर्वोत्तम विचार है परन्तु हम मुठाने की घण्टट्टा के कारण यह उचित होया कि उसे छोड़ ही दिया जाए।

कुछ गसनपहमिया को रोकने के लिए यह ध्यान में रक्षना उचित होया कि सामान्य हित का साम्यवाद से कोई धारमन् सम्बन्ध नहीं है। सामान्य हित पर बल देना मानव जीवन की ब्यष्टिवादी धरधारणा के धरम ही निकड होया। परन्तु जब साम्यवाद समाजवाद धीर समष्टिवाद से ब्यष्टिवाद का धरम प्रदर्शित किया जाता है तो ये धरम साधारण सम्यति के धरम स्वामित्य तथा उद्योग के सामूहिक समाबोधन की धीर संकेत करते हैं। इसके धारे में हम धीयोगिक संस्थाधों के धरम ध्यान देने इसी धीध मन्धरधायवाद धरम साधारणत ब्यष्टिवाद क बिरोध में समन्ध लेना चाहिए। एक हित जो बास्तव में साधारण है पूषक-पूषक ब्यक्तियों द्वारा उभान किया जा सकता है धपमाया जा सकता है धीर निमित्त ब्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए समुधाय का स्वास्थ्य सामान्य हित की बात है किन् भी प्रदेऊ ब्यक्ति का धपना पूषक स्वास्थ्य है धीर यह उसकी पूषक रूप से रखा करता है। परन्तु इसके धारे में बाध में विचार करना धरिक्त उचित होया।

इस विचारों के धाधार पर हम स्पष्टत यह देन सफ्ट है कि मानव समाज क उचित सम्बन्ध को बतमान वाली एकटा का सामान्य स्वधाव क्या है। लमबत हम इसे धाध्यात्मिक एकटा क रूप में

c धाध्यात्मिक एकटा बहुत धरिणी तरह से रक्त सकते हैं। यह एक ऐन एकटा है जिसमें धाध्यात्मिक प्राणी व मनुज्य हैं। धने में प्राणी बोड़े-बहुत रूप से स्पष्टत मय लेने के योग्य होता है। धने में धपना रगने हग किमी हित का धनुधरण करत है धीर एक मनुज्य के रूप में धपना रगने हग किमी हित का धनुधरण करत है धीर के उन धरम सोधों के धारे में भी धान रगत है। जो उनी धरबधा उध-धीर ही हित का धनुधरण करते हैं। इस तरह व सब एक धनुधाय में बँध जावे हैं। जो बिलनधीस प्रसगी हैं व ही धपना तथा धुधरो का धाधर कर सधन है। मनुधरिणिया धरबधा उधबिलनाध धपनी मनुधरिणियों के कारण सामान्य हित की धार प्रगित होते हैं। परन्तु वे सोध-धमन्धर एकटा नहीं करत व केधम उनके प्रति उगका धान नहीं हला व उनम धरन नहीं कर सधन व केधम उनके प्रति धनुधरित होन के धीर कुछ नहीं कर सकते। कुछ धरों में कमी-कमी संमधत

बहुधा मनुष्यों के साथ भी ऐसा ही होता है परन्तु उनकी मनोवृत्तियाँ जन्मपूर्व की भाँति उसनी सरल और निरन्तर नहीं होती। उन सभी प्राणी मानवों को एक मनुष्य में एकता की भ्रमेदा एकता को समाप्त करने का ही कारण हो सकती हैं। कुछ भी हो उनमें मानव-जाति जैसी एकता उत्पन्न नहीं हो सकती जो मानव-जीवन के लिए अति लाभदायक और महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। सामान्यतः एक सुख्यवस्थित समाज उस ही कहा जा सकता है जिसमें अनुकरण के लिए जो जाने वाली बातों का स्पष्ट ज्ञान होता है। कुछ घंटों में सब लोगों के सामने के लिए यह भावना अतिनी अधिक विकसित होगी उतनी ही इकाई के रूप में एकता में बढ़ि जाती।

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की एकता ऐसी वस्तुओं की एकता है जो अनेक बाटों में विभिन्न होती है। इस एकता का निर्माण कुछ ऐसे लोग नहीं कर सकते जिनके हित और इत्तमे २ सामाजिक निम्नताएँ अधिक जिनकी यथार्थ हित के प्रति प्रवृत्तारणा विसङ्गत एक-जैसी नहीं होती। परन्तु उस एकता का निर्माण प्रायः कुछ निम्न-निम्न समूहों द्वारा होता है। उन समूहों में भी पृथक्-पृथक् निर्णय जिन जाते हैं और उन सबका पृथक्-पृथक् उद्देश्य होता है यद्यपि यह संभव हो सकता है कि ये सभी साथ एक महान् समन्वयात्मक उद्देश्य में सम्मिलित कर लिए गए हों। यदि ऐसा समाज एक संगीय कहलाता है तो यह स्मरण रखना चाहिए कि वह सभीयों का एक संगी है और उसमें भी प्रत्येक छोटे सभीयो में रहने वाला संगी भी अपने आपमें अनेक अन्य शरीरधारियों को रखता है। अतः संगीय एकता की साधारण विचारधारा का पूणतः वर्णन नहीं किया जा सकता। यह एक प्राथमिक पूर्णत्व है जिसमें उससे कम पूर्णत्व वाले होते हैं और उनमें भी कुछ प्राथमिक कहलाए जा सकते हैं और अन्य प्राथमिक रूप से तथा दूसरे प्रकार रूप से मानिक कहला सकते हैं परन्तु इस प्रकार के सभी एक सुख्यवस्थित समाज में सामान्य हित के लिए कुछ घंटों में परस्पर सहकार में समर्थ होते हैं।^१

अब हमें निश्चित रूप से यह बेकने का प्रयास करना चाहिए कि ऐसे कौन से सबसे अधिक संभवतः भाग होते हैं जिनमें यह समाज निम्न रूपों को कारण करता है और फिर उनके पृथक् पृथक् कार्य क्या हो सकते हैं।

१ सामाजिक रचना के दार्शनिक विस्तार पर कुछ रोचक बातों का मञ्जुगार्ड की पुस्तक 'एथोल इन होपेसिबल कार्मोलाबी' में ७ में प्राप्त की जा सकती है। मैकेन्नी गार्डन (इस पुस्तक के मूल रीखर) के विचारों को बननी एक अन्य पुस्तक 'एथिनेरस थॉक कन्स्ट्रिक्ट विखासपी कन्व १ प ७-११' में अधिक पूर्ण रूप प्राप्त किया जा सकता है।

व्यापक प्रथो में माया में उन सभी प्रकार की प्रणामियों का बहुरूप किया जा सकता है जिनके द्वारा एक या अधिक मनुष्य धर्म्य मोर्षों को प्रथमी निश्चिन वात पहुँचाते हैं। यहाँ हम उन अस्पष्ट भावा का नहीं समें को पशुओं घबवा निर्जीव वस्तुओं के साथ घबवा (जैसा कुछ भोग बिरबास करण है) प्रतात्माओं के साथ प्रभुवन किम जान हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल मानव-जीवन से ही है। धनना भाव जिन तरीकों से व्यवह किया जा सकता है उनमें हम धर्मि सम्बन्धनात्मक सबेनों विम्वयादिबोवको गणित-सम्बन्धी प्रतीको सवेत-स्वरा धीर उनके संयोगों बिना-गताकाओ समारोहा जुजुनों भटा धीर यहाँ तक कि कनी-कमी नान-पीते के डग भी से मकत हैं। अस्मिन् उदाहरण के रूप में धीर हनी तरह के अन्व उदाहरणों के लिए हम बिचार-सबहल-भाषनों की धीर मकेन करते हैं धीर उन पीतों की धीर नी जैसे 'मेघ पान कबल घपनी घाता से कीजिए घबवा अमर प्रीयाम की कविताओं की धीर भी हमारा मकेत जा सकता है।

अब यह स्पष्ट है कि व्यापक एक सीमित दोनों अर्थों में माया के बिना किसी भी तरह मानवीय साहचर्य की अस्पता नहीं की जा सकती। मानव जन्मा के विकास में माया ने जो हाथ बँटाया है, उसका मूर्त्साकन मनोबैज्ञानिवा पर आधारित है।^१ माया किम धर्म को लेकर चल रही है उसका धर्म निष्ठा सना अर्क-आस्त्रियों पर आधारित है।^२ यहाँ ध्याम देने की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सामान्यतः मानव जीवन पर माया का मुख्य प्रभाव कैसे पड़ता है धीर विधेय रूप में यह देखना है कि यह किम प्रकार से बिभावन तथा एकता के उपकरण के रूप में काम करती है। बाबेस की मीमार की कहानी बाद की बात का एक स्पष्ट उदाहरण है। वह स्वीकार किया जा सकता है कि मानव के नम की सू सेने के प्रथाम घबवा दूसरे अर्थों में धनमे सामाजिक धावधों की पामने के प्रथल धर्म्य कारणों की धनता भाषाओं की मिनता के कारण धमिक घबरत होते रहे हैं। उनमें केवल बिभिन्न राष्ट्रों के अर्थों के मध्य में उपस्थित बिभिन्नता ही नहीं बिपार्द बेनी बल्कि उनके बावधों की रचना उनकी धमिब्यक्ति धीर धमक प्रतीकरमक अर्थों के प्रयोग में भी धीर इसके माव ही राष्ट्र के अन्वर की बोधियों की छोटी-छोटी मिनता भी प्ररचित होती है। नममे ही धमिक साधारण मिनता उच्चारणों विधेय-मुहावरों, संकेतों धीर धमिब्यक्ति की धर्म्य प्रणामियों के प्रयोग में देखी जा सकती है। इनमे समुदाय के बिभिन्न वर्गों के पूवक रूप का हम पता लगा सकते हैं। अंततः म II (एक) अन्वरका प्रयोग एक स्पष्ट उदाहरण है। यहाँ हास्य धर्म्योक्तियों के

^१ ग्राउड की पुस्तक 'सैनुमम अंधे नारकोबोडी' संद ४ अ १ को देखिए।

^२ उन्त की पुस्तक 'सावित्र' पृष्ठ १५१-१५२।

साथ और सामाजिक महत्त्व पर अधिक बल देने वाले अन्य उदाहरण बर्किंग सा की रचना 'पिगमसियम' में देखे जा सकते हैं और निस्सन्देह पाठकों को ऐसे उदाहरण और भी बहुत मिल जाएंगे। सभी बोलियों में कुछ ऐसे अधि-सम्बन्धनात्मक शब्द और मुहावरे होते हैं जो उन्हें जानने वालों के लिए महत्त्वपूर्ण पद रखते हैं और इस प्रकार एक पृथक् बृत्त की रचना करते हैं। और यही बात बर्बाक भाषाओं पर भी लागू होता है। अधिकांश सामान्य पत्र में सामान्य भाषा के महत्त्व प्रतिपादन के रूप में हम कह सकते हैं कि यूरोप में भेटिन का जैसा प्रयोग होता रहा है और अब भी वह काम धंधी और कृषि भाषाओं द्वारा होता है तथा कि अन्तरराष्ट्रीय विचार-व्यवहार के लिए सामान्य साधन का रूप भी धारण कर चुकी है कि हमारी भाषी संकाओं का समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। जिस भाषों की भाषाविषयक प्रणालियाँ भिन्न जाती हैं प्रकृतियों की विषय अभिव्यक्ति में भाव भिन्न होते हैं, वे लोग अनिर्धार्य रूप से अपने विचारों और भावों की प्रणालियों में भी भिन्न होते हैं। उनके विचार एक-दूसरे नहीं होते और इस प्रकार के समुदाय के बिना सामिक-सामाजिक समागम और किसी प्रकार के सर्वहित की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हो सकती है।^१ इस तरह भाषा को विज्ञान रूप में देखने से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि भाषा सभी सामाजिक संस्थाओं की आधारभूमि है जहाँ तक कि वह अपने-आपको संस्था कहलाने का अधिकार रखती है।

यद्यपि ऐसी संस्थाओं की धोरण्यता होगी जिनका प्राथमिक उद्देश्य एकता के किसी विशेष प्रकार को स्थिर रखने की बजाय सामाजिक एकता का निर्माण करना है। उन्हें विस्तृत रूप में हम भिन्न-भिन्न ४ निर्वाहनात्मक संस्थाएँ समझ सकते हैं यद्यपि कुछ रूपों में कि ईश्वरिष्ठ संस्थाओं की पूर्ण निश्चित रूप से नहीं करती है। उदाहरणस्वरूप उदाहरण के अनुसार परिवार को हम प्रधानतः शिष्टाचारिक बहू संघन है यद्यपि परिवार अन्य संस्थाओं की पूर्ण भी करता है कि इन विशेषता के अन्तर्गत नहीं आते। निश्चय ही इसका अस्तित्व छोटे बच्चा के पालन पोषण के रूप में और विद्यालय सामुदायिक जीवन में प्रवेश की तैयारी के रूप में होता है। स्कूल और विभिन्न संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ण के लिए स्थापित किये जाते हैं और उन्हें ही स्पष्ट रूप में सभी संस्थाएँ कहना अधिक ठीक है। सभी बोलियों वाले जगह हम उनके महत्त्व का कुछ विस्तृत विवेचन करने पर उनके बारे में इसी समय कुछ बताना प्राथमिक नहीं।

१. यही बहुत-कुछ संतों में अन्तर्गत-श्रीव काकूत और नदिरा को प्रकृतियों को अभिन्न बनाने हुए हैं। भाषा के लोचन उदाहरण के प्रथम अन्वय को भी देखिए।

ये कुछ ऐसी संस्थाएँ होती हैं जो मानव जीवन का निर्माण तो नहीं करती हैं परन्तु उनके रखण म सहायक घटक होती हैं। ये प्राथमिक रूप से हमारी बर्षी घावस्यकताओं की पूर्ति करती हैं।

१. धार्मिक संस्थाएँ मनुष्य को स्पष्टतः भोजन पानी हवा रूप नीच व्यायाम करनी और विधाम की घावस्यकता होती हैं। लोगों की घावस्यकताएँ विभिन्न स्थान और परिस्थितियों के कारण पृथक् पृथक् होती हैं। जैसे ही वस्तुओं की घावस्यकताएँ कुछ वर्गों में शारीरिक-गठन और जीवन में घावों की विन्नता के कारण भी पृथक् पृथक् होती हैं। इन घावस्यकताओं की पूर्ति के साधन और सुविधाएँ उद्योग और वाणिज्य के विभिन्न रूपों में मिलती हैं। फिर उद्योग और वाणिज्य हमारी अन्य घावस्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं उदाहरण के लिए उन्हें हम पुस्तकों बिजों मूख-सामग्री, खेल का सामान या सा सुविधाएँ बाद्ययंत्रों धादि की पूर्ति के रूप में भी समक सकते हैं। इन पदार्थों की माँग और सञ्चरण की शर्तें अन्य पदार्थों से इतनी भिन्न होती हैं कि हम इन्हें धार्मिक पदार्थों के रूप में मानने को भी तैयार नहीं होते। जब हम इन धार्मिक संस्थाओं को प्राथमिक रूप से अपनी बर्षी घावस्यकताओं की पूर्ति करने वाली ही समझेंगे। उद्योग और वाणिज्य से सम्बन्धित धार्मिक संस्थाएँ मुख्यतः इन्हीं बातों से सम्बन्धित होती हैं। जैसे भूमि धार्मिकरण कारखानों बाजार सड़कादी-संस्थाएँ मजदूर-सब बन्वराहा, पोत निर्माण-स्वत धादि। बच्चपि कुछ समस्याएँ जो पूर्ण रूपसे धार्मिक नहीं होती ऐसी घस्थाओं के मूल कार्यों से समयम मिली-जुली होती हैं।

मैं यहाँ इस शब्द का प्रयोग इससे उपयुक्त शब्द के न मिलने के कारण ही कर रहा हूँ और इसलिए भी कर रहा हूँ कि यह शब्द उन संस्थाओं की विशेषता

२. बर्बर संस्थाएँ सम्बन्धित होती हैं। इसे घपमानसूचक धर्म में नहीं मिया जाना चाहिए, पर इसका प्रयोग से मुक्त से महोदय के एक संस्मरण की याद घाटी है। उन्होंने एटन फ्रांजे के एक भाषण में कहा था 'हमारे छोटे बर्बर (बच्चे) खेल में लगे हैं। मैंने घानसू न ही इस शब्द का प्रयोग किया है' कि ईंगलैण्ड का उच्चवर्ग बर्बर भोवों द्वारा निर्मित है। यहाँ बहुत-सी ऐसी संस्थाओं की घोर बर्बर करना बठिम है जो केवल हमारी पाषाणिक कृतियों की पूर्ति करती हैं। यदि हम गति का पक्ष-जीवन को

२. 'बन्वरा पत्रक घनाधी' III. यहाँ मुझे शब्दों का उल्लेख क्या है इसके लिए शब्द बदाहरण के रूप में बस लक्ष्यसूचक घान्योत्तम को प्रस्तुत किया जा सकता है जो विरासत रूप से बरत संस्था की विशेषता को निरूपित करता है। प्रो. ईंगलैण्ड की पुस्तक 'घोटी घाव वि लैज बन्वरा' में विशेषतः १ मं १०-२ को भी देखिए।

महत्त्वपूर्ण प्राथमिकताओं में से सेते हैं तथा प्रेम और संघर्ष को मूलवृत्तियों में, तब यह बेसमा कठिन नहीं रहेगा कि अनेक साहचर्य प्रणालियाँ प्राथमिक रूप से उन्हीं की पूर्ति के लिए बनी हैं। जब हम मनु बच्चों (बच्चों) को बेसत हुए देखते हैं तो उन्हें पशुओं के छोटे बच्चों की तरह ही व्यवहार करते हुए पाते हैं। इसके अतिरिक्त कमी-कमी के अपनी बीड़ाओं को नियमों और उपकरणों द्वारा संस्थाओं का रूप भी दे देते हैं। कमी-कमी के अन्तर्गत ही एक शैक्षणिक कार्य की पूर्ति करते हैं। परन्तु उनकी प्राथमिक आवश्यकता जिनकी अभिव्यक्ति उसमें मिलती है धिमा नहीं है और यदि शैक्षणिक कार्य को आनन्द कर उसमें आनन्द कर भी दिया जाता है तो उनका उत्साह और महत्त्व दोनों ही मारे जात हैं। उन्हें केवल व्यायाम की तरह ही नहीं माना जा सकता मने ही खेलों में यह ध्येय भी छिपा रहता है। ऐसा मामूम होता है कि बच्चों में प्रेम और संघर्ष के आन्विक आनन्द अधिक है। जब वे मोहनस्य प्रादि करते हैं तो वह आनन्द और भी स्पष्ट हो उठता है। प्रायः सभी खेलों में प्रतिस्पर्धा होती है। उनमें निम्नतापूर्ण सहयोग और प्रतिस्पर्धा दोनों ही बातें होती हैं। कसा कि प्रारम्भिक रूपों में प्रेम और संघर्ष की स्मृतियाँ छिपी रहती हैं और स्वाभाविक आनन्दों को प्रोत्साहन देती हैं। अधिकतर वे बहुत आनन्द स्वामी दिखाई देती हैं। अधिक विनतित कसाओं में तो यह आनन्द कुछ कसात्मक भाग की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।

प्रेम और संघर्ष के अन्य प्रकारों जिनमें साहचर्य प्रणालियों को प्रोत्साहन मिलता है सोचना मुश्किल नहीं। परिवार की अर्द्ध निदधम ही प्रेम में छिपी है। परिवार कुछ ऐसी संस्थाओं को भी जन्म देता है जो पारिवारिक जीवन के बिरुद्ध होती हैं। उसमें एक ऐसा प्रवृत्त समुदाय बनता है जिसका प्रचलन अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति और शैक्षिक अथवा कसात्मक सदस्यों को प्रोत्साहन देना नहीं है। फिर भी वे प्रायः मूल आनन्दों के साथ मिल जाते हैं और उनका अपने प्रिय-साथी की तरह उपभोग भी कर सकते हैं। इसके साथ उनमें संघर्ष का तत्व भी रहता है जैसे—अन्य और आनन्द के खेलों में सुरत प्रकाश का संघर्ष होता है। इसी प्रकार बुनरे प्रतियोगितात्मक खेलों में भी और कमी-कमी आनन्दित मुठ और महाद्वयों में भी प्रकाश होता है। पर प्रतियोगितात्मक बीड़ाओं में बुनरे का अन्तर्गत भाग होता है यह निराय करना कठिन है। बुनरेवादी प्रादि म तथा पारिवारिक व्यायाम की पूर्ति क साधनों को बुनरेता-पूर्वक समायोजित करने में भी यही संघर्ष दिखाई देता है। कमी-कमी अथ प्रकार की क्रियाओं का यह रूप शैक्षणिक भी होता है। परन्तु उसमें अदेह नहीं है कि बुनरेवादी अ हमें आनन्द भी प्राप्त होता है और यह आनन्द हमें प्रतिबो विनापूर्ण गना और यहाँ तक कि अपने जीने की बात करने समय भी प्राप्त

होता है जैसा कि ज्ञानसम महोदय कहते हैं। युगस्वाभाव अपने भुज के बाहर के महत्त्व के विरुद्ध अधिक तेजी धीरे मजबूती से प्रकट होता है। पुष्ट का आधार इसी से है फिर इन धारकदकताओं की सृष्टि के लिए प्रतियोगिता में प्रकटा मानवीय प्रकृति की कुछ उच्च धारकदकताओं की सृष्टि के लिए मनुष्य सुरक्षित अपने आपको विपुल बर्बर पुष्ट की सुधियों में सम्मिलित कर लेता है। पर धार की कुछ धारकत विवक्षित जातियों में भी स्पष्टतः यह भावना पूरी तरह से विलीन नहीं हुई है। उच्च शोच इस प्रकार सोचना पसन्द करते हैं कि वे अपने विकास सैनिक समस्त द्वारा स्वतन्त्रता संभूति धीरे बर्ष के लिए सचर्च कर रहे हैं प्रकटा हमरों की रखा करते हैं। परन्तु सभी जानों की नीरस क इस कथन से सहानुभूति है कि एक प्रकटा पुष्ट किमी भी ध्येय की कृपानी कर सकता है।

साहचर्य की जिन प्रणालियों का वर्णन किया जा चुका है यदि उन्हें कुछ धारों में नियमित और सुसंगठित न किया जाए तो वे स्पष्टतः समाज में ध्येय वसिष्ठ स्थिति की जनक होती हैं। मनुष्य एक विवेक

७ सरकार सम्बन्धी-
संस्थाएँ

शक्ति प्राप्ति होते हुए भी एक बर्षी धीरे जातिविक्रम धारणों के कारण स्वाभाविक रूप से समन्वय धीरे नियंत्रण की धीरे प्ररित होता है। अतः हम सभी

समुदायों में वहाँ तक कि भादिकासीन समुदायों में भी सरकार के किसी-न किसी रूप को पाते हैं—चाहे यह कबील न किसी को मुनिया मान लेने का रूप हो। मने ही उधमें चारों धीरे के लोगों के साथ संघर्ष प्रकटा धातुरिक अनुयासन की कठिनाइयाँ हों इससे एक विवक्षित व्यवस्था की स्थापना को जन्म मिला जिससे भादिकासीन पीठिरिवाक नियम के रूप में रहे गए धीरे इस तरह राज्य ने एक संस्था का रूप धारण किया धीरे ध्येय सभी संस्थाएँ राज्य की सहायक बनो। जमघ अधिकारों का निरूपण हुआ उनकी परिमाणाएँ ही जाने सभी धीरे ध्याक के सिद्धांत को महत्त्व मिला। इन प्रकार ध्येय ध्येय करने की प्रणालियों में बल प्रयोग भी निहित था धीरे इस प्रकार की व्यवस्था में स्वतन्त्र संस्था ने स्वान प्राप्त कर लिया। वास्तव में वहाँ हुआ जैसा जेटो न अनुभव किया जा कि सैनिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार का प्रकरण मजबूत बनायी है। इस धारे में अधिक विचार ध्येय के ध्येयों में करते।

जैसे-जैसे जीवन के मानवीय पहलू महत्त्व प्राप्त करते गए जैसे-जैसे बर्षी धीरे जातिविक्रम प्रकृति की लक्ष्य की ध्येयता साधन का रूप दिया जाने लगा धीरे मानव-जीवन का ध्येयतः सक्रम प्रकटा

८ सांस्कृतिक संस्थाएँ तक-भूति के विकास को समर्थ जान सहा। इस तरह

महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में से होते हैं तथा प्रेम और संघर्ष को मूलवृत्तियों में तब यह देखना कठिन नहीं रहेगा कि घनेक साहचर्य-प्रणालियाँ प्राथमिक रूप से उन्हीं की पूर्ति के लिए बनी हैं। जब हम लघु बच्चों (बच्चों) को सेसठ हुए देखते हैं तो उन्हें पशुओं के छोटे बच्चों की तरह ही व्यवहार करते हुए पाते हैं। इसके प्रतिरिक्त कमी-कमी के अपनी बीड़ाओं को निवर्णों और उपकरणों द्वारा संस्थाओं का रूप भी दे दित है। कमी-कमी के प्रबन्ध ही एक शैक्षणिक कार्य की पूर्ति करते हैं। परन्तु उनकी प्राथमिक आवश्यकता जिनकी अभिव्यक्ति उसमें मिलती है धिक्ता नहीं है और यदि शैक्षणिक कार्य को जानबूझ कर उसमें बाधा कर भी दिया जाता है तो उनका उत्साह और महत्त्व दोनों ही मारे जाते हैं। उन्हें केवल व्यायाम की तरह ही नहीं माना जा सकता बल्कि खेलों में यह ध्येय भी छिपा रहता है। ऐसा मान्य होता है कि बच्चों में प्रेम और संघर्ष के जालिक प्रायेण अधिक हैं। जब वे शोकपूर्ण भावि करते हैं तो यह भाव्य और भी स्पष्ट हो उठते हैं। प्रायः सभी खेलों में प्रतियोगिता होती है उनमें मिलतापुण्य सहयोग और प्रतिद्वन्द्विता दोनों ही बल्य होती हैं। कला के प्रारम्भिक रूपों में प्रेम और संघर्ष की स्मृतिवर्ण छिपी रहती है और स्वाभाविक प्राणियों को प्रोत्साहन देती हैं। अधिकतर वे बहुत ब्यादा स्थायी दिखाई देती हैं। अधिक विकसित समाजों में तो यह प्रायेण कुछ कमारमक नाम की धरेखा बहुत अधिक होता है।

प्रेम और संघर्ष के अन्य प्रकारों जिनमें साहचर्य प्रणालियों को प्रोत्साहन मिलता है खोजना मुश्किल नहीं। परिवार की बड़ों निश्चय ही प्रेम में छिपी हैं। परिवार कुछ ऐसी संस्थाओं को भी जन्म देता है जो पारिवारिक जीवन के विरुद्ध होती हैं। बसते एक ऐसा प्रबन्ध समुदाय बनता है जिसका प्रधान सर्वेस्य आवश्यकताओं की पूर्ति और शैक्षिक प्रबन्ध कमारमक सक्षय को प्रोत्साहन देना नहीं है फिर भी वे प्रायः मूल-प्रायेणों के साथ मिल जाते हैं और उनका अपने प्रिय-साथी की तरह उपभोग भी कर सकते हैं। इसके साथ उसमें संघर्ष का तत्व भी रहता है जैसे—सबसेर और जालुय के खेलों में शुरुत प्रजा का उपर्य होता है। इसी प्रकार दूसरे प्रतियोगितात्मक खेलों में भी और कमी-कमी वास्तविक युद्ध और सङ्घर्षों में भी प्रकट होता है। पर प्रतियोगितात्मक बीड़ाओं में युद्धात्मक का कितना भाग होता है यह निर्णय करना कठिन है। मुकैबाजी धारि में तथा शारीरिक व्यायाम की पूर्ति के साथियों को बुद्धिमत्ता पूर्वक समायोजित करने में भी यही संघर्ष दिखाई देता है। कमी-कमी इस प्रकार की क्रियाओं का सर्व रूप शैक्षणिक भी होता है। परन्तु इसमें संदिह नहीं है कि युद्धनाशकों से हमें धान्य भी प्राप्त होता है और यह धान्य हमें प्रतियोगितापुण्य नहीं और यहाँ तक कि अपने जीवन की बात करत समय भी प्राप्त

होता है जैसा कि जर्मन सहोदय करते हैं। सुदुरावेग करने भूषण के बाह्य क संवत्स के विरुद्ध अधिक तेजी और मजबूती से प्रयत्न होता है। युद्ध का प्रसार इसी में है फिर इन धारककताओं की कृति के लिए प्रतियोगिता में प्रपचा मानवीय प्रकृति की कुछ उच्च धारककताओं की कृति के लिए मनुष्य सुरत अपने पापको विधुत बर्बर बुद्ध की कृतिओं में अभिसिग कर सेता है। पर धाम की कुछ धारकक विरुद्धित जातियों में भी स्पष्टत यह भावना पूरी तरह से विनीत नहीं हुई है। सम्य लोग इस प्रकार सोचना पसन्द करते हैं कि वे अपने विद्यास सैनिक संयन्त्र हाथ स्वतन्त्रता मन्धृति और धर्म के लिए समर्प कर रहे हैं प्रबधा दूनरों की रक्षा करते हैं। परन्तु सभी लोगों को नीत्ये के इस कथन से सहानुभूति है कि एक अच्छा युद्ध किमी भी ध्येय की कृतिनी कर सकता है।

साहचर्य की त्रिन प्रणामियों का बर्णन किया जा चुका है बकि उन्हें कुछ प्रसों में निवन्धित और सुसंयत्त न किया जाए तो वे स्पष्टत सपाम में प्रप्य पस्थित स्थिति की बनक होती हैं। मनुष्य एक विवेक-

● सरकार सम्बन्धी- चीन प्राणी होते हुए भी एक बर्षी और जातिवक संस्थाएँ धारणों के कारण स्वाभाविक रूप से समन्वय और निर्मन्त्रण की ओर प्रेरित हुना है। अतः हम सभी

समुदायों में वही एक कि धारिकामीन समुदायो में भी सरकार के किसी-न किसी रूप को पाते हैं—चाहे यह कभीसे में किसी को मुखिया मान लेने के रूप हो। मने ही उसमें चारों ओर के लोगों के साथ समर्प प्रबधा धान्तरिक धनुगासन की कठिनाइयाँ हों इससे एक विरुद्धित ध्यवस्था की स्थापना को बन्म विना विरुद्ध धारिकामीन रौतिरिवाक नियम के रूप में रक गए और इस तरह राज्य में एक संस्था का रूप धारण किया और प्रप्य सभी संस्थाएँ राज्य की सहायक बनीं। बसध धारिकारों का निस्वय हुमा उनकी परिभाषाएँ ही जाने सगी और ग्याय के सिद्धान्त को महत्त्व मिला। इस प्रकार अपने प्रधीन करने की प्रणामियों में बस प्रयोग की मिश्रित या और इस प्रकार की व्यवस्था में स्वभावतः सेता में स्थान प्राप्त कर लिया। वास्तव में वही रूपा बना प्येटो न धनुभव किया का कि सैनिक धार्यवाही केन्द्रीय सरकार को प्रबधम मजबूत बनाती है। इन बारे में अधिक विचार धाये के प्रध्याओं में करें।

जम-नीये जीवन के मानवीय पहलु महत्त्व प्राप्त करने गए बीम-भेने बर्षी और जातिवक प्रकृति को लक्ष्य की धोखा साधन का रूप दिया जाने समा और मानव-जीवन का अभिमत लक्ष्य बसध-ध सारहस्तिक संस्थाएँ तर्क-मुक्ति के विनाम को समन्वय जान गया। इन तरह गब कुछ एक प्रकृति क ही प्रवर्णित माना जाने

सगा। इस मान्यता ने साहचर्य की नयी प्रणामियों को जन्म दिया। संस्थाएँ बच्चों को केवल मान धीरे धिदरु देने के लिए ही नहीं बनायी गई, परन्तु ज्ञान की संवृद्धि बुद्धि तथा चरित्र के विकास के लिए भी बनायी गई हैं। वेस के सरस आशेष को कसा के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति म बदल दिया जाता है, वे केवल पाठ्यक इच्छाओं में ही नहीं, बरन सुदम और अधिक विम्वतपीन सवेगों और मनोमाबा की अभिव्यक्ति में सुन्दर रूप बारस कर लेती हैं। इतना ही नहीं घन्त म वे जीवन क विचारशील दृष्टिकोण और फिर उठके विस्लेषण के प्रयास तक पहुँच जाती हैं। विचार-तत्त्व नियम का आधार है। नियम की बाह्य-रबाब की शक्ति बसघ नैतिकता क बाधितो को मान्यता देती है। जीवन का एक पूर्णत्व के रूप में दृष्टिकोण बामिष मठ को मान्यता देता है। जिनमें व्यक्तियत और सामाजिक जीवन की पूणता अधिकारिक बसवती मनो वृत्ति का रूप बारण करती जाती है। जीवन के विकासमान पहलु सामाजिक जीवन की संस्थाओं में एक परिवर्तन साते हैं और उच्चतर सक्क को प्राप्त करने वाली नवीन संस्थाओं को जन्म देते हैं। वैज्ञानिक संस्थाएँ बनती हैं कसात्मक समूहों का निर्माण क्रिया जाता है, नैतिकता की वृद्धि और बर्म की स्थापना के लिए बेबालियों की उत्पत्ति होती है। मानव-जीवन को सुत एकटा का गहरा माध और सक्कों के मूल्यांकन को उचमें निहित है। वे विभिन्न समारों के विरोध को समाप्त कर देते हैं। फिर कुछ ऐसी संस्थाओं को स्थापित करते हैं जो धापसी समागम में वृद्धि करती हैं।

संस्थाओं की इन जलिल पठतियों में कुछ घसों में संबर्ध भी उत्पन्न हो जाता है और फिर उसे दूर करना सरस काम नहीं होता। मनुष्य पैसा हमने प्रस्तुत किया है मुस्किन से ही एक ठर्कनापरक प्राणी है संस्थाओं की है परन्तु वह एक ऐसा प्राणी है जो ठर्कनापरक बन चम्बोम्य किया रखा है। मनुष्य की प्रकृति की उच्च सभितर्ता उसके निम्न रूप को सरसता से बस में करने में सफल नहीं हो पाती। कभी-कभी उसके इस उच्चतर और निम्नतर रूप के बीच उत्पन्न संबर्ध उसे ऐसे प्रयासों की धोर ले जाते हैं जो निम्नतर को एकबम से कुचल बालते हैं। कई समारों में यति लोग इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त कर लन हैं। दुदरे मामलों में जीवन के अधिक निरपेक्ष और अधिक बामिक पहलुओं में भर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इस तरह एक ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए जिसम तीव्र की बस्तुएँ उस धोर बेवताओं की बस्तुएँ उई ही प्राप्त हो जाएँ। इसे कुछ सारां म धपरिप्लुत रूप से किया जाना चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि ब्यापार ब्यापार ही है और यह नैतिकता से पूरी तरह पृथक है सक्का इती तरह सगस्यीय सम्बन्धों म भी यही कहा जाता कि जिस

की जाती उसकी येम पर्याप्त चकितवासी ही मन्था है। परन्तु इस तरह के प्रयास जो जीवन को उसके मुख्य हित से पुनः करत है चीन ही पुच्छत पसन्तोप जनक सिद्ध होते हैं। जीवन का एकता स्वयं हमनी निश्रता का विरोध करती थीर हमारी प्रकृति के पहचुधा को उनके धारारभूत हितों व प्रति समायोभित करती है। परन्तु इस में समय लगता है और मपर्यं थीर मध्यमत्वा व विचारणीय तत्त्व लगभग हमसा ही समायोभन की प्रक्रिया स धमिन् (मिन्नकर) रहा करते हैं। परत मानव-जीवन की समस्या व किसी मरम समाधान की हमें धारा नहीं करनी चाहिए।

विम प्रक्रिया से मानव प्रकृति के विविध तत्त्वों का समायाजन होता है और ममन वह जिस परिणाम की ओर न जाता है उसे सामान्यतः सम्यता की परिमापा के रूप म व्यक्त किया जाता है। ममन १ सम्यता का धर्म मोग कस्टर (Kultur) शब्द का प्रयोग विशेष म्यान थीर बाल की सम्यता के विधय रूप में किया करत है। 'सम्यता' शब्द 'नागरिक' शब्द की तरह यह सकेत करता है कि यह प्रथा मता मपरों से सम्बन्धित है और वहीं उसकी प्रथिया एक तीव्र रूप म हुई है। प्रायः नगरों में मानव जीवन के विविध पहचुधों को एक-दूसरे से मनिच्छता व बन्धनों में बांधा गया है। वहाँ उनके समायोभन की धारस्मकता का अनुभव किया गया। यह बाल स्वयं मूतानी मगर राज्य धपने धेच्छतम रूप में प्रकट करते हैं। परन्तु इससे निम्नपरा की रूप में यह (मगटन) धाचुतिक नगरों में भी स्पष्ट दिखाई देता है। हम प्रक्रिया में कुछ ऐसी कटित कठिनाइयाँ मिसी हुई हैं कि वे धनेकों धाचुतिक धपुधों को मरम देती हैं। नगर का जीवन धस्वास्मयवृक्ष तथा धाम्य जीवन से कम मंतलिन होता है। यहाँ कभी तथा पावकिक पधों की हानि पहुँचनी है और इनम मतिक थीर धामिक जीवन थीर कमी-कमी कलात्मक थीर बौद्धिक जीवन भी ममाबित होते हैं। परत कमी कमी उनके विरोध में हड़ प्रतिधिया होती है और धिन जीवन की सरल थीर स्वतन्त्र प्रणाली की ओर धौट धाम के प्रयास किए जात हैं। तुलनात्मक रूप में एक गँवार धारमी के जीवन को भी कमी-कमी बहुत धम्य लोगों के लिए एक धारध के रूप में मस्तुत किया जाता है। उदाहरण के रूप में यह प्रकृति पूरा रूप से कसो की धारमिक रचनाधों का प्रतिनिधित्व करती है। वर्तमान समय में एडवर्ड कार्पेन्टर ने मम्यता पर एक रोचक पुस्तक लिबिबिजेसन इन्स

१. हम शब्द के प्रयोग के महत्त्व पर भी वने ने अपनी पुस्तक इन्स परकैमान एवध दि बर म २ में कमी की तरह से प्रकट धाना है। सर धाम्य धारधकीय की इन्स धिधुधिमः वेरामक दंड इन्सैरानक २ व २२-३ भी देखिए।

काज एण्ड क्वोर सिद्धी है। परन्तु हमों और एडवर्ड कार्पेन्टर दोनों इन निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सम्पत्ता की बुराइयों का उपचार अधिक सम्भव बनता ही है। जैसे-जैसे हम धाने बढ़ते वैसे ही इन लोगों को बिन कठिनाइयों और प्रणालियों का सामना करना पड़ा उन्हें स्पष्टतः जान सकेंगे।

बहु स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में बिलका विचारण हम पहले प्रस्तुत कर चुके हैं। पूर्ण रूप से बर्णन करने का प्रयास

कर तो हम एक व्यापक अध्ययन करना पड़ता। इस

धाम के अध्ययनों की प्रकार की स्परेता में तो सबसे अधिक महत्वपूर्ण

स्परेता तन्त्रों को ही स्पर्श किया जाता। जब धाने होते समझन की उच्च प्रणाली से प्रारम्भ करना अच्छा

रहता जो सरलतम एवं प्राकृतिक है—जैसे परिवार। परिवार हमारी मूल प्रवृत्तियों की आवश्यकताओं से उत्पन्न होता है। फिर भी कई तरीकों से बहु समय सही तरह की अच्छी व्यवस्था करता है और उच्चतम मान्य की प्राप्ति करने में पूरी तरह से समर्थ होता है। फिर परिवार से मिच्छा-संस्था पर सरलता से पहुँचा जा सकता है। उससे फिर जीवन के प्रौद्योगिक रूपों पर भी जा सकते हैं। इसके उपरान्त राज्य के विषय में सावधानी से विचार किया जा सकता है। इसमें व्यापक व्यवहारणा की ओर बढ़ा जा सकता है। फिर हम सामाजिक जीवन के विभिन्न मादलों तक पहुँच सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में जानकारी धन और संरक्षित क स्थान को इतक तीसरे माप के लिए जोड़ सकते हैं। जगमें निहित एकता की प्रणालियों को मूलतः पुरुष के रूप में मानवता के संगठन से सम्बन्धित माना जाना चाहिए। साहचर्य-प्रणाली के संकुचित-संगठन से सम्बन्धित नहीं।

द्वितीय खण्ड

राष्ट्रीय-अवस्था

प्रथम अध्याय परिवार

मनुष्य के लिए परिवार प्राकृतिक है^१। यह इस बात में पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है कि परिवार अधिकतर विभिन्न मनुष्यों के लिए भी प्राकृतिक होता है। यह स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन की उत्कृष्टतर शक्तियों में मिश्र-भावन का महत्व बढ़ता जाता है क्योंकि जन्म के समय के अधिक-से-अधिक समूहों में होने हैं और उनके उत्कृष्ट विकास के लिए अधिक-से-अधिक देन मान की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु यहाँ पर यह बताना हमारे ध्यान के बाहर की बात है कि किस प्रथिया से—साथ ही प्राकृतिक या अन्य तरीकों से—माता-पिता की समाकृतिमयी इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अपने आपको समाकृतिमयी बनानी पड़ती है। पर यह समझ लेना हमारे लिए यहाँ काफी होता कि सामान्यतः व पारिवारिक एकता के किसी रूप के द्वारा ही पूरी की जाती हैं। मातृ-पितृ के लिए आवश्यक प्राथमिक चार कोषों द्वारा बच्चों के पालन के समाधारण व्यवहार को छोड़कर सामान्यतः माता-पिता पर ही रहते हैं। कभी-कभी तो पालन का भार केवल माता पर ही रहता है और बहुत बार उसे धकेले ही सब कुछ करना पड़ता है। परन्तु सामान्यतः कुछ घरों में पिता पर भी यह भार रहता है। इस बात को हम परिवार का प्राकृतिक आधार कह सकते हैं। अब इसमें सम्मिश्रित यह प्रश्न उठता है कि इस प्राथमिक चरम की पूर्ति किस सर्वोत्तम तरीकों से हो। इस उद्देश्य के लिए एक पत्नी वाले परिवार सर्वोत्तम निश्चय होता है। परिवार में एक धकेले होना के कारण माता-पिता सामान्यतः आवश्यक कार्य में पूरे दिवस में लग जाते हैं और पूरा सहयोग करते हैं। यह स्वीकार करना पड़ता है कि यदि निम्नवर्ग में परिवार के प्राकृतिक आधार को हम देखें तो कुछ विधियों की शक्तियों में प्रधानतः यह दिखाई देगा कि पारिवारिक जीवन का यह रूप अपने

^१ पारिवारिक-व्यवस्था पर शीघ्रता से करने की पूर्णतः 'समूह' में बहुत विस्तृत बातें से प्रकाश किया है।

आपने काफ़ी पूर्ण है परन्तु धन्य दृष्टिकोण से यह मानव-जीवन के अधिक निकट नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है जैसा हम पहले भी कह चुके हैं ऐसा सोचने के लिए कोई भी स्पष्ट कारण नहीं है कि परिवार हमारे लिए सबसे अधिक प्राकृतिक ढंग है। परन्तु वास्तव में कुछ विविध मनुष्य-जाति के बहुत करीब होती हैं—विधवाओं से बच्चों की देखभाल और उनके जीवन की तयारी की आवश्यकता के रूप में समझा जा सकता है।^१ उदका अधिकतर विविधों की प्राकृतिक उपलब्धि है जैसे मनुष्यों में चिन्तन करना। सामान्यतः छोटे बच्चे इन दोनों बातों के लिए निराला असमर्थ होते हैं अतः माता को लम्बे समय तक छोटे बच्चों पर ध्यान देना पड़ता है तथा पिता की सहायता की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः मनुष्य-जीवन की विधवाओं के बारे में अधिक विचार न करते हुए हम दृढ़ता के साथ यह कह सकते हैं कि एक विवाह अथवा पत्नी वाला परिवार साहचर्य का प्राकृतिक रूप है।

यह बात है कि परिवार का एक प्राकृतिक आधार है पर प्रश्न विवाह जा सकता है कि क्या हमका कोई परम्परागत आधार भी माना जा सकता है ?

इसके कई उत्तर दिए जा सकते हैं परन्तु ज्यों-ज्यों २ परिवार का परम्परा हम आगे बढ़ेंगे कुछ प्रश्न स्वतः स्पष्ट होते जायेंगे।

अतः बहुत ज़रूरत है कि हमें एक को अभी प्रस्तुत किया जा सकता है कि जो बात चिन्तन से स्पष्ट होती है वह चिन्तन न

करने वाला के लिए स्पष्ट नहीं होती। वास्तविक दृष्टि न रखने वाले लोगों के लिए बच्चा परिवार का किसी तरह से महत्वपूर्ण सबस्य नहीं है। हो सकता है उन परिवारों में बच्चा हा ही नहीं। अंगरेजी 'फेमिली' शब्द जिसका अर्थ परिवार करते हैं स्वयं अपने जिस स्वरूप पर प्रकाश डालता है अपने विचार में हम उसे अवास्तविक कह सकते हैं। रोम में फूलस नाम का एक व्यक्ति पारिवारिक गुनाह का (अंगरेजी का स्वामी शब्द उही शक्ति का स्मरण कराता है) और 'फेमिलिया' का अर्थ मूलतः एक बृहत्तर न सम्बन्धित गुनाहों के एक समूह से लिया जाता था। तत्पश्चात् फेमिली (परिवार) का अर्थ अल्प गुनाह ही नहीं रहा परन्तु उस बृहत्तर में रहने वाले सभी निम्नलिखित सदस्यों के अर्थ में लिया जान लगा। इसके बाद सभी लोग कम या अधिक

१ यह संभव है कि विश्व भर के जन्म भी अपनी आनुवंशिक यत्नशक्तियों के द्वारा कुछ अंतर से अपना जीवन-संवादन करने के लिए-संस्कार के दिना भी करते हैं परन्तु इन शक्ति का प्रयुक्त रूप से अतिरिक्त किया गया है। इस शक्ति का कुछ रोचक मामली वैज्ञानिक विद्वानों की धृष्टि के उदाहरण बनें प्रकटित कर्तुं आरम्भ बॉर्ड शारर १ १७१-२ ६ ईमें और लाइड आरगल की ईरिड शरर ईरिडिया १ १ २२ ईसे।

मात्रा में उस परिवार के मुखिया की सम्पत्ति समझे जाने लगे और जो मुखिया होता था वह बच्चा न होकर पिता होता था। परिवार का यही रूप हम कुछ घंटों में बाइबिल के दस भादों में भी देखते हैं— तुम अपने पड़ोसी के घर की घोर मासज-मरी दृष्टि से न देखो। तुम अपने पड़ोसी की स्त्री अपने पड़ोसी के सेवक-सबिक्तियों बस यथे और धर्म्य वस्तुएँ, जो उसकी हैं, उनकी घोर भी मासज मरी दृष्टि से नहीं देखोगे। यह महत्त्व की बात है कि यहाँ बच्चों का कुछ भी संकेत नहीं किया गया। क्या इस घादस का रचबिठा बच्चों को अपने पड़ोसी की वस्तुओं में स्थान देते हुए लज्जा का अनुभव करता था? धपना क्या उसन यह मान लिया था कि बच्चे ऐसी वस्तुएँ ही नहीं हैं जिनकी घोर कोई मासज-मरी दृष्टि से देखने की जेप्टा कर सकता है? यह भी ध्यान देने की बात है कि माता-पिता को सम्मान देने वाले घादस की रचना की गई, परन्तु बच्चों की घोर ध्यान देने वाले किसी एक भी घादस की रचना नहीं की गई। सम्भवत यह सोच लिया गया बीसता है कि प्रकृति स्वयं इस बारे में धिखा बेकी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब हम एक मनुष्य के परिवार को उसके मुतामों के रूप में नहीं देखते और कुछ घस में हमने उसे उसकी सम्पत्ति के रूप में भी सोचना छोड़ दिया है। परन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसके बारे में सोचन का आ सामान्य रूप है वह धब भी बहुत कुछ सोचन के पुरातन रूप से प्रभावित है। यदि परिवार पिता की सम्पत्ति है तो वह धर्म्य सम्पत्तियों से धलम क्यों समझ पाठा है? यदि पिता धनेक बीस और बच्चे रखने का धधिकारी है तो वह धनेकों पत्नियों को रखने का धधिकारी क्यों नहीं? यदि वह धपने एक बीस को धेच सकता है और दूसरे को करीर सकता है तो वह धपनी स्त्री का भी विनिमय क्यों नहीं कर सकता? और यदि हम धिष्यों को समानता का मानते हैं तो फिर हम पूछ सकते हैं कि वे लोगों इस सम्बन्ध का एक के धबवा बीनों के सहमत होने पर समाप्त क्यों नहीं कर सकते? इस दृष्टिकोण से देखने पर हम साहचर्य-प्रणाली में कोई भी प्राकृतिक रूपावट नहीं पाते। बिबाह केवल एक कृत्रिम संविधा बिघाई देता है वह किसी भी धर्म में एक धार्मिक बन्धन नहीं है। प्रभावत इसी रूप में परिवार का परम्परागत समझ जा सकता है और उसका इह धाधार प्राकृतिक नहीं माना जा सकता। उत्कर्ष के पश्चात् हम उसका पठन भी देख सकते हैं।

इस धाधार पर परिवार का बिस्सपरण कर देने पर भी हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि उसका कुछ प्राकृतिक धाधार भी है। इसका बर्तान हम बाब में करण। इससे पहले हम उसे कुछ दूसरे ढंग से प्रस्तुत

करे जो उसके आधारभूत रूप की ओर अधिक दृढ़ता से ध्यान प्राकृतिक करने।

बच्चे को परिवार के प्राकृतिक आधार के रूप में रखकर जीवन के लिए उसे तैयार करने को इस साहचर्य-प्रणाली का प्राथमिक कार्य समझ सकते हैं। यदि परिवार को हम एक छोटा-सा राज्य बनें तो बच्चा उसका रक्षक प्रभु है। परन्तु वह अपने मन्त्रियों द्वारा पालन करता है। उसकी इच्छाओं की पूर्ति अनिवार्य नहीं होती विशेषतया जब परिवार में बहुत से बच्चे होते हैं। परन्तु ऐसे समता है कि परिवार का सामान्य कार्य सुगम बच्चे के पोषण के लिए संबंधित व्यवस्था का प्राप्य है इसमें में संभव—उत्तम बस्तुएँ प्राप्त करना है। यह सब कुछ बच्चे को विद्यालय समुदाय का एक नागरिक बनाने की नींवों के दृष्टिकोण से किया जाता है। परिवार के जीवन में निहित दूसरे कार्य स्वभावतः इस आधारभूत व्यवस्था के अन्तर्गत ही समझे जाने चाहिए। यह निश्चय करना सरल नहीं है कि किस तरह और किस धर्मों में वे प्राकृतिक रूप से उसके व्यक्तित्व पाते हैं। वे विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न-विभिन्न भी हो सकते हैं फिर भी यहाँ हमारे में कुछ सामान्य संकेत देना सामर्थ्यक होता।

हम इस विचार का दृढ़ता से मान्यता कर सकते हैं कि बच्चों का पालन करना परिवार का प्राकृतिक व्यवस्था तर्क-सिद्ध आधार है। फिर भी हमें बहु-समय रखना चाहिए कि विश्व तर्क द्वारा प्रथम स्थान मिलता है उसे समय की गति सुनिश्चित सही प्रथम स्थान देती है, और महत्व के दृष्टिकोण से भी वह प्रथम नहीं रह सकता। परिवार का आधार दो विरोधी भिन्न वाले व्यक्तियों के विवाह के बंधन से स्थापित होता है। इस प्रकार के किसी साहचर्य का परिणाम बच्चे होना आवश्यक नहीं और यदि ऐसा हो भी जाता है तो सम्पत्ति को बच्चों के पालन-पोषण के लिए आपसी सहयोग की आवश्यकता रहती है। परंतु बच्चों के पालन-पोषण की दृष्टि से दो उभय विरोधी व्यक्तियों के प्रेम को ही परिवार का मौलिक आधार मान लिया जाए तो यह अप्राकृतिक नहीं होगा। वास्तव में यह एक प्राकृतिक आधार है। हम यही जन्म-जीवन में भी देखते हैं तथा मनुष्य के जीवन में भी ऐसा पाते हैं। परन्तु परावर्तन के बाद ऐसा लगता है कि यह सामान्यतः दूसरे आधारों का संश्लेषण है। एक ही दिन के दो व्यक्तियों में घनिष्ठ प्रेम हो सकता है यदि या

१. इनका धार करने प्रतिनिधियों द्वारा पालन करने वाले संयुक्त सम्पन्न बनना है अर्थ में विवाह नामा चाहिए, न कि अलग-अलग हैं।

बहनों में भी पैसा हो सकता है। वह एक सुखद और महत्वपूर्ण साहचर्य का रूप भी धारण कर सकता है। परन्तु उसे परिवार नहीं कहा जा सकता। बच्चों के पालन-पोषण की सहायता ही विवाह को मध्य साहचर्य से पुनर्कृत करती है। वह उम्मेद उन साहचर्यों से पुनर्कृत करती है जो व्यक्तिगत आकर्षण पर आधारित होते हैं और यह स्पष्ट है कि विवाह का आधार भी सदा नहीं रहता। अतः यद्यपि बच्चों के पालन-पोषण पर आधारित सहयोग की प्रकृति को प्रौढ़ों के मध्य प्रमत्त-कमी-कमी एक सुखद और महत्वपूर्ण मूल को जन्म दे सकता है फिर भी वह तत्पश्चात् एक परिवार का आधार नहीं कहना सकता।

फिर यह भी ध्यान देने की बात है कि बच्चों की वृद्धि का एक सम्पन्न समय माता पर धारो बोझ होता है। विशेषतः यह तब और भी बढ़ जाता है जब परिवार बड़ा होता है और उसके साधन सीमित। यह स्वाभाविक है कि इस कार्य की पूर्ति में पिता का सहयोग भी होना चाहिए। हम बन्धु-बन्धु के व्यवहार में से अनेकों उदाहरण ले सकते हैं। यह सहयोग कुछ अंशों में बच्चों के पालन-पोषण के सम्यक् अर्थों से भी अधिक अर्थों तक बहुत महत्वपूर्ण होता है। बन्धुओं में ऐसा बहुत कम मिलेगा कि जब बच्चे बड़े हो जाते हो तो वे अपने पालन-पोषण का कोई बरतना चुकाते हों। परन्तु मानव-जीवन में यह स्वाभाविक है। कभी कभी सायब विशेषतः आदान (बच्चों के स्वर्ग के रूप में बलिष्ठ वेस) में बच्चों के पालन-पोषण की प्रेरणा परिवार के इस पहलू पर बहुत अधिक बल दिया गया है (जो कुछ अर्थों में निस्सम्बन्ध प्राकृतिक है)। बन्धुओं में भी अपने हित के प्रति कृतज्ञता का भाव देखा जाता है। कम-से-कम यह मित्रता का प्राकृतिक आधार बनता है। बच्चों को सहायता की विशेष आवश्यकता होती है। अतः यह उचित ही है कि वे उन लोगों से सहायता प्राप्त करें जिनका उन्होंने पालन-पोषण किया है। परन्तु यह आवश्यक भी नहीं कि ऐसी सहायता अवश्य ही सी जाए। संभवतः उन्होंने अपनी कृतावस्था के लिए काफी कुछ बचाकर रखा हो अथवा जिस समाज में उन्होंने सेवा-कार्य किया है कुछ उससे भी सहायता प्राप्त कर सकते हैं। कुछ भी हो इस विवेचन से हम इस तथ्य का महत्व कम नहीं होने देंगे कि बच्चों का पालन-पोषण परिवार का मूल आधार है।

इस विवेचण से यह अनुमान कभी नहीं सपा लेना चाहिए कि बच्चों के अभाव में विवाह निरर्थक होता है। इस विषय पर हम फिर सीधे ही विचार करेंगे।

परिवार के प्राकृतिक आधार पर बात करते समय बच्चों के सही रूप से

उत्पन्न होने के महत्त्व को समझना पड़ती है। इन वर्षों में इस विषय पर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है।^१ जेटो ने इस पर बहुत बल दिया है। बस्तु-प्रतिकृति का धीरे-धीरे संभवतः कठोर रूप में। निश्चय ही

४ सौजन्यिकी बच्चा प्राकृतिक रूप से बाधसाह यदि संभव हो सके तो प्रत्येक बस में एक बाधसाह होना चाहिए। निम्न

वर्ष के मनुष्यों में जीवन की परिस्थितियों का सामना करने में असमर्थ बच्चे पिता द्वारा ध्यान देने पर भी धीमे ही मर जाते हैं। इसके विपरीत बुद्धिमत्तापूर्वक धीमे-धीमे का प्रयोग धीरे-धीरे पाठन-गोपण से मानव बच्चों की जीवन रक्षा होती है अथवा उनकी बुद्धि असंभव हो जाए। कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि इस तरह के संरक्षण से मानव-जाति का ह्रास होता जाएगा और ऐसा मतलब है कि कुछ बच्चों में इसी कारण से बच्चों के विगोपन की प्राचीन पद्धति का प्रयोग हुआ था। परन्तु यह निश्चय करना सरल नहीं है कि जो बच्चे निम्न वर्ग के मनुष्यों के लिए सही हैं वे कहीं तक मनुष्य जाति के उपयुक्त हैं। कुछ मनुष्य जिनके प्रति मानव-जाति बहुत अधिक लक्षणी है सम्मथन विगोपन बिना से बचपन में ही मृत्यु के घाम बत जान। कुछ ऐसे बच्चे भी होते हैं जिनका परिवार नहीं होता परन्तु उनके संरक्षण में मानव जाति को कुछ भी नष्ट नहीं उठाना पड़ता। प्राथमिक सौजन्यिकी का अध्ययन करने वालों का कहना है कि अनुचित विवाहों को रोकने के लिए कुछ कार्रवाही करनी चाहिए। यह एक ऐसी बात है कि स्पष्टतया कुछ रोगी लोगों को छोड़ कर मरतता से कुछ भी निरुत्तर नहीं दिया जा सकता परन्तु ऐसे विवाहों के लिए विधाय प्रोत्साहन दिया जा सकता है जिनसे अच्छे परिणामों की प्राप्ति हो। यह सन्देहहर्तक है कि सौजन्यिकी इतना विवक्षित हो गया है कि इस विषय में यह उसा माग प्रदर्शन कर सके परन्तु भविष्य में यह ऐसा करने में समर्थ हो सकता कि प्राकृतिक ज्ञान के आधार पर वाञ्छित प्रोत्साहन दे सके। परन्तु इस विषय में अधिक विचारना हमारे विषय में बाहर की बात है।^१

विवाह के सामान्य विषय को लेकर यहाँ कुछ धीरे-धीरे बृष्टिबोध रमैंगे।

१. इस विषय को महत्त्व देने वालों में वास्तव महोदय प्रथम से परन्तु अब तो यह विषय बहुत सामान्य बन से अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुका है।
२. प्रा. वि. की देवदत्त की पुस्तक 'दारुनिधाय एवम ऐम प्राप्य शावर प्रोत्साहन कर्तव्य है।' हरमन की पुस्तक 'प्राकृतिक ज्ञान एक दृष्टिकोण की दृष्टिकोण भी करने वाली है।'

परिवार के मूल-आधार की महत्ता के कारण विवाह को एक विशेष पवित्रता और स्वायत्त प्राप्त होता है। स्वयं प्रकृति द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ इसे अपूर्व बन देती हैं। यदि जन्तु-जगत में मानव-विवाह

५ विवाह

जैसी कोई बात हो तो उस भी सरसता से हटाया

नहीं जा सकता। सिंगी वास्तव में एक-दूसरे के पूरक होते हैं और उनके मध्य प्राकृतिक आकर्षण उनके स्वाभाविक साहचर्य को कमजोर करने की क्षमता उसे दृढ़ बनाता है। रोमांटिक सेवकों ने इत प्रकृति के प्रति कुछ घटियापेक्ति से काम लिया है और उसकी प्रतिभिया में कुछ धन्य सेवकों ने संभवतः अनुचित रूप से इसकी शक्ति का कम किया है। इस में सन्देह नहीं कि मानव प्रकृति परिष्कार बन्तुओं की प्रकृति की अपेक्षा अधिक है। स्त्री और पुरुष दोनों के स्वभाव में तथा उनके चिन्तन और अनुभूति के ढंग में परिवर्तन आना समझ है। और ऐसा परिवर्तन भी ही उनके विवाह-बन्धन को समाप्त करने की इच्छा की धोर भी प्रेरित कर सकता है। वास्तव में इस सन्देह के कारण है कि मनुष्य जो जन्तु वर्ग के प्रति निकट है उनमें से एक है जिन्हें प्रकृति ने इस प्रकार स्थायी साहचर्य के उप ब्रुक्त बनाया है। इस विचार के कई आधार हैं और यह वांछनीय भी है कि हमारी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को भय कानून धारि कृत्रिम बन्धनों द्वारा स्वायत्त की धोर प्रेरित किया जाए। अभी हाल के वर्षों में इस बात की धोर प्रेरित करने की प्रवृत्ति रही है। इन नियमों पर बहुत बल दिया जाता रहा है और इस बात की माँग की जाती रही है कि समाज की अधिक सुविधाएँ ही जाएँ। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ देशों में—जैसे जापान में इस तरह की काफी सुविधाएँ एक समूह काम से प्राप्त की अब वहाँ भी इन बंधनों का मजबूत करना वांछनीय समझा गया है। प्राथमिक महत्त्व की बात तो बच्चों की पर्याप्त देख-भाल है और वह बहुत-कुछ संशो न माताओं पर आकारित है। परन्तु यह कार्य तब कठिन होता है जब विवाह-बन्धन में साधारणतः पवित्रता आने लगती है। यह एक कठिन विषय है और यहाँ व्यापक वर्तन कठिन है।

बच्चों के पास-गोपण का धर्म मूलतः उचित भोजन पानी विभास वायु, प्रकाश तथा अन्य प्राकृतिक आवश्यकताओं का पूर्ति द्वारा जीवन और स्वास्थ की रक्षा में है। परन्तु आन्विक कृतियों के विकास, विशेषतः पति और अधिभ्यक्ति की आवश्यकताओं पर भी विचार किया जाना चाहिए। और यह भी स्वभावतः परिवार की परिधि में ही आना चाहिए।

६ परिवार के शैक्षणिक कार्य

१. हम किस दर की मात्र की पोर्ट की कुष्ठक जापान : वि म्पू बरई पावर
अ = ईरिप।

कि वह बच्चे को माता का प्रारम्भिक प्रयोग धीरे-धीरे छोड़ने में मदद करे (जहाँ तक हो सके) धारण-संयम) तथा सामाजिक सिद्धान्त के मूल सिद्धान्त सिखाए। उन्हें कुछ प्रश्नों में दूसरों को ही सीख देना चाहिए। उच्च वर्ग के सम्बन्ध में अपने धार्मिक-समाज में जोटा ने यह मुझसे कहा कि है कि ये सब कार्य जनता के अधिकारियों को सौंपे जाने चाहिए। पर वह औद्योगिक-वर्ग के लिए ऐसा सुझाव नहीं देता परन्तु कुछ सौगंध-सामग्री सिद्धान्त के रूप में इसका समर्थन करने को तैयार दिखाई पड़ते हैं। परन्तु बच्चों को दूसरों को सीखने की यह प्रवृत्ति प्रकृति के विरुद्ध दिखाई पड़ती है। माँ-बाप का सामाजिक स्नेह विशेषतः माताओं का अपनी सन्तति के प्रति वह स्नेह—जो निम्न वर्ग के जन्तुओं में धारण होता है—इस बात की सन्तति को प्रमाणित करता है कि दूसरा कोई भी किसी भी हासत में उनकी प्रारम्भिक प्रवृत्ति पर प्रभाव डालना करना में समर्थ नहीं हो सकता। यह भी स्वीकार करने की बात है कि कुछ माता-पिता में यह स्नेह तुलनात्मक रूप में कम होता है और कभी-कभी धर्म लोगों में जो माता-पिता नहीं होते उनसे भी अधिक मात्रा में मिलता है। यह भी स्वीकार करने की बात है कि बच्चा के पास-जोपस के लिए प्राकृतिक स्नेह और सहज-वृत्ति ही पर्याप्त मार्ग-दर्शक नहीं कहला सकत। बच्चा जिन्होंने बच्चों और उनकी प्रारम्भिकताओं के बारे में विशेष अध्ययन किया है कई कारणों से उनके साथ व्यवहार करने में अधिक सफल हो सकते हैं। परन्तु यह सर्वोत्तम है कि वह बात जीवन के प्रारम्भिक वर्षों के लिए सामान्यतया लागू हो सकती है। ऐसे प्रश्नों का हल खोजते समय हम बाप पर विचार करना ठीक रहेगा कि सामान्य परिस्थितियों में सन्तोषजनक बन क्या हो सकता है। प्रसाधारण मामलों पर उनकी स्थिति के अनुसार बाप में विचार होगा। स्पष्टतः जब माता या पिता या दोनों मर जाते हैं बच्चा समझकर रूप से बीमार या असमर्थ होते हैं बच्चा उनके लिए बर उठाना जरूरी होता है बच्चा बच्चा अपने माता-पिता से स्वभाव में एकत्र भिन्न प्रवृत्ति का होता है जो वे परिस्थितियाँ प्रसाधारण कहलाती हैं और उनके लिए प्रसाधारण उपचार की आवश्यकता होती है। परन्तु वह कहना सही होगा कि माता-पिता के ध्यान से रहित बच्चे भी दूसरा प्रकृतिक उत्तम वैकल्पिक प्रवृत्ति नहीं कहला सकत। यहाँ तक कि जब बच्चे रहस्य जाते हैं तब भी परिवार शिशा के बहुत से महत्वपूर्ण पहलुओं के लिए प्राकृतिक वेद के रूप में दिखाई देता है विशेषतः स्वभाव और स्नेह के सम्बन्ध में।

व्यापक धर्म में परिवार संरक्षण प्रभाव का एक प्राकृतिक वेद भी है। इससे माता-पिता और बच्चे एक साथ कई विभिन्न तरीकों से प्रकृतिक लाभ नष्टाने हैं। हम दूसरों को सिखा देकर स्वयं सीखते हैं। अधिकतर बच्चों को

विचार देने के प्रयास में प्रायः हमेंसा समझने बात के विचारों का भी परि-
मार्जन होता है। इसके प्रतिरिक्त बच्चों के संघर्ष से एक प्रेरणा भी मिलती
है—

एक शिशु प्रायः सभी उपहारों से महान् ।

जिसे भेद देती है बरती बतलघीस मानव को

जाता है बहु अपने साथ आसाएँ और बिकारोमुक्त विचार ।

यहाँ तक कि जिन्हें ज्वालोत्प्लव नहीं कहा जा सकता वे भी शिशु-जीवन के
सम्पर्क से अपनी अनुभूति का विस्तार करते हैं। यह उनके लिए जीवनदायिनी
बीज होती है। यद्यपि मरे जीवन की विचारबारा भी कभी-कभी निराशाओं
से घुमिल हो जाती है, परन्तु यह ब्यार-विद्या के संघ के रूप में कभी नहीं
बुझती।

बुद्धय महत्त्वपूर्ण संघर्षिक प्रभाव भन्तर-वैतुक है। विभिन्न लोगों में साधा-
रणतः स्वभाव बहि और विषय के दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट भेद होते
हैं। प्रत्येक सुम्पबन्धित संकठन में इस प्रकार की भिन्नताएँ रहने पर भी लोग
सापक्षी संघर्ष से बहुत कुछ सीखते हैं। और इसके साथ ही वे एक प्राकृतिक
स्नेह और निकट साहचर्य में बन्ने रहते हैं। इस में संदेह नहीं कि इसी कारण से
कुछ लोगों में मनमान में एक-दूसरे से एकत्र भिन्न होते हुए भी उनमें एकता
का बंधन हो जाता है। सामान्य भिन्नता में भी प्रायः यही बात देखी जाती है।
हेलन के बारे में टेनिसन कहता है कि वह बहुत मनमान या और में बहुत
नारीब। परिवार के इस पहलू का महत्त्व एक-बली प्रथा के समर्थन में एक मज-
बूत ठरक है। बहु-बलीत्व में स्त्री की हीन स्थिति हो जाती है और उसमें व्यक्ति
बत बनिष्ठता और बराबरी का साथ नहीं मिल सकता जो एक-बलीत्व में संभव
है। संभावना सदा ही वास्तविकता में परिवर्तन नहीं होती। इसके यह ठरक असत्य
नहीं हो जाता है। सारांश में संस्थाओं का भूत्पादन उनके प्रबिकारिक मान
के आधार पर किया जाना चाहिए।

परिवार के ये पहलू पूर्व-बिष्ठ लैबिनिकी सम्बन्धी समस्याओं को लेकर
प्रस्तुत किए गए हैं। यह स्पष्ट है कि ये सम्बन्ध जिनके विषय में हम विचार कर
रहे हैं सरसता से नहीं बनते। स्विट का कहना है कि विवाहों का घसघस
रहना प्रभावशाली इस कारण से होता है कि लड़कियों को एक परिधि की
अपसा एक ताना-बाना बनाना सिखाया जाता है। यह बताना हमारी सीमा
के बाहर है कि इन बातों से मुक्ति कैसे पाई जाए। परन्तु यह कहा जा
सकता है कि पन्थनिमी संघर्ष की समस्याओं का एक न्याय-युक्त समाधान
होना चाहिए क्योंकि उनका बच्चों की सामान्य-विक्षा में एक महत्त्वपूर्ण एवं
बनाबी स्थान होता है। इस विषय में प्रायःकत काफी ध्यान दिया गया है।

हमें यहाँ हम सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।^१

परिवार के जीवन में जैसा हम देख चुके हैं कि धार्मिक पहलू का भी बहुत बड़ा महत्व है। जैसे बच्चों का पालन विमोक्त प्रारंभिक स्तरों में माता

पर आधारित पड़ता है वैसे ही उनका धार्मिक पोषण

७ परिवार के धार्मिक-कार्य पिता पर आधारित होता है। यह बात हिन्दू वर्ग के प्राणियों के बारे में भी कुछ भ्रम में सत्य है।

कहाँ तक यह मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक है

यह विभिन्न काम और विभिन्न प्रयत्नों के अनुसार बहुत भिन्नतापूर्वक होती है। यहाँ तक कि एक ही काम में एक ही देश के समाज के अलग-अलग वर्गों में भिन्नता पा जाती है। कुछ परिस्थितियों में विवाहों का धार्मिक भाषिक आधारों पर होता है और यदि ऐसा नहीं भी होता तो भी धार्मिक पहलू का महत्व मुस्लिम से ही कम हो जाता है। यह भार अभी कम हो सकता है जब राज्य की ओर से माता को दायमान प्राप्त हो परन्तु इससे समस्या का पूरा हल नहीं हो पाता।

परिवार की धार्मिक आवश्यकताएँ कई बार पारिवारिक एकता में बाधक होती हैं और वे सैक्यूलर कार्य में भी बहुत धार्मिक बाधा उपस्थित करती हैं। जीवन की धार्मिक परिस्थितियों में परिवार अपने घर में या निकटस्थ पड़ोसी के महाँ परिश्रम करके काम बना लेता या। परन्तु जीवन की बढ़ती हुई समस्याओं में मात्र इसे मुस्लिम बना दिया है और यह स्थिति अब इतनी सामान्य नहीं रही है^२। मात्र का जटिल समाज इसकी शक्तिपूर्ति बाधाओं की सुविधाओं तथा अन्य सुविधाओं द्वारा पूरी करता है। इन परिस्थितियों में भी परिवार आत्मनिर्भर नहीं कहा जा सकता। इसकी पूर्ति के लिए पिता निरन्तर परिवार से दूर रह सकता है परन्तु परिवार के प्रति उसका जो कर्तव्य है पारिवारिक जीवन को प्रभावित करने बिना उसका छोड़ा भी जा सकता नहीं पड़ सकता। माता घर से बाहर काम करने जा सकती है, और सामारणतः यह एक ऐसा दोष है जिसका हलाना चाहिए। कई बार धार्मिक धर्म की पूर्ति के लिए बच्चों को भी काम करना पड़ता है जब कि उनकी प्राणियों वृद्धि और शिक्षा के लिए मुशकिल रहनी चाहिए। कुछ भी हो ऐसी परिस्थितियों में परिवार अपने सैक्यूलर कार्य के पहलू में बिर जाता है।

धार्मिक हल की एक और कठिनाई पर भी यहाँ ध्यान दिया जाता

१ श्री ए. डब्ल्यू. का भी पुस्तक 'धार्मिक धर्म के कारणों का वर्णन करने की आवश्यकता का लक्षण है।

जो परिवार के सामान्य-विस्लेषण में फटोर है इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई विशेष कठिनाई अनुभव नहीं करता बीजता । भारत में इससे उसका मतलब यह नहीं था कि उसके धारण-समाज में औद्योगिक-वर्ग के परिवार का जीवन बाधायुक्त होया । उतने यह माना है कि सामान्यतया बच्चे अपने माता-पिता के नाम-बच्चे का अनुकरण करें ; यदि बच्चा छोटी अवस्था में भिन्न वर्ग वालों के साथ मिला नहीं दिया जाता तो कम-से-कम वह अपने पैतृक कार्यों से बहुत पृथक न होगा । इस प्रकार वे अपने इन औद्योगिक कार्यों के लिए घर पर तैयार होंगे जबकि शिक्षार्थी के रूप में लीखेंगे । आदिम समुदायों और ग्राम्य शिक्षित बच्चों के अपेक्षाकृत अल्प-विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में भी यही प्रथा अब भी जारी है । परन्तु औद्योगिक जीवन की प्रवृत्ति प्रतिदिन इसकी समाधान को कम करती जा रही है । यह सत्य सिद्ध होता जा रहा कि कोई भी व्यक्ति किसी विशेष कार्य के साथ संबंधित होकर जन्म नहीं लेता और सभी वृत्तियाँ सभी नागरिकों के लिए खुली हैं । इसे व्यवहार्य बनाने के लिए सामान्य धारणा विशेष प्रकार की उचित शिक्षा उन लोगों को दी जानी चाहिए जिनका कार्य औद्योगिक वर्ग का है । इससे बच्चों के जीवन पर काफी प्रारंभिक धारणा में घर का प्रभाव हट जाता है और यदि पारिवारिक जीवन में यह समझ न तो परिवार को सहायक की अपेक्षा बाधक माना जाएगा । यह कठिनाई घाने घाने वाली कठिनाई से अनिच्छता से सम्बन्धित है और इसे उसके विशेष पहलु के रूप में माना जा सकता है आगे हम उसी पर प्रकाश डालेंगे ।

(ख) परिवार और राज्य के बीच संबंध उत्पन्न हो सकता है । पारिवारिक जीवन विषयक प्रश्नों की धारणा का मुख्य आधार यही था । उसने कहा कि जो लोग विशेषतः राज्य की सुरक्षा और सरकार से सम्बन्धित होते हैं उन्हें परिवार के सीमित स्वार्थों से मुक्त कर देना चाहिए । अब और कम से-कम धार्मिक प्रशासन में यह मान लिया गया है कि राज्य के कल्याण के लिए औद्योगिक कार्य का भी उतना ही महत्व है जितना शैक्ष-व्यक्ति का । और प्रत्येक व्यक्ति राज्य के लिए योग्य सरकार चाहता है । अतः विभिन्न वर्गों में बहुत कम तक अधिक भेद नहीं उठार सकता परन्तु यह सत्य है कि एक व्यक्ति पर परिवार और राज्य के हार्थों के बारे में संबंध हो सकता है । राज्य के इस हार्थ से कि वह अपने नागरिकों के लिए उचित शिक्षा प्रदान करे जिससे वे विद्या-साधुत्व जीवन के अपने दायित्व को पूरा करने के योग्य हो सकें । परिवार के इस हार्थ से जोस्ताशशी होती है कि उसके हितयोग से उस पर पतुत्र विवरण रहना उचित है । इस सम्बन्ध में परिवार के धारण-कर्तव्यों को जान लेना महत्वपूर्ण होगा । इस कठिनाई का समाधान

सही हो जाता है जब इस सिद्धान्त को मान्यता दे दी गई कि माता पिता का अधिकार पराधिकाता समाज का-सा है अर्थात् बच्चा राज्य की प्रजा (उसमें भी अंततः प्राथमिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है।) बनने तक पिता-माता का अधिकार है।

(क) मैत्री व्यवस्था स्थापित करने के दायरे भी परिवार की एकता के कुछ प्रतिकूल होते हैं। परिवार बिस्व द्वारा रचित एक उपागम के समान है और सदा इस बात का भय है कि वह बनस्पतिवादी रक्त के शीघ्र के मकान का रूप बनकर न रह जाए। बिस्ववत् ऐसा ठक होता है जब आवास की कमी होती है और इन अवस्थाओं में आवास समस्याएँ प्रमुखता ग्रहण करती हैं। मानव की एक प्राकृतिक आवश्यकता के रूप में भी मैत्री या साथीपन की इच्छा ही होती है जो उसे परिवार के संकुचित घेरे से निकाल कर स्वयं या अन्य सामाजिक स्थान तक ले जाती है। पारिवारिक जीवन और मानव के व्यापक भावुकपूर्ण जीवन के बाहों के मध्य उचित सन्तुलन खोजना मानव जीवन की महान् कठिनाइयों में से नहीं परन्तु वास्तविक कठिनाई तक घाती है जब दो विरोधी नियम बाहों में मैत्री होती है। ऐसे मामलों में पारिवारिक सीमाओं पर अनुशासन से दबाव का अधिक भय होता है। इन कठिनाइयों का समाधान मैत्रीपूर्ण समागम के अधिक व्यवहार प्रस्तुत करना ही है।

(ख) अयोग्य राज्य और मैत्रीपूर्ण समागम के बाहों का अतिरिक्त धर्म तथा विज्ञान और अन्य मानवीय शक्तियाँ जिन्हें सांस्कृतिक कहा जाता है भी कुछ पंखों में परिवार के प्रतिकूल जाती हैं। कत्ताकार तो अपने का समाज के बंधनों से एकदम मुक्त मानता है। वह परिवार के तुल्य हितों से सबक होने के कारण अपने को अछूत पता है। प्रायः प्राथमिक आवश्यकताएँ कत्ताकार की स्वतन्त्र रचनात्मक गतिविधियों को रोक देती हैं और उसके कलात्मक साक्षात्कार में बाधक बनती हैं। इसी तरह सन्त पौत्र तथा धर्मों ने अनुभव किया कि नतिक और धार्मिक समूहों के लिए समर्पणात्मक जीवन सीमित पारिवारिक परिधि में धर्ममत्त है। परन्तु पारिवारिक जीवन से अलग होना भी मानव-जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। संभवतः अन्त में कत्ताकार व्यवस्था सन्त लोगों के आसनों पर भी परिवार का असर होता है। और यह इस संसार का दुर्भाग्य ही होता है कि ये सब व्यक्ति अपने बंधन वैध नहीं करते। "हम सुन्दरतम प्राणियों की बुद्धि चाहते हैं" वास्तव अपनी पुस्तक 'हेमरिडिटी बीनियस' पृ० स० ३४४-५ में मध्ययुगीन चर्च के कार्यों द्वारा सम्यक्ता को जो हानि पहुँचाई गई उस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात कहता है। चर्च ने पहले सभी सीधे प्राणियों पर

१. इस विषय में जार्ज लैंग का एक बौद्धिक निबन्ध जो बर-बर ही है चाहे उसमें बर का सा आता-वत् न मिले' नामक बन्धन पर लिखित है उसका यहाँ अन्वेषण किया जा सकता है।

प्राथमिक किया और उन्हें बहुराज्य बंध का प्रतिष्ठापन किया। दूसरी बार अपने विद्यालय नाम में अंततः जल में मगन मछलियों के समान उन लोगों को पकड़ा जो अपने विचारों में निर्मम सत्यवक्ता और बुद्धिमान थे। इसीलिए उच्च-समाज में वे एक अष्ट पिता बनने योग्य थे। जर्मन ने उन पर एक रोक लगा दी यदि वह प्रत्यक्ष गोक न लगा सका तो उसने उनकी संस्थितियों के रूप में उन्हें अवश्य कर दिया। फिर उसने भावी संस्थितियों के मुबार के लिए जिन लोगों का चुनाव किया था वे कुछ जरासीन और दुर्लभ निकसे।" यह संभव है कि वास्टम महोदय के इस कथन में कुछ अतिरंजन है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति सोच सकता है कि वर्तमान-काल में पारिवारिकों के लड़के-लड़कियों ने कितने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं और इसी से समझा जा सकता है कि जर्मनियों को जबरदस्ती बहुराज्यो रखने से संसार को कितनी हानि उठानी पड़ी। पर यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि उनके इस जीवन से हमें बहुत-कुछ लाभ भी हुआ। उन्होंने मध्ययुग में अपने एकाकी चिन्तन और अपने बलिदान द्वारा हमें बहुत लाभ पहुँचाया है।

इस प्रकार की इन कठिनाइयों पर चिन्तन के कारण ही धार्मिक विचारक और प्लेटो जीवन की स्वतन्त्र-अत्यासी खोजने को विवश हुए। ऐसे महोदय इस प्रकार के प्रस्तावों के पहले प्रचारक हैं। परन्तु जाति प्रथा के कारण विभक्त समाज की मिश्रता को देखते हुए ऐसा नहीं हो सकता कि सबसे लिए प्रचार और कानून पृथक् हों। धार्मिक जीवन-सम्बन्धी अत्युन्नत विभिन्न दशाओं का एक सामान्य सरलीकरण समीपप्रद मुक्तभाव प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु हम इसका अन्वय नहीं करना करेंगे। कुछ भी हो जैसा भीमती बोसके कहती हैं यदि संसार में परिवार नहीं होता और उसके बिना यह संसार बनता भी रह सकता तो भी वह परिवार से प्राप्त होने वाली विधेयताओं का अभाव न रह सकता था। जैसा भी यह एक भूमिक संसार है इसकी कोई भी प्रतिष्ठाया या अनुभूति की रेखा जो इसकी गहराई, पृथक्ता और वैभव का निर्माण करती है जो इससे पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी तरह यदि प्रेम और सौन्दर्य और प्रकाश के मुख्य परिवार को इसलिए ही अस्वीकार किया जाता है कि वह कभी-कभी अमष्टन होता है तो इस तरह में धारास से मूर्ख को समाप्त करना हुआ भी कभी-कभी बाहनों से एक बात है।

१. इसकी पुस्तक 'विभिन्न अष्ट शोकात् रिक्तस्तनन अ २ ३३३।

२. 'वैमिती' १ नं २२५।

द्वितीय अध्याय शैक्षणिक सस्थायें

शिक्षा का सर्व व्यापक व सीमित रूप से समझा जा सकता है। व्यापक अर्थ में यह एक ऐसी क्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है और जीवन के प्रत्येक अनुभव से इसके अन्तर्गत में वृद्धि होती है।

१ शिक्षा का सामान्य अर्थ शिक्षा को जीवन का मुख्य साम्य भी कहा जा सकता है। इस तरह शिक्षा का अर्थ एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया से निभा जाता है, जिससे व्यक्तिगत विकास होता है तथा जिसके द्वारा व्यक्ति पारस्परिक और इस विश्व में जहाँ में रहते हैं सम्बन्धों की जानकारी करते हैं। शिक्षा को इस व्यापक अर्थधारणा पर प्लेटो के 'रिपब्लिक' में अधिक जोर दिया गया है। प्लेटो के इस विवरण से स्पष्ट है कि जो लोग उसके चार्स-समुदाय के अन्त-यहो पर आसित होंगे उनका निर्माण और विकास किया जाए। परन्तु धातुनिक विचारणा की यह मान्यता है कि विशेष प्रकार के व्यक्तियों के लिए भी शिक्षा की कोई विशेष-व्यक्ति निर्माण तथा संभव नहीं और पूरे समाज के लिए तो और भी कम संभव है।

शिक्षा को इन व्यापक अर्थों में समझने के बाद अब हम समझ सकते हैं कि उसका अधिकतर भाग अपना कभी-कभी महत्वपूर्ण अर्थ भी—इमें धनवान् न ही प्राप्त हो जाता है। शिक्षा हमें अपना जीवन की समस्याओं के समाधान प्रकृत के प्रभाव और बुद्धियों दूसरे साधनों के साथ व्यवहार तथा प्रायः अपनी प्रसन्नता और कष्टों द्वारा प्राप्त होती है।

सीमित अर्थ में शिक्षा का अर्थ हमारी व्यक्तियों के विकास और सुधार के लिए अतिसूक्ष्म किये गए प्रयासों से लिया जाता है। उदाहरणस्वरूप यदि अपना प्रमाण यह है अपनी पूर्ण-व्यक्तियों के पूरी तरह से अनाकरण अर्थात् उन्हें प्रकट करना ही समझते हैं। तबतत् उनका यह प्रमाण उद्देश्य

सीमित अर्थ में शिक्षा का अर्थ हमारी व्यक्तियों के विकास और सुधार के लिए अतिसूक्ष्म किये गए प्रयासों से लिया जाता है। उदाहरणस्वरूप यदि अपना प्रमाण यह है अपनी पूर्ण-व्यक्तियों के पूरी तरह से अनाकरण अर्थात् उन्हें प्रकट करना ही समझते हैं। तबतत् उनका यह प्रमाण उद्देश्य

१ शिक्षा के इस अर्थ पर इती दुलक में भागे जाने वाले अर्थ १ प १ में प्रकाशित किया गया है।

जीवन-भर चलता रहा। सेक्सपीयर भी वास्तव में अधिक विकास और पूर्णत्व को प्राप्त कर सकता था पर ऐसा बीसता है कि उसका यह विकास स्वयं अभ्येतनतापूर्वक ही संभव था। बीजे ने शिक्षा के लिए 'सामिप्राथ' राज्य का प्रयोग किया है। इससे वह अभ्येतनतापूर्वक तथा एक विशेष निश्चित उद्देश्य से प्राप्त की गई शिक्षा में अन्तर उपस्थित करता है। परन्तु चेतनापूर्वक किम्व गण-घातम-मुबारों का जैसा कि गेटे महोदय ने किया था घाम तीर से शिक्षा के रूप में बर्लन नहीं किया जाता। शिक्षा' राज्य सामान्यतः एक ऐसी प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त होता है जिसे राज्य या परिवार सबका धन्य किसी व्यक्ति के द्वारा अपने बच्चों के विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को लेकर चेतना पूर्वक भावोचित किया जाता है। उनका यह उद्देश्य बच्चों के व्यक्तित्व का सुधार कर सकता है सबका नहीं भी कर सकता। यहाँ शिक्षा को उसके सीमित धर्म में प्रयोग करना ही उचित होगा जिसने निश्चित सामाजिक संस्थाओं का प्रावुर्भाव होता है। इसके व्यापक धर्मों पर ध्यान विचार करें।

जब हम शिक्षा को इस सीमित धर्म में लेते हैं तो इसका सामाजिक-महत्त्व इसे परिवार से राज्य को देने सबका उस विद्यालय जन-समुदाय के हाथ में सौंप देने में समझ जाता है जिस समुदाय का बच्चे को सदस्य बनना होता है। साधारणतः प्रारम्भिक शिक्षा परिवार में ही ही जाती है और अधिक ज्ञानार्जन के लिए बच्चे को घासा और उसके बाद विद्यालय को सौंप दिया जाता है। शिक्षा यदि व्यक्तिगत रूप से ही जाती है तो भी बहुत कुछ धर्मों में उसके सकय और विधियाँ स्कूल और कनिजों की तरह ही हल हैं। जैसे हम पहले प्रकट कर चुके हैं कि परिवार में बच्चा एक अधिपति के समान होता है परन्तु विद्यालय जन-समुदाय उसे एक सेवक बनाने का प्रयास करता है यद्यपि धार्य चलकर वह प्रकस्मात् उनका एक स्वामी सबका मार्ग-दर्शक बन सकता है।

शिक्षा के लक्ष्य और उच्चनी प्रशान्तियों के बारे में विस्तृत विवेचन उन लोगों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए जिन्होंने इस विषय का विशेष अध्ययन किया है। संगठित समुदाय में शिक्षा काबों के सामान्य सर्वोत्तम को हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

घासा का मुख्य कार्य बच्चे को एक बड़े समुदाय में प्रबल के लिए प्रारम्भिक तैयारियाँ करवाना है। बच्चों की प्रकृतियाँ भी बयस्कों की तरह प्रापत में बहुत अधिक भिन्न हानी है। इस बारे में एक सामान्य २ घासा के कार्य निदान प्रतियोगिता किया जा सकता है जो उचित भी हो सकता है और कुछ लोग जिसे प्रतीति भी कर सकते हैं। प्रोफेसर डूप्री तथा कुछ अन्य विद्वानों ने इस बात का उचित ही विरोध किया है कि एक बच्चा प्रकृति से अर्हवादी होता है। दूसरी तरफ

बच्चों की बड़ाई भी प्रतिबंधित रूप से की गई है। यह सिद्धांत कि संघर्ष में बच्चे के पास-पास स्वयं होता है। भारत में प्लेटो की उस प्रवचनारणा का बिम्बदा हुआ रूप है जिसमें धारु का इस विद्वत् में अपरिमित प्रतिबंधों को लेकर पाने का वर्णन किया गया है। बच्चे में एक मोहक भोलापन होता है और पास-पास की प्रत्येक वस्तु को सराहने की उलारणा होती है परन्तु यह कहना उचित है कि उसमें सर्वहित की सुनिश्चित प्रवचनारणा उपस्थित होती है। ऐसा प्रतीत होता है और सामान्यतया यह सोचना उचित है कि बच्चे में कम या अधिक कुछ न कुछ निरंकुश सुविधा होती है। उसे एक संवेधानिक सभा के लोग बनना होता है साथ ही कमरा दूसरों के साथ बराबर का सामरिक भी बनना सीखना पड़ता है। दुर्भाग्य से उसे यह बात प्राप्त बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में और बहुत जल्दी सिखा ही जाती है। कर्म-कमी तो उसे दास बनना भी सिखा दिया जाता है और उसकी अन्तर्गत अपरिमित प्रतिबंधों को दबा दिया जाता है। यह एक प्रकार से राज-शोह जैसा प्रपचार है। परन्तु इसका यह धर्म नहीं कि बच्चे को केवल पकेला ही छोड़ देना चाहिए और उसे स्वतः एक पुत्र की तरह प्रपना विकसित करने दिया जाए। परन्तु उसे शायद में मिलने वाला ज्ञान दिया जाना चाहिए जिससे वह साधारण जीवन में कमण हिस्सा बँटा सके। इस बात के लिए उसे अपने लोगों की भाषा को सीखना पड़ता है जिसमें उनका ज्ञान उनकी मूर्ख उनके उद्देश्य और उनके धारमं और दुर्भाग्य से उस समुदाय के प्रविचार और सीमाएँ भी अन्तर्गता है। यह स्पष्ट है कि यह शायद धीरे-धीरे ही प्रतिबंधित किया जाता है। बच्चों को ज्ञान मानव-मस्तिष्क के नैतिक विकास के परिमाणित प्रभवण द्वारा ही दिया जाना चाहिए। इसके साथ ही उनकी वैयक्तिक विवेक प्रवचनारणों के प्रति सहानुभूतिपुक्त मूर्ख का प्रयोग किया जाना चाहिए। निरसन्दीह यह सर्वत्र मान लिया गया है कि इतने कुछ बंधों में बच्चों के प्रकार सीमित होये। यह भी वर्णित रूप से स्पष्ट है कि बच्चों को उनके प्रारम्भिक जीवन में उनके सम्प्रदाय की सरलतम और श्रेष्ठतम परम्पराओं का ज्ञान भी करवा दिया जाना चाहिए। सब से पहले उनके सामने सुन्दर और मञ्जुरतम बातें रखी जानी चाहिए। प्लेटो ने इसके लिए प्रारम्भिक शिक्षा में संगीत और नाट्य के प्रयोग पर बल दिया है। यद्यपि उसका मुख्य होमर की प्रतिशमोक्तिपुणं कविताओं की और का (जो संभवतः प्रति गम्भीर भी नहीं मानी जाती तथा जो धन प्रसामयिक हो चुकी हैं)। यह तो उनके लिए कुछ बंधों में इस प्रकार की सरल कविता प्रस्तुत की जानी चाहिए जिस तरह की कविता बर्हसुबर्ह तथा प्रम्यों की है। बच्चों के लिए कुछ परिषदों की कहावतियाँ भी प्रस्तुत की जानी चाहिए जो प्राकृतिक-साहित्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान पड़ी हैं। एक पुरानी कहावत मुझे अपने लोगों के लिए

एक गीत बनाने दो जो उनके द्वारा एक नियम का रूप धारण करेगा इसमें काफी बहुरा धर्म छिया है । यदि किसी सुन्दर विचार धनवा बहुरी धनुवृत्ति को सुन्दर कहानी धनवा धमर कहानियों का रूप दिया तो वे सीधी हृदय में पठ जाती है, बर कर सेठी है स्मृति में बूमती रहती है और साम्प्रत धानम्ब का प्रदान करती और सम्पूर्ण जीवन के लिए एक प्रेरणा बन जाती है । दूसरी तरफ नियमों, जो लोगों की श्रेष्ठ परम्पराओं को स्मरता और निरूप्यतात्मकता प्रदान करते हैं वा भी धार्यधिक महत्त्व है । उन नियमों को भी बच्चे के 'सरस हृदय पर पुस्तक हाथ में लेन के समर्थ होने के पहले ही संकित कर दिया जाए ।

धीरे-धीरे बच्चे को अपने धाय-पाठ के वातावरण के साथ अपने सम्बन्धों की जानकारी धन्धी तरह करवा देनी चाहिए । इसके उपरान्त उस प्रकृति के महत्त्वपूर्ण धम्पयन की ओर प्रवृत्त करना चाहिए । निरूप्य ही उसके मस्तिष्क के विकास के लिए बहु धार्यधिक धार्यक्य प्रयासी होती । प्रारम्भ का निरीक्षण सीध ही चिन्तन का रूप धारण कर लेता है और फिर बच्चे को मानव प्रकृति क धम्पयन की ओर प्रवृत्त करता है । इससे उन पर सीध ही नागरिक प्रस्नो और नैतिक धारित्व स्पष्ट हो जाते हैं और धीरे धीरे मानव-इतिहास की विसेपताओं की जानकारी बढ़ने लगती है । इतिहास में बहि उ बच्चे उन लोगों की माया की जानकारी के लिए प्रयत्नशील होत हैं—जिन्होंने ऐतिहासिक विकास में महत्त्वपूर्ण पाग लिया है ।

इन बातों के साथ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि बच्चा जिन बातों का धम्पयन करना है उनका प्रयोप करना भी सीखे उन्हें अपने काम में भी जाए उन्हें जाने तथा उनका भुस्याकन करे । इसके बार बहु प्राकृतिक पदाथों को चिथित करना सीख सकता है । बहु स्वयं कुछ सरल कहानियों की रचना करना भी सीख सकता है । बहु वर्धनात्मक-सेल मिख सकता है । समस्बाधों पर चिन्तन कर सकता है और बहु कुछ ऐसी वस्तुधों का निर्मास कर सकता है जो सुन्दर भी हों और उपयोगी भी । बच्चे को धार्यत्मक धारीरिक ध्यायाम और मनो-रंजन क कुछ धाधन भी प्रदान करना बूजना न चाहिए । उनसे बहु सहयोप वा महत्त्वपूर्ण पाठ भी सीखेगा ।

बहु धीमे-धीमे धिरभेदलुत्तमक चिन्तन के धारिक योग्य होगा जैसे-जैसे बहु स्वयं उन विषयों को समझने लयेगा वो मानव-जीवन और उसके धारों और क संसार क बुलियों को गुलमाते जाएगे । वे विषय हैं—ध्याकरण धनबलिठ रेकाण्डिठ और इसके उपरान्त कुछ धारम्भिक तर्क-ध्याधन सरल-नैतिक धनधारणार्थ धनसाधन क राबनीति-माधन तथा धारिक विचारों की बहु मूय—जिसके द्वारा कुछ महापुरुषों ने इस धिरन का धिममे हम रहते हैं

म्हारा क्या की है या बिचियों में बीरे बीरे बच्चा स्वय ही बचि सेने लगेगा । मेरा बिचार है जब तक उसमें बिभिन्न पक्षों पर ठरक करके मूल्यांकन की शक्ति परिपक्व नहीं हो जाएगी तब तक यह किसी बार्मिक मठ धरबा राजनीति के सामान्य मठ को स्वीकार नहीं करेगा परन्तु इसमें शंकेह नहीं है कि परिपक्व हुए बिना भी वे उनके बिषय में अपनी राय काबज करते आएँगे और इस तरह कुछ भी हासि न होमी ।

फिर यह बात बड़े महत्व की है कि जैसे-जैसे लड़के और लड़कियाँ किशोरावस्था में आएँ उन्हें बिभिन्न पक्षों से सम्बन्धित कठिनाइयों और पारि वारिक जीवन की सामान्य समस्याओं को कुछ जानकारी देनी चाहिए । प्रकृति और मानव-इतिहास के अध्ययन और अपने चारों तरफ़ से जीवन का निरीक्षण इसके लिए अच्छी तैयारी सिद्ध होंगे ।

इस प्रकार की शिक्षा से यह आशा की जा सकती है कि कम-से-कम जिनका जन्म ठीक तरह हुआ है उनका पोषण भी ठीक ढंग का होगा परन्तु जो जन्म के सम्बन्ध में कम भाग्यशाली हैं ज्ञान और बुद्धिमता के प्रति प्रेम और सौंदर्य का भूल्यांकन तथा सामान्य हित के प्रति समर्पण की कुछ भावनाएँ धरित कर सकते हैं । मेरा बिचार है कि सम्म-समुदाय का नागरिक बनने वाले को इतना तो जानना ही चाहिए और उसे यह सब कुछ सरलता से प्राप्त होना चाहिए । परन्तु इस बिषय से सम्बन्धित बिभिन्न तत्वों पर क्रिस प्रम और क्रिस प्रशासितों से विवेचन किया जाए, यह हमारे बिषय की सीमा के बाहर की बात है ।

यह माना जा सकता है कि पूर्व-अणित संक्षिप्त शिक्षण के सहारे बच्चा अपने एक बिषेय समुदाय में एक अच्छे नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना सीख लेता । परन्तु अच्छा नागरिक साधारण १ तकनीकी शिक्षा ढंग से ही अच्छा नहीं होना चाहिए उसे कुछ बिषेय ढंग से भी अच्छा होना चाहिए । इसलिए उसकी सामान्य-शिक्षा के साथ बिबिध तकनीकी शिक्षण भी होना चाहिए, जिससे वह उस बिषेय काम के लिए तैयार हो सके जो उसकी प्राकृतिक योग्यता और परिस्थितियों के अनुसार ठीक बैठता है । अनेक मागलों में यह सोच निकालना सरल नहीं होता और स्पष्टतः गितान्त बान्धावस्था में उसको सोचने का प्रयास भी नहीं करना चाहिए । यह आवश्यक है कि सभी को पर्याप्त काल तक शिक्षा मिले । जो उससे साम न उठा सके उसकी दूसरी बात है । तकनीकी शिक्षा के लिए आवश्यक तैयारी शिक्षा के किसी-न-किसी रूप में कराई जानी चाहिए । लड़कियों को यह तैयारी घर पर ही हो । यदि आवश्यकता हो तो बिषेय हस्त-कौशल

अन्वेषी आवश्यक जानकारी भी स्वयं में ही प्राप्त कर लेनी चाहिए।^१ जो आमक सगीत में विशेष रुचि रखते हैं वे तो इस का परिचय बहुत छोटी आयु ही देने लगते हैं। इस प्रकार से अभिवृत्ति खोज कर शिक्षा की सामान्य-वृत्ति में सुधार किया जा सकता है। प्रत्येक अन्वेषी पद्धति में एक लक्ष्योपान लेना चाहिए जो कि उसके लिए आवश्यक तत्व है।

अब तक जिस शिक्षा की रूप रेखा दी गई है वह किसी-न किसी रूप में भी नागरिकों के लिए आवश्यक है। व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार उसके प्रकार भिन्न भिन्न हो सकते हैं। बासक जिन कार्यों

४ स्वयं शिक्षा में अपने-आपको ठीक बैठे पाते हैं व कार्य भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं भिन्न-भिन्न स्तरों पर लगने

जमा समय भी कम या अधिक हो सकता है। सम्भवतः यह मात्र लेना चाहिए कि जब तक जिस प्रकार शिक्षा के विषय में विचार किया गया है वह सोसल वर्ग की व्यवस्था से पूर्ण समाप्त नहीं होनी चाहिए और साधारणतः बीस वर्ष की आयु से अधिक ऊपर नहीं जाना चाहिए। और जो ऐसे कार्यों के जैसे ज्ञान प्रसार, कलात्मक कृतियों अधिक अटिभ विज्ञानों का तकनीकी समस्याओं में प्रयोग, जिनमें विधि और विधिहीनता भी सम्मिलित है विभिन्न पहलुओं से सम्पादन कार्य अथवा प्रशासकीय आदि कार्यों के लिए अधिक तैयारी करना चाहते हैं उन्हें विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पिला दी जानी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा और पूर्व-अणित शिक्षा के प्रारम्भिक रूपों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

दुर्भाग्य से स्कूल तकनीकी संस्थाओं विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्पष्टता भेद प्रस्तुत नहीं किया गया है। जर्मनी की शिक्षा-व्यवस्था को अधिकारमता से ग्रहण किया जा सकता है और सम्भवतः जापान की नव शिक्षा योजना अब तक की सभी योजनाओं में पूर्ण है।^२ हम यहाँ विभिन्न देशों और किसी एक देश के विभिन्न भागों की विभिन्न पद्धतियों पर विचार नहीं कर

सांख्यिक अनुभव इस विषय की ओर संकेत करना रिश्तों बनना है कि जिनकी सामान्य-वृत्ति अन्वेषी तरह से विकसित होती है वे लोग बड़े साधारण लोगों की अपेक्षा अपने-आप को विभिन्न कार्यों में अन्वेषी तरह समावेशित कर लेते हैं। विशेष और वर कलात्मक कार्यों के उच्चतर स्तरों में और तथित सम्बन्धी आकलन वर आचारिक उपयोगों में विशेष प्रकार की विशाल तैयारियों की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः वह समावेशनात्मक-वृत्ति को उत्पन्न करना बहुत महत्व का कार्य है।

श्री आर पी० चोपड़ा की पुस्तक 'जापान दिग्गु वरद' पृष्ठ ७५ व ६६ पृष्ठ। श्री वेल्स की पुस्तक 'वैतनीय रज्जुकेतन' भी इसी।

सकते ! परन्तु इन पद्धतियों में से सब से अधिक महत्वपूर्ण पद्धति की धोर-सूचित करने का प्रयास किया जाएगा ।

कालेज कुछ धर्मों में या 'पूरुषोत्तम' तकनीकी शिक्षण देने की संस्थाएँ होती हैं और जिन्हें विश्वविद्यालय सम्बन्धित कालेज कहा जाता है वे भी इसी तरह के शिक्षण अपने कार्य में सम्मिलित करते हैं । हम इस तरह के शिक्षण-कार्य को उससे सम्बन्धित बता सकते हैं जिसका पहले वर्णन कर चुके हैं और विश्व-विद्यालय कालेजों को मूलतः धीरे-तत्परत इससे निरन्तर भिन्न समझना ठीक रहेगा । विश्वविद्यालय को परीक्षा देने वाली संस्था से कुछ ही अधिक समझा जाता है । जर्मनी में इसका भिन्न धर्म मिया जाता है वहाँ विश्वविद्यालय एक ऐसी संस्था है जो विशेष प्रकार की शिक्षा भी देता है वहाँ तक कि वहाँ की शिक्षा प्राक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों से भी बहुत अर्थों में भिन्न होती है ।

मेरा विश्वास है कि विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कालेजों का प्रमुख कार्य एक ऐसी उदार-शिक्षा देना है जो स्कूलों से उत्पन्न होती है । ऐसी शिक्षण संस्थाओं में छात्रों की साधारण प्रायः अठारह और इकतीस वर्ष के बीच होनी चाहिए । वहाँ का अध्ययन स्कूलों की अपेक्षा विविध होता है परन्तु उसका सत्य विधिष्ट ज्ञान की अपेक्षा सामान्य ज्ञानार्जन ही अधिक होता है । सारांश में जल्का निर्माण उन छात्रों के लिए किया जाता है जिन्हें अपने सामुदायिक जीवन में किसी प्रकार का नेतृत्व करना है । इसके लिए यह आवश्यक है कि यहाँ स्कूलों की अपेक्षा मानव-जीवन की सामान्य समस्याओं का पूर्ण अध्ययन किया जाए और समझा जाए । वर्धन और सामाजिक-विज्ञान की प्रमुख समस्याओं का सामान्य अध्ययन इस प्रकार की शिक्षा का प्राकृतिक रूप से आवश्यक भाग है । जापान काँस और कुछ अन्य देशों में इसकी आवश्यकता को समझ गया है । इंग्लैंड में इसकी प्रवृत्तता की प्रवृत्ति दिखाई देती है । ऐतिहासिक-विकास की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन भी इतना महत्वपूर्ण है कि वहाँ भी छोड़ना उचित नहीं । और फिर विषयों का विधिष्ट अध्ययन किया जाए यह व्यक्तिगत रुचि पर छोड़ दिया जाए और उस अध्ययन में भागी जीवन में अपनाये जाने वाले विधिष्ट कार्य का ध्यान रखा जाए ।^१

१. यह शैक्षणिक के ल. कैम्ब्रिज महोदय ने प्रो. बर्ने की पुस्तक 'हॉपर पद्धतिका' 'द वाट' के देखने से पूर्ण ही सिद्ध किया था । बर्ने महोदय का लुकास बनकी रस पुस्तक में (दिसोपल ५, १९० में) है कि अमेरिका और विश्वविद्यालय में भिन्न करना आवश्यक है और जल्का भी है और कि साधारणतः अमेरिका में किया जाता है । कालेज का काम सामान्य-संस्थापि की शिक्षा देना है और विश्ववि

सही धर्मों में विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के लिए है और इसकीस से पश्चीस वर्ष की आयु के छात्रों को किसी विशेष-द्वारा में शोष्य बनाना है। इस धोरण हम पहले ही संकेत कर चुके हैं। विश्वविद्यालय का काम के साथ सम्बन्ध उच्चस्तर पर ठीक उसी प्रकार का होता है जैसा तकनीकी शिक्षण संस्थाओं का स्कूल के साथ। विश्वविद्यालय का कार्य विद्यार्थियों को केवल सही प्रकार का ज्ञान तथा नैपुण्य प्रदान करना है जो उसके विद्यार्थियों में प्राप्य है तथा धर्म की प्रवृत्ति के लिए तैयार करना होता है। यह मानना परहेजा कि हमारे देश में ऐसी संस्थाएँ नहीं जो निरिच्छत और निरक्षर रूप से इन सब सभ्यों की पूर्ति करें जिन्हें हम विश्वविद्यालय कहते हैं। वहाँ अनेक ऐसे कार्य मिलेंगे जो प्रायः विश्वविद्यालयों को कालेजों तकनीकी संस्थाओं और यहाँ तक कि स्कूलों में होते हैं और वे भी योग्यतापूर्वक सम्पन्न नहीं हो पाते। परन्तु अब सुधार के कुछ बिन्दु दिखाई देने हैं। धीरे में उस व्यवस्था की धोरण संकेत कर रहा हूँ जो हमारा सक्षय होता चाहिए। यह ध्यान में रखना उचित होगा कि यदि शिक्षा का धर्म सामाज्य-विकास और व्यक्ति की मन-वृत्ति का प्रादुर्भाव करना है तो इसमें स्कूल और कालेज ही विशेषतः सम्बन्धित हैं। तकनीकी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों में कामकाज में शिक्षा के विशेष प्रकारों और प्रविष्टि तथा शिक्षा के विशेष विभागों में अनुसन्धान को प्रोत्साहन देना है। वे दोनों उद्देश्य स्पष्टतः पृथक्-पृथक् होते हैं और धारण में सम्बन्ध करने से संभावित ही सम्पत्ती है।

हम देख चुके हैं कि विभिन्न संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली शिक्षा जीवन की अनुभूति से उत्पन्न होने वाले वैश्विक प्रभावों का केवल एक भाग मात्र होती है। परन्तु यदि शिक्षा को इतने विद्यालय धर्म में

२. पुरस्कृत शिक्षा न लेकर यह प्रस्तुत किया जा सकता है कि शिक्षा का एक विकास रूप संभवतः प्रमुख रूप ही—जिस वैश्विक संस्थाएँ प्रदान करती हैं किनी विशेष-सम्पन्न में प्राप्य ज्ञान प्राप्त

का काम विद्यार्थियों को प्रतिष्ठित देना। उन्होंने अत्यन्त को विश्वविद्यालय और स्कूल से कलम करने के लिए जो विचार प्रस्तुत दिये हैं वे बहुत ही तराह नीचे आते सम्बन्धित हैं। कुछ अमेरिकन सोयल साइन्स बोर्ड और अमेरिकन सोयल साइन्स बोर्डों का अत्यन्त बहना उचित सम्बन्ध है क्योंकि वह केवल रक्षा कोतर सम्बन्ध की सुविधा ही प्रदान करते हैं। परन्तु निम्नलिखित उदाहरण विश्वविद्यालय के लिए हैं।

1. जो बर्ले की सुलभ रिपोर्ट अत्यन्त सही कर चुके हैं में सुलभ रूप से अत्यन्त ही महत्त्व की अतिरिक्त प्रकाश डाला गया है। परन्तु मेरा विचार है कि वह भी अन्य महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हमारे यहाँ वैश्विक विश्वविद्यालय भी हो जिसमें अत्यन्त उच्च स्तर के कार्य बहुत सज्जी तरह में करने हों।

उनके सुझाव व मार्ग-दर्शन में है। जब वे ऐसा करने में असफल रहती है तो सामग्र्य होने की बजाय अधिक हानिग्रह होती है। स्कूल में बाहरंग द्वारा होरेस पढ़ने का परिणाम यह निकला कि उसने फिर कभी होरेस को पढ़ना ही नहीं चाहा। यह भी संभव है कि इस तरह के धीरे-धीरे अनुभव भी देखने में आए हों। दूसरी तरफ अच्छी शिक्षा निरन्तर अध्ययन जारी रखने की इच्छा जागृत करती है। जिनके पास पर्याप्त साधन और साधन हैं वे यह काम बिना किसी कठिनाई के कर सकते हैं परन्तु जिनके पास साधन और साधनों की कमी है उन्हें प्रायोगिक शिक्षा के समान्य हो जाने पर एक निरिपत-नाम एक अध्ययन व मार्ग-दर्शन की आवश्यकता रहती है। इसकी विराम आवश्यकता एक पड़ती है जब उन्हें अपनी शिक्षा को समय से पूर्व ही बीच में छोड़ना पड़ता है अथवा यह खोप पूर्ण होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति विभिन्न साधनों के स्कूलों निरवधि-विद्यार्थी-विस्तार भाषणों कर्मचारियों के संसाधक संघों अध्ययन मण्डलों तथा होम युनिवर्सिटी साइकरी बैंड पुस्तकालयों से प्राप्त होने वाली सरल पुस्तकों आदि अन्य साधनों से की जानी चाहिए।

शिक्षा के बारे में एक अन्य महत्वपूर्ण विचार भी ध्यान में रखना चाहिए। हम शिक्षा को एक अन्वेषण-मार्गिक के विकास समान में अपने उपयुक्त स्थान को देना चाहते हैं और अपने कर्तव्यों की पूर्ति का उपकरण मानते हैं। इस तरह की विचारियों के महत्त्व को प्रतिरक्षित किया जा सकता है। साधक प्रत्याभूतिक पाठक अथवा ही यह सोचें कि 'प्लेटो के रिपब्लिक' में इसका प्रतिरक्षित पूर्ण वर्णन हुआ है। मुद्रण को मातृकीय प्रदर्शन ने विच्छन्न बनाया है। उनका कहना है कि इस तरह के प्रदर्शन व्यक्ति को विभिन्न पाठों के रूप में काम करने की शक्ति प्राप्त है जबकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने एक विशेष कार्य को पूरा करना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कभी-कभी हमें इस बात पर इकट्ठा पड़ता है। पेटे ने कहा है जो मनुष्य अपने-आपको किसी नाम में निपुण बनाना चाहता है उसे अपने आपको सीमित बनाना सीखना चाहिए। संभवतः यह बात धीरे-धीरे वास्तविकता के लिए अज्ञानी के रूप में कही गई हो और शायद यही स्वभावतः प्लेटो की पेटे जैसे बहुत-सी प्रतिमावासी व्यक्तियों के मन में उदित हुई हो। परन्तु बहुत-से लोग विस्तार की अथवा साधन के समय भूल कर सकते हैं। प्रारम्भ करने की आवश्यकता ही व्यक्ति का अधिक संयमित होने से रोकती है। इसने प्रतिरक्षित यह भी आवश्यक है कि नागरिक एक-दूसरे को समझें वे एक-दूसरे के कार्य की सराहना करें और एक-दूसरे की कठिनाईयों के समय सहानुभूति प्रदर्शित करें। प्रथम सामाजिक समागम के अनेक रूपों के प्रतिरक्षित विभिन्न प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता अन्तर्गत में मातृकीय प्रदर्शन का भी एक उचित स्थान है। अन्तर्गत में अनेक अधिक

घपने विभिन्न पहलुओं में सामुदायिक जीवन में घेड़ नागरिकता की प्रतिवृत्ति रखनी महत्वपूर्ण है कि इसे पूर्णतः व्यक्तिगत प्रयास पर नहीं छोड़ा जा सकता। इसके लिए एक सुव्यवस्थित संगठन की उ राय और शिक्षा आवश्यकता होती है और राज्य का कर्तव्य है वह इस का प्रबन्ध करे। दूसरी ओर इसका प्रबन्ध विशेष क्षेत्रों की आवश्यकता और विशेष व्यक्तियों के सम्मान के अनुसार होना चाहिए। परन्तु यह धर्मोप नही कि यह पूरी तरह किसी केंद्रीय नियन्त्रण में हो। मुख्य रूप से राज्य के यही कर्तव्य है कि वह शिक्षा के पूर्ण उपभोग के सुव्यवहार प्रदान करे। इसके लिए उपयुक्त शिक्षकों को नियुक्त करना निस्सन्देह महत्व का कार्य है। और जब उपयुक्त व्यक्ति मिल जाएँ तो यह कम महत्वपूर्ण नहीं कि उन्हें घपने कार्य के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाए। एक व्यक्ति एक विशेष विचार और एक कवि की तरह प्रशिक्षित शिक्षा-शास्त्री भी बन सकता है। विचारकार बनना कमाकार की तरह वह कभी-कभी सामोचना का कार्य भी कर सकता है और इसके लिए राज्य द्वारा पूर्ण सुविधा दी जानी चाहिए। परन्तु इन सबका विवरण हम राज्य की प्रकृति और उसके कार्य-व्यापार का वर्णन करने के उपरान्त करें तो और भी अच्छा रहेगा।

मनोरंजन का साधन खेल-कूद ही समझे जाते हैं। यद्यपि वे कभी-कभी इतने कठिन और धमसाध्य होते हैं जितने कोई भी धर्म्य धमसाध्य कार्य। वे कई बार उष्ण वर्षों वाली के लिए अत्यन्त रूप में उष्ण सामाजिक स्थिति के धोखे भी हो सकते हैं। धम को इस व्यापक धर्म में लेकर हम उसके नई मोड़ों के बारे में विचार करेंगे जो हमारे लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

(१) कुछ धम हमारी पूर्ववर्णित वर्षी धर्मवा धार्मिक धारण्यकताओं की पूर्ति करते हैं और कुछ धम्य प्रकार के धम हमारी पाश्चिमी प्रवृत्ति धर्मवा शुद्ध मानव जीवन-सम्बन्धी धारण्यकताओं की पूर्ति करते हैं। परन्तु स्पष्टतः हम इस भेद को बहुत धार्मिक सूक्ष्म रूप में नहीं रख सकते। सफ़ाई के काम में सजा हुआ धमिक हमारी शुद्ध धार्मिक धारण्यकताओं की पूर्ति करता है जबकि वह हमारे निवास के लिए एक भ्रँपड़ी के निर्माण में सहायता देता है। परन्तु वही धमिक जब एक कमाकार के धर्मवा शुद्ध बच्चों के काम में जाने वाले उपकरण बनाता है धर्मवा किसी उपन्यास लिखने वाले या दर्शन-सम्बन्धी काम करने वाले लेखक के लिए मेज बनाता है तो वह हमारी उन धार्मिक धारण्यकताओं की पूर्ति नहीं करता। फिर भी इस वर्गीकरण का धर्मवा एक महत्त्व हो सकता है। सामान्यतः धार्मिक धारण्यकताओं की पूर्ति करने वाले कुछ धर्मों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे प्रभावशाली उनसे ही सम्बन्धित हैं धर्मवा प्रभाव रूप से भिन्न प्रकार के होते हैं।

(२) कुछ कार्य धम करने वाले लोगों की इच्छा पर धारण्यित होते हैं। धम्य प्रकार के कार्य बनाव (जैसे वाद्यतंत्र में) धर्मवा धार्मिक धारण्यकताओं के बनाव धर्मवा सामाजिक धारण्यकताओं या परम्पराओं के कारण किये जाते हैं। यहाँ पर यह भेद बहुत स्पष्ट नहीं है। जब एक कमाकार दर्शन की मायना से धर्मवा धार्मिकमिथ्यमित या लौकिक के धारण्य को साकारण्य देने के लिए धर्मवा किसी नैतिक या धार्मिक विचार की धर्मिकमित के लिए एक धर्म का निर्माण करता है तो उसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक धर्म के कार्य के प्रकार को चुनता है। दूसरी धोर जब वही कमाकार धर्मवा धार्मिकता के निमित्त कोई नाम करता है धर्मवा धर्मिक धारण्य के विशेष धारण्य पर कार्य करता है तो वह धर्म के काम की नई बातों के सम्बन्ध में कुछ स्वतन्त्र होता है परन्तु उसे दूसरों की धार्मिक धर्मवा धारण्यिक धारण्यकताओं को ध्यान में रख धर्मिक करना होता है। धम्य कई धर्मों में भी इस धर्म के धर्म किये जा सकते हैं। ऐसे बहुत धर्म कार्य होते हैं जिन्हें धर्मिक स्वतन्त्र चुनावों पर धारण्यित बताया जा सकता है। यहाँ तक कि जब वे साधारणतः स्वतन्त्र नहे जाते हैं परन्तु उनमें भी कुछ प्रतिरोधी धर्म विद्यमान रहते हैं।

(१) कुछ कम धराशुद्धनीय धोर बका देने वाले होते हैं। इसके विपरीत कुछ कार्य धान्यप्रद धोर स्वास्थ्यबर्धक होते हैं। इस प्रकार उन्हें हम कुछ धरि धोर कुछ नामि मूर्षों वाले कार्य के रूप में भी धरिधरन कर सकते हैं। यह धन्तर केवल कार्य की प्रकृति में धरारिधर नहीं होता परन्तु कार्य कर्ता की भावना पर धरारिधर होता है। सामान्यतः स्वतन्त्रतापूर्वक क्रिया जाने वाला धन धान्यप्रद होता है। बाहे बहु कठिन ही नहीं न हो धोर जो बबाव के धन्तरन क्रिया जाता है बहु धराशुद्धनीय होता है। बाहे बहु सरल ही नहीं न हो। कुछ काम कोई धरिधर लेन-लेन में प्रसन्नता से कर सकते हैं परन्तु धरि उसी कार्य को बबाव द्वारा करवाना जाए तो वही धरि कष्टकर प्रतीत होगा। धरिधर सभी कार्य धरिधरगत भावना, कार्य के समय स्वास्थ्य की स्थिति धरिधर धरिधरों धोर धरिधर धरिधरियों पर धरारिधर होते हैं। इस पर भी यह कहा जा सकता है कि कुछ कार्य सामान्यतः कष्टकर होते हैं धोर वे किसी समय के धरिधर के रूप में होते हैं जब कि धरिधर कार्य बहुत कुछ धरिधर में स्वय ही सध्य होते हैं।

(५) कुछ काम पूरुतया धारीक-धन से सम्बन्धित होते हैं धोर कुछ में धरिधर धरिधर कर्ता-धरिधर की धरिधर होती है।

(६) कुछ धन धरिधर सामाजिक दृष्टिकोण से उपयोगी होते हैं, धरिधर भी उन्को मूलतः इस धरिधर नहीं क्रिया जाता कि उन्के पीछे कोई धरिधर नत प्रसन्नता धरिधर कोई धरिधरगत दृष्टि धरिधर है। कुछ धन कर्ताधर की भावना धरिधर समाज-सेवा के रूप में क्रिये जाते हैं। धरिधर धरिधर, स्पष्ट धरिधर करना बहु कठिन है। कभी-कभी एक धरिधर प्रकार का कार्य समाज-सेवा के धरिधरत क्रिया जाता है परन्तु इसका धरिधरधर धरिधरगत-धरिधर धरिधर पूरुतः कर को धरिधर पर धरारिधर होता है। धरिधर पर उन्का स्वूल भेद भी क्रिया जा सकता है धरिधर कुछ मूर्ष भी हा सकता है।

इस तरह धरिधर वे भेद धरिधर स्पष्ट नहीं हैं धरिधर भी बहु कुछ महत्त्वपूर्ण धरिधर उपस्थित करने का काम करते हैं। यह कहा जा सकता है कि सीमित धरिधर में धरिधर सामान्यतः धरिधर के उन् प्रयासों के लिए प्रदुषत होता है जो धरिधर धरिधर प्राथमिक रूप से (१) धरिधर धरिधरधरों की धरिधर के लिए क्रिये जाते हैं (२) कुछ किसी सीमा तक धरिधरता या धरिधरों के धरिधरत क्रिये जाते हैं (३) कुछ धराशुद्धनीय या धरिधर देने वाले होते हैं () कुछ धरिधरत धरिधर धारीक-धन-धरिधर धरिधर धरिधर धरिधर या किसी धरिधर प्रकार के धरिधर-धरिधर की धरिधरधरता नहीं होती। धरिधर को धरिधर धरिधर धरिधरता गया है बहु धरिधर के धन धरिधरों के लिए कठिनाई से हा प्रदुषत हो सकता है, धरिधर सीमित धरिधर में धरिधर कहा जाता है।

कार्य की गभीरता से गया उल्टाह और ताजगी घाटी है और उसकी शक्तिवर्ति हा जाती है। यह आवश्यक है कि जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के समय जब किसी वस्तु की बहुत आवश्यक बरकर होती है तो उसने संभरण के लिए कोई व्यक्ति मिलना ही चाहिए। यह बात चिकित्सा-परिचर्या धारि पर सबसे अधिक लागू होती है परन्तु भोजन और पानी कुछ कम मात्रा में नपई गरमी और विषम के लिए भी लागू हो सकती है। जो वस्तुएँ नितात्म आवश्यक नहीं उनके बितरक भी प्रासानी से खोज जा सकते हैं। अतः संस्था में यह माना जा सकता है कि कम-स-कम श्रीयोगिक संसार में सामान्यतः यह ध्यावश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार का ही कार्य करे।^१ यद्यपि श्रीयोगिक कार्यों के प्रतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता फिर भी यह स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति विभिन्न कार्यों के आकषण में न पड़कर एकाग्रता पूर्वक एक ही कार्य करता है तो वह उसे बहुत अच्छे ढंग से करेगा। संभवतः एकाग्रता के प्रभाव में ही गेटे के साहित्यिक कार्य में बहुत बाधा पहुँची।

यह निर्धारण है कि कार्य के विभिन्न प्रकार एक दूसरे में घुसते हैं। कुछ घंटों में तो यह बात काम के सभी प्रकारों के विषय में सत्य है। विशेष

तौर पर प्राणिक-क्षेत्र में तो यह नियम आवश्यक

१ सहकारिता कलाओं की व्यापकता और अनिश्चयता के कारण लागू होता है। ये आवश्यकताएँ मनुष्य की शारीरिक-

प्रवृत्ति सम्बन्धी होती हैं अतः पर्याप्त रूप से उनकी पूर्ति आवश्यक ही है। प्रत्येक प्राणी को अपना एक उचित काम मिल जाना ही आवश्यक नहीं यद्यपि उन सब कार्यों का पर्याप्त ठीक ढंग से क्रिया जाना भी अत्यावश्यक है। और इसके साथ-साथ के सभी कार्य ऐसे सहयोग के साथ करें जिससे जीवन और स्वास्थ्य की रक्षा हो सके। इसके लिए संगठन-वास्तुय और क्रीडा की आवश्यकता होती है। यद्यपि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयासों को साधारण-मम के रूप में वर्णन नहीं किया जा सकता फिर भी अन्य कार्यों की तरह ये अत्यावश्यक होत हैं। इस सम्बन्ध में तथा माँग और संभरण की कठिन-समस्याओं के बारे में विचार करना अर्बदास्त्रियों का काम है। इस विषय में धर्म-विमार्जन के महत्त्व को देखते हुए हम संस्था में इतना ही कह सकते हैं।

प्राणिक संघ का धर्म मृजनात्मक नहीं होता। वस्तुतः इसमें भी सत्य है कि

२ इस विषय के सामान्य पहलू पर इससे अधिक व्याख्या डॉ. ले. की इति परिचय अधीन में मिलेगी।

क्या हम मानव के धम के किसी रूप को उचित रूप में देना कह भी सकते हैं ?

कवि और कलाकारों को कभी-कभी मृजनात्मक कहा

४ धम के सम्बन्धित जाता है। यह निरसम्भेह सत्य है कि वे अपनी इन भूमि और पूँजी गतिविधियों द्वारा जो मोनदान करते हैं वह उन भौतिक सामग्रियों से अधिक महत्वपूर्ण होता है

जिनसे वे काम लेते हैं। फिर यह भी सत्य है कि उन्हें कुछ भौतिक सामग्रियों की सहायता सेनी पड़ती है जो कुछ धंधों में उनके प्रयासों में सहायता देती है और कुछ धंधों में बाधा भी पहुँचाती है। यद्यपि यह कहना अतिशयोक्ति होगी जसा कई बार हुआ भी है कि एक प्रतिभा एक संगमरमर के टुकड़े में तैयार करने से पूर्व ही विद्यमान रहती है और फिर संगमरमर के उस टुकड़े को एक विशेष रूप से दिया जाता है। परन्तु इस तरह के उदाहरणों का यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। कुछ औद्योगिक-धम में काम करने वाला जिस सामग्री से काम करता है उसे स्पष्टतः कलात्मक कार्यों की अपेक्षा कम विकसित करना पड़ता है। प्रायः धम उस सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है जैसे किसी जहाज से नगर तक पानी पहुँचाना। एक किमान बीज बोता है परन्तु वह अपने प्रयास से उसमें फल नहीं लगा सकता पर उसके प्रयास के बिना वह बीज गूट हो जाएगा और मनुष्य के उपयोग का भी नहीं रहेगा। और धम बिना किसी की सहायता के भी नहीं किया जा सकता। इस प्रकार सभी औद्योगिक-कार्यों में थोड़ा-बहुत मशीनों या थोड़े-बहुत धम पशु काम में लाए जाते हैं।

इस प्रकार धार्मिक वस्तुओं के उत्पादन में धम के अतिरिक्त दो धम्य कारक और होते हैं। उन्हें भूमि और पूँजी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पूँजी के लिए प्रयुक्त 'कैपिटल' शब्द की उत्पत्ति 'कैपिटल' से हुई है जिसका अर्थ पीढ़ों आदि की संख्या से है जो प्राचीन काल में धर्म में रने जाते थे। इस तरह भूमि और पूँजी दोनों ही शब्द मूलतः भेती-सम्बन्धी धम से सम्बन्धित हैं। और जहाँ तक आधुनिक उद्योग से हमका सम्बन्ध है इनका अर्थ बड़ा भ्रामक है। यह भी सत्य है कि हम कभी सामग्री (यद्यपि वह सुरिक्षम से ही कभी कभी होती है) और उन उपकरणों का धनर समझ सकते हैं जिनसे वह प्रयोग में आती है। ये उपकरण भी पहले किये गए धम के परिणाम होते हैं जिसे विनाय सामग्री से मपाया गया था। यों तो थोड़े-पड़ जाते हैं या में किए जाते हैं, उनसे नयी वस्तु पैदा की जाती है उन्हें पाला जाता है अपना मिश्रण जाता है और प्रसिद्ध होता है। इस प्रकार ये हम तरह के काम के लिए भी मनुष्य का बहुत-सा धम मरता है। यह भी स्पष्ट है कि उपकरणों तथा मशीनों के उत्पादन में भी बरनी से पेशाओं को निकालने के रूप में भी बहुत मेहनत करनी

पड़ती है। अतः सामान्यतः यह कहा जाता है कि प्रायिक मात्र कच्ची सामग्री में समाये गए धम से उत्पन्न होते हैं, और एक समय में लगाया गया धम एक दूसरे बड़े धम पर आधारित होता है जिसे कभी मूलकाम में किया गया था। यह स्पष्ट है कि यहाँ धम को व्यापक अर्थों में समझा जाना चाहिए। उसमें वे सभी बातें या चीजें शामिल हो किटी प्राबल्यक वस्तु को प्रस्तुत करने से पूर्व उसके प्राबल्यकता विषयक विचार से लेकर उसकी प्राप्ति के लिए प्राबल्यक उपकरणों के प्राविष्टकार और निर्माण में उसकी उत्पादन की विधियों के संबन्धन उनके प्रयोग के प्रदग्ध और उत्पादन को प्राबल्यक स्थान पर पहुँचाने में प्रयुक्त किए जाते हैं।

यह ध्यान में रचना चाहिए कि यह भेद ककारत्मक कामों पर भी लागू होता है। उदाहरणस्वरूप कवि धपने चारों तरफ के संसार में मुनी और देवी हुई कच्ची-सामग्री को काम में लाता है। वह धपने पूर्व-कविओं के धम और किन्ती विषय के बर्णन करने के धम का भी श्रुती होता है। यह विशेषतः बृहत् ककारत्मक कृतिओं के लिए और भी अधिक प्राबल्यक है। उदाहरण के लिए पीक नाट्यकारों ने बहुत ही कम लकीन चीजें खोजीं। उन्होंने उसी सामग्री का प्रयोग किया जो पुरानी प्रथाओं द्वारा एक विशेष रूप में चुकी थी और वह प्रयोग भी बड़ ढंग से हुआ है। फिर भी उनकी रचनाओं में यह विषयता है कि उन्होंने उनको धपने एक विशेष-बंध से प्रस्तुत किया। इसी तरह यह एक साधारण सत्य है कि श्वेसपीयर ने जिस सामग्री और सभी का प्रयोग किया वास्तव में वह स्वयं उसके द्वारा प्राविष्टक नहीं थी। इसी तरह यह भी सत्य है कि बजिस और मिस्टन जैसे लेखकों के कार्य भी यह-यह पर धपने पूर्व लेखकों के कार्यों पर आधारित हैं। उनकी पृष्ठभूमि कुछ अर्थों में विरासत में मिली प्रथाओं द्वारा निर्मित है और उनकी पूर्वी बृचरों द्वारा प्रयुक्त बर्णन करने की विधियाँ हैं। इस प्रकार से बलिष्ठ में तीनों कारक जैसे भूमि, पूर्वी और धम उत्पादन के सभी रूपों में प्राप्त किये जा सकते हैं। परन्तु सबसे अधिक सरस और स्पष्ट रूप में तो मूलतः प्रायिक और भौतिक रूपों में ही प्राप्त किये जाते हैं।

यदि उत्पादन के विविध कारकों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग में लाया है तो यह स्पष्ट है कि कुछ अर्थों में उसका नियन्त्रण प्रयोग करने वाले के हाथ में होना चाहिए। इस नियन्त्रण की व्यवस्था विभिन्न

३. सम्पत्ति

मामलों में स्वभावतः पुषक-पुषक होगी। कच्ची सामग्री प्राबल्यक काल करने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के हाथ में होनी चाहिए। एक बारतु-शिखी के पास संयमरमर का एक टुकड़ा और एक विषकार के विषयक व्यवस्था ही उसके धपने नियन्त्रण में होने चाहिए।

यहाँ तक कि एक कृषि के पास काँचबंद भवना इसी तरह की अन्य सामग्रियाँ होनी चाहिए यद्यपि प्रकृति के हृद्य और धर्मियाँ धाबि सामग्री उसके लिए स्वतः सुलभ होती है। इसी तरह किसान का भी अपनी भूमि पर अधिकार होना चाहिए। लकड़ी या धातु का काम करने वाले भी अपने पराबों के प्रयोग में स्वतन्त्र होने चाहिए। इसी तरह अन्य कामगार भी अपने अपने क्षेत्र में स्वाधीन होने चाहिए। परन्तु इनका स्वामित्व किस हद तक हो यह एक कठिन प्रश्न है। और फिर पूँजी के नियन्त्रण का प्रश्न सामान्यतः बहुत अधिक अटिक्त है। जैसे पूँजी को काम में लाने का यह धर्म नहीं कि उसे समाप्त कर बिना जाए यद्यपि उसे एक जगह स्वामित्व लेकर रखने की भी आवश्यकता नहीं जोड़े धाबि पधुओं का सरमता से हस्तांतरण किया जा सकता है। यह स्पष्टतः सुविधाजनक है कि काम में जाए जाने वाले छोटे-छोटे उपकरण उनके काम करने वाले व्यक्ति के अधिकार में हों। दूसरी तरफ बड़ी-बड़ी मशीनें कुछ तुलनात्मक रूप में स्वामी अधिकारियों के नियन्त्रण में रखी जाएँ ताकि उन मशीनों को सुरक्षित रखा जा सके। फिर, एक कलाकार की प्रदान पूँजी उसकी स्मृति और उसके सम्मान होते हैं, जिन्हें सरमता से पुनः बूझों को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। अन्ततः धर्म का नियन्त्रण उद्यम करने वाले लोगों के हाथ में होना चाहिए यद्यपि धर्म लोगों के हाथ में यद्यपि उसमें पूर्ण वास्तव से लेकर अनेक बर्ष हो सकते हैं जैसे पूर्ण वास्तव और अन्त-धर्म से लेकर बाजार की माँग के अनुसार नियमित काम करने और कार्यकर्ता द्वारा अपने काम को अपनी इच्छा से चुनकर करने तक की विभिन्न स्थितियाँ। प्रथम और दूसरे प्रकार के काम सम्य-संसार से व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गए हैं और अन्तिम प्रकार के कार्य अपने पूर्ण धर्मों में विरत हैं। अधिकतर कार्य या तो वेतन के रूप में यद्यपि उत्पादन के विक्रम के रूप में किए जाते हैं। यहाँ तक कि यह यद्यपि सम्मान के लिए किये गए कार्य भी प्राथिक रूपसे दूसरों के धर्म द्वारा निर्धारित होते हैं।

सामान्यतः यह माना जा सकता है कि किसी वस्तु पर पूर्ण स्वामित्व प्रदान स्वरूप ही होता है। यह वह कच्ची सामग्री जहाँ यद्यपि धर्म हो। उद्यम धर्म नागरिकों की सम्पत्ति पर नियन्त्रण का अधिकार रखता है। यद्यपि यह अपनी सीमाओं के अन्तर्गत धर्म देता या स्वामी होने या दावा करता है। फिर भी यह धर्म के किसी विधेय भाग और उसके कुछ विधेय पराबों पर व्यक्तिगत नियन्त्रण को स्वीकार करता है। इससे सम्बन्धित धर्म प्रदत्तों पर बाद में विचार करेंगे।^१

१. विशेषतः इसी तरह का धर्म प्रदान है।

व्यक्ति प्रबन्ध राष्ट्र जित घर्षों में मूल्यवान् पदार्थों को अपने नियन्त्रण में रखता है उन्हीं घर्षों में उन्हीं सम्पत्ति प्रबन्ध निर्बन्धता का निर्माण होता है।

बन को ऐसे नियन्त्रण के प्रतीक के रूप में और कुछ ५ बन और निर्बन्धता निश्चित घर्षों के घपीत व्यवहार के लिए स्वीकृत सिक्के के रूप में मूल्यांकित किया जाता है। इस तरह के नियन्त्रण को व्यवहार में लाने की शक्ति एक ऐसी प्रमुख परिस्थिति होती है जो शरीर और दिमाग की प्राकृतिक शक्तियों से पृथक् होती है। और जो किसी मनुष्य को घर्ष लोभों पर सेव्यता प्रदान करती है और वह समान क सरस्वतों के हित को पूर्ण घर्षों में एक सामान्य हित बनने से रोकती है। इस प्रकार का नियन्त्रण जिस सीमा तक व्यक्तियों को सीपा जाए यही सामाजिक-वर्धन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण सम्पत्ति है। जेटो ने इस पर बल दिया है कि किसी सुसंयुक्त समाज क शासक का यह कर्तव्य है कि उसके राज्य में किसी के पास अत्यधिक धन न हो और कोई अत्यधिक निर्बन्ध भी न हो। परन्तु यह निश्चय करना सरल नहीं कि कितने धन को अधिक कहा जाएगा प्रबन्ध उसे वहाँ से कैसे हटाया जाएगा। जब तक इस पर हमने जितना प्रकाश डाला है उसे घाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए या और इस विषय की कुछ दूसरी बातों के बारे में यहाँ जानकारी करनी चाहिए।

धार्मिक द्रव्य कई बार एक ही समय में एक ही व्यक्ति के स्वामित्व में होते हैं और जब ऐसे द्रव्य का संभरण सीमित होता है तो एक का धार्मिक धर्मों के धर्मात्मा का दोषक होता है। यह बात कुछ

७ प्रतियोगिता

हर एक ऐसे द्रव्य के बारे में भी सही है जो वास्तव में धार्मिक नहीं होत। पुस्तकालयों में रखी दुर्लभ पुस्तकें सभी लोगों की पहुँच में नहीं होती। सुन्दर वृक्षों का धामन्ध एक समय में कुछ सीमित लोग ही उठा सकते हैं और कुछ लोग तो वहाँ तक कठिनाई से ही पहुँच पाते हैं। फिर दूसरी कठिनाई प्रायः धार्मिक धार्मिकताओं के बन्धन को पड़ती है। यह सत्य है कि कुछ-मानवीय बस्तुएँ सीधे ही मुलभ बनाई जा सकती हैं परन्तु कुछ धार्मिक बस्तुओं से विशेषतः जब वे जीवन के लिए धार्मिक होती हैं और लोगों द्वारा जब उनकी माँग अधिक होती है तो कुछ लोग उनसे दूसरों को मुक्तवान पहुँचा सकते हैं। फिर ऐसे पदार्थ व्यवहार में एक स्वामी संघर्ष का कारण भी बन पाते हैं। कुछ पदार्थों के लिए प्रतियोगिता होने लगती है। परन्तु इस सम्बन्ध में यन्भीर संघर्ष तब उठता है जब स्वामित्व की कठिनाईयों क बन्धन उनके मूल्यांकन क सम्बन्ध में मतभेद पैदा होता है। उदाहरणस्वरूप जब लोग धर्म क सम्बन्ध में संघर्ष करते हैं तो वह इसलिए कि वे दूसरों के धर्म का प्रौचित्य मानने की प्रयत्ना प्रयत्ना धर्म दूसरों पर प्रोपना

चाहते हैं। यही बात व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए भी लागू होती है। राष्ट्रों और व्यक्तियों के बीच में स्वामित्व के लिए संघर्ष होता है वह हमेशा मूलतः आर्थिक इच्छों को लेकर होता है। ऐसा संघर्ष वास्तविक मुद्दे या प्रति-योगिता का रूप धारण कर लेता है तथा निबंधित प्रथवा अनिबंधित रूप ले-बस सकता है और वह सामान्य हित में सम्भार बाधक बनता है। मूलतः वह स्वतंत्रता के लिए संघर्ष होता है परन्तु उससे मानव-जीवन के पशुओं के स्तर तक गिर जाने का भय रहता है। पर इस समस्या का समाधान यहाँ संतोषजनक रूप से नहीं दिया जा सकता।

धौद्योगिक जीवन की प्रतियोगिता सम्बन्धी कठिनाइयों से प्रभावित ऐसे विचारों का प्रादुर्भाव होता है जो 'व्यष्टिवाद' और 'समाजवाद' जैसे शब्दों से सम्बन्धित होते हैं। एक ओर आर्थिक जीवन के व्यष्टिवाद और प्रतियोगिता का अर्थ है वह व्यक्तिगत मूल्य समाजवाद और संभरण की पारस्परिक विमाओं से उत्पन्न होती है इसका मतलब यह होता है कि आर्थिक मूल्य ठीक तरह से बाँटे जाएँ और आर्थिक इच्छा का ठीक तरह से वितरण हो। दूसरी तरफ, वह यह प्रवृत्ति करती है कि यह तरीका सही नहीं है और नाकाम है। इससे सम्भार प्रभाव उत्पन्न होगा है। अतः यह वांछनीय हो जाता है कि प्रतियोगिता के तरीकों के लिए केन्द्रीय नियन्त्रण का कोई एक रूप स्थापित किया जाए। इन तरह से उत्पन्न समस्याएँ व्यापक और कठिन होती हैं। उनमें से कुछ के बारे में बाद में विचार करेंगे। इसी बीच कुछ सामान्य विचार प्रस्तुत कर देना उचित होगा।

(१) यह आवश्यक है कि विद्युत् धौद्योगिक समस्त्राया को सामान्य सम-स्त्राओं से पृथक रखकर देखा जाए। 'व्यष्टिवाद' और 'समाजवाद' राष्ट्र-सामान्यता धौद्योगिक-संगठन की विधियों के प्रसंग में प्रयुक्त किये जाते हैं परन्तु कभी-कभी वे समाज के सामान्य सिद्धांतों के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं।^१ इस व्यापक अर्थ में व्यष्टिवाद का अर्थ उन विचारधारा से लिया जाता है जिसके अनुसार समाज व्यक्तियों के एक समूह से बना है जब कि समाज-वाद का अर्थ एक आन्तरिक-व्ययन (एक अर्थीय-एकता या एन सामान्य-इच्छा प्रथवा एन सामान्य-हित) से लिया जाता है जिससे व्यक्तियों द्वारा समाज का निर्माण होता है। इस सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं कि धौद्योगिक प्रथवा साम्यवादी प्रवृत्तियों का प्रयोग आर्थिक उचित है। परन्तु हम यह भी ध्यान में रखना चाहिए जिससे समझने में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो सम्भ

राज्यवाद राज्य की धीर में ध्यान देना चाहिए, जिसका धार्मिक सिद्धान्त संकीर्ण सम्बन्ध नहीं है। अतः सामाजिक-संघटन विषयक इस अवधारणा को हमें औद्योगिक-संघटन में प्रयुक्त की जाने वाली अनेक अवधारणाओं से सम्बन्धित समाजवाद राज्य से अलग करके देखना चाहिए। जब 'समाजवाद का प्रयोग राज्य के संघटन के सम्बन्ध में होता है तो उसका विरोधी शब्द 'स्पष्टिवादा' की अवस्था पराजयतावाद (केन्द्रीय नियंत्रण का अभाव) है। पराजयतावादी लोग सामान्य सम्प्रदायवादी होते हैं। वे समाज के प्राथमिक संघटन को मान्यता देने में धीर सोचते हैं कि वह स्वभावतः प्राकृतिक है और उसके लिए किसी बाह्य दखल (राज्य) की आवश्यकता नहीं। वास्तव में जो लोग अलग-आपको समाजवाद का पीछा बतलाते हैं वे पराजयतावाद का अर्थ अस्वीकार करते हैं परन्तु वे उद्योगों के लिए समाजवादी संघटन को उसके प्रारम्भिक-स्तर के रूप में आवश्यक समझते हैं।

(२) यह फिर आवश्यक हो जाता है कि हम विद्युत् उद्योग से सम्बन्धित समाजवादी संघटन के प्रकार और मानव-श्रम के संघटन-सम्बन्धी सामान्य प्रश्न में अन्तर करके देखें। जीवन के औद्योगिक पहलु के अतिरिक्त मनुष्य के ऐसे बहुत कार्य होते हैं जिनके लिए एक केन्द्रीय संघटन की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणस्वरूप एक राज-व्यय राष्ट्रीय शिक्षा-व्यय राष्ट्रीय-मंच या पुस्तकालय अथवा राष्ट्रीय रंग-मंच आदि को समाजवादी स्वरूप के रूप में बलिष्ठ किया जा सकता है परन्तु इन संस्थाओं का शुभ-अशुभ धार्मिक नहीं होता। और उनका कुछ औद्योगिक समस्याओं से भी कुछ सम्बन्ध नहीं होता। वे भी स्वभावतः सार्वजनिक वस्तुओं से सम्बन्धित होती हैं और उन्हें सामान्यतः प्रयोग के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। यही बातें यद्यपि धार्मिक स्पष्ट रूप में तो नहीं फिर भी सार्वजनिक अस्पतालों निःशुल्क धोवण-वितरण वहाँ तक कि निःशुल्क कानूनी परामर्श वृत्तावस्था में पेंशन और विराम पत्रों के सहयोग के अनेक रूपों में भी देली जा सकती हैं। इनको भी कभी-कभी समाजवादी कहा जाता है। परन्तु ये निजी सम्पत्ति के वर्तमान जामू डग और औद्योगिक प्रतिस्पर्धी प्रकारों के समाज ही होती हैं। इनमें स कुछ में यदि यह ध्येय न हो तो वे बेकार ही होंगी। प्रतिरिपोसिता का अस्तित्व मानववाद के लिए असंगत नहीं है। जीवन-रक्षक मार्गों से देने का मतलब यह नहीं होता है कि समुद्र में हमाय अस्ति हो ही नहीं सकता है। परन्तु यह मानकर चलना पड़ता है कि हम उसका सामना करना है।

(३) यह ध्यान देने योग्य है कि जब समाजवाद राज्य का प्रयोग केवल मानव कुछ औद्योगिक-संघटन के लिए किया जाता है तो भी वह कुछ अस्पष्ट रह जाता है। उससे साम्यवाद से सम्बन्धित अर्थ भी लिया जा सकता है

धनवा कुछ समष्टिवाद का धर्म भी निकाला जा सकता है। साम्यवाद की धनधारण के अनुसार सारी सम्पत्ति का सामान्यीकरण होना चाहिए, धनवा भारत में सामान्यीकरण नहीं तो समान रूप से उसका वितरण होना चाहिए। धनवा धान्यव्यवस्थाओं के अनुसार या योग्यतानुसार वितरण होना चाहिए। समष्टिवाद में अनिश्चित यह नहीं पाता परन्तु वह उद्योग पर एक केन्द्रीय नियंत्रण चाहता है जिसका धर्म प्रमुख रूप से पूर्वी के किसी स्वामित्व के सम्मूह से है। इस प्रकार के नियंत्रण एक राज्य धनवा एक नगरपालिका के रूप में हो सकते हैं धनवा में धनिकार अधिक-संघ के सदस्यों की इच्छानुसार धार्मिक कार्यों से सम्बन्धित किसी भी सत्त्वा में नियोजित किये जा सकते हैं। धनिक संघवाद को हम उत्पादक-सहकारिता धनवा व्यापार-संघ के एक कृत्रिम रूप में समझ सकते हैं। समाजवाद के बारे में विचार करते समय यह ध्यान लेना आवश्यक होता कि सगठन के इन रूपों में किसके बारे में संकेत किया जा रहा है।

(४) ऐस संघटना की विधियों की व्यावहारिकता और बांछनीयता विषयक प्रश्न इतने व्यापक और जटिल हैं कि उनके विषय में बहूँ विचार करना उचित नहीं है। परन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है औद्योगिक कार्यों के कुछ प्रकार प्रायः कार्यों की अपेक्षा केन्द्रीय नियंत्रण को बहुत जल्दी स्वीकार करते हैं परन्तु इसमें उन्हे है कि सभी रूपों का संयोजन एक ही ढंग से बांछनीय हो सकता है। सड़कों पुर्ण और रेलगाड़ियों का निर्माण व प्रयोग पानी बँस और बिजली का वितरण गाँव और सहरों की योजना डाक और तार का संवहन सम्भवतः भूमि का बँटवारा भी। सब-के-सब व्यापक स्तर के कार्य हैं वे सम्पूर्ण जिसे धनवा सारे देश और कभी-कभी पलित विषय पर भी प्रभाव डालते हैं। इनकी व्यापकता से स्पष्ट है कि केन्द्रीय नियंत्रण विशेषतः इसी प्रकार के कार्यों के लिए उपयुक्त होता है। परन्तु बोड़ी मात्रा में प्रयुक्त होना वाली विभिन्न लोगों की धान्यव्यवस्थाओं और काम में धाने वाली वस्तुओं पर यह नियंत्रण लागू हो सकता है या नहीं यह सम्बन्धास्पद है। यहाँ तक कि भूमि के प्रयोग के विषय में भी सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व सामंशिक मित्र हाल है। यद्यपि हमारे पक्ष के सम्बन्ध में भी कुछ बृहत्तक पैदा किये जा सकते हैं। सामान्यतः जब किसी काम-विषय में कुछ लोगों की रुचि और स्वार्थ मजबूत होने हैं या किसी धार्मिकार के लिए आनुवंशिक व महत्त्व होना है तो उसका नियंत्रण सम्भवतः लोगों के हाथ में ही छोड़ दिया जाता है।

यहाँ हम उचित रूप में यही कह सकते हैं। स्पष्ट सम्बन्धता योग्यता उपर

बुरी समस्याओं के बारे में प्रागे विचार करेंगे ।

प्रायेक धारमी का एक विशेष स्थान और काम होता है । जैसे कि हम पूर्व-अध्याय में बता चुके हैं । उच्च विधि से बनने से जीवन-सम्बन्धी बहुरतों में विभक्तता नहीं पायी । यदि कोई एक प्रच्छा नाग-१ काम और प्रबकास रिफ बनना चाहता है तो उछ अपने व्यक्तिरव के विज्ञान और भागरिकता के सामान्य नियमों के पालन के लिए कुछ प्रबकास प्रबन्ध चाहिए । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि धम में भयाए जाने वाले समय की एक सीमा निर्धारित कर ही जानी चाहिए और यह कार्य उन कार्यों में से एक है जिन्हें केन्द्रीय नियन्त्रण से प्राप्त किया जा सकता है । जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते जाएँगे वैसे-वैसे यह विषय और अधिक स्पष्ट होता जाएगा ।

चतुर्थ अध्याय राज्य

राज्य का उचित धर्म क्या है यह निर्दिष्ट करना कोई सरल बात नहीं है। इस धर्म के साथ कभी-कभी राष्ट्र या सरकार जनता या देश धीरे-धीरे कभी-कभी कुछ धर्म शब्द भी मिला दिये जाते हैं। अतः यह

१. राज्य क्या है? प्रश्न खोजा कि प्रारम्भ में इस तरह के सम्बन्धित शब्दों की परिभाषा दे दी जाए। इस प्रकार के शब्द समाज समुदाय जनता देश अति राष्ट्रीयता राष्ट्र सरकार राज्य धीरे-धीरे सम्प्रदाय प्रादि हैं। यहाँ इन पर क्रमशः विचार करेंगे।

(१) समाज—समाज का धर्म व्यक्तियों के उस समूह से है जो किसी विषय उद्देश्य को लेकर एकत्रित हुआ है (इसमें अनिष्ट व्यक्तिगत-सम्पर्क की आवश्यकता नहीं है)। बाह-विचार प्रतियोगिता-समाज सहकारी-समाज बीजा निक-समाज प्रादि अनेकों समाज होते हैं पर एक राष्ट्र धर्मवा एक राज्य को भी समाज की श्रेणी में रखा जा सकता है। समाज एक सामान्य शब्द है जिसे व्यक्तियों में उपस्थित संबन्ध की अनेकों विभिन्न प्रणालियों के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

(२) समुदाय—समुदाय एक ऐसा समाज होता है जिसमें लोग एक प्रकार के अनिष्ट सम्पर्क में रहते हैं जैसे एक समाजवादी-समुदाय मोरेविद्यन लोगों का समुदाय प्रादि। प्राचीन पैनामोरियन लोग कुछ धर्मों में एक समुदाय बनाकर रहते थे और कुछ धर्म शार्चनिक-समूह जैसे एपिफूरियन लोग भी एक समुदाय का निर्माण करते हैं। एक समुदाय में अनिष्टता का रूप भिन्न भिन्न होता है। कोई भी समाज एक समुदाय कहला सकता है जबकि वह कुछ व्याप्यात्मिक मूल धर्मवा सामान्य-हित के लक्ष्य के द्वारा एक प्राण्टरिक-बन्धन में बँधा होता है। सम्पूर्ण मानव-जाति यदि तात्त्विक रूप से एक भावुरव का रूप धारण करके एक सामान्य-हित का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ती है तो उसे हम एक समुदाय के रूप में वर्णित कर सकते हैं।

(३) जनता—जनता ऐसे व्यक्तियों का एक समूह है जो आवश्यक रूप से

एक साथ न रहते हुए भी परम्परा प्रथा स्थायी एकता की बनाए रखते हैं। यद्यपि लोग एक साथ नहीं रहते रहे लेकिन वे कुछ बड़े परम्पराओं भाषा भाषिक भावना आनेकों ऐतिहासिक घटनाओं व स्मृतियों तथा सभों के द्वारा पूर्णतः सम्बद्ध रहे हैं। स्विस लोगों में विभिन्न जातियाँ हैं उनकी भाषा व धर्म में भेद है लेकिन फिर भी वे एक सामान्य भाव में बँधे हुए हैं। एक राष्ट्र बना बनता का निर्माण नहीं करता। जब टेलिंगर यह कहता है कि—

‘हम एक जनता हैं फिर भी

भुल गए हैं सभी लोग अपने धर्म सुन्दर करने’^२

तो यह इससे प्रकट करता है कि कुछ राष्ट्र जनता नहीं हैं।^३ जर्मनी में समकाल-संगठन का एक तत्व ही ऐसा रहा है जिसके कारण राजनीति धर्म और जाति में भिन्नता होने पर भी एक पितृभूमि का स्थायीभाव प्रसाधारण रूप से बूढ़ रहा है। कार्लाइल ने एक सच्ची मित्रता के लिए आवश्यक धर्म के रूप में यह कहा है^४ कि विचारों में भिन्नता व प्रतिरिक्त मतभेद नहीं होना चाहिए। यह बात जनता की एकता के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है। कभी-कभी कम संगठित जनता में भी कुछ एश समूह होने हैं जो बहुत बलिष्ठता से आपस में समन्वित होते हैं। प्राचीन ग्रीकवासी कुछ ऐसे ही लोग व जिनकी एक सामान्यभाषा साहित्य धर्म तथा ऐतिहासिक-संगठन का फिर भी एक्सवासी स्पार्टा-निवासियों से भिन्न थे। समान होठ हुए भी बहुत बड़ा अन्तर इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के लोगों में मिलता है और इसी प्रकार का अन्तर संभवतः उत्तरी और पश्चिमी जर्मनी में भी है। फिर, इसी धर्म को मानने वाले सभी लोगों का एक स्थायी भाव के कारण एक समाज बना हुआ है यद्यपि उन लोगों में बड़ी भिन्नताएँ हैं। इस मुहावरे में बहुत कुछ सत्य छिपा हुआ है कि पूर्व पूर्व ही है और पश्चिम पश्चिम। इसका धर्म यह है कि पूर्व में एक विचार के लोग रहते हैं और इसी तरह पश्चिम में और उनके विचारों की भिन्नता ही पूर्व और पश्चिम के बीच का अन्तर है। परन्तु संभवतः यह प्रमुख रूप से भारत और इंग्लैण्ड के अन्तर को दिखाने के लिए कहा गया है।^५

२ We are a people yet,

Though all men else their nobler dreams forget,

३ टेलिंगर का यह दावा नहीं ठीक सही है कि हम लोग विशेष प्रभावशालक ढंग में एक जनता हैं पर यह एक ऐसा धर्म है जिसका विशेषण नहीं नहीं किया जा सकता। हम लोग स्वयं एक ही जाति के लोग नहीं हैं परन्तु यह तत्व है कि हम लोगों के दूसरे लोगों की धर्मवा महत्वपूर्ण धर्म के समान जोड़े-जोड़े धर्मों को भूला देना सही है।

४ ‘सारक धर्म स्थिति भाग २, अध्याय ९।

५ विष्णुधन : अतीवरीन्द्र ; पृष्ठ ४०-६।

(४) देश—कोई देश प्राथमिक रूप से एक भौतिक एकता को व्यक्त करता है परन्तु सभी देशों की सीमाएँ उनकी भौतिक विशेषताओं के अनुसार कठिनाई से ही निर्धारित की जाती हैं। ग्रेट ब्रिटेन को स्पष्टतः एक देश कहा जाता है परन्तु इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड अलग-अलग देश मान जाते हैं क्योंकि लम्बी अवधि से वे दो पृथक् राष्ट्र रहे हैं। साराण में एक देश को किसी एक राष्ट्र या जाति द्वारा हुषा स्वान कहा जा सकता है परन्तु प्राचीन युगान् भी सामान्यतः एक देश के रूप में समझा जाता था यद्यपि उसमें बहुत-से राज्य थे। दूसरी तरफ़ धारमर्षद की ब्रिटेन में बनिष्ठ एकता थी फिर भी उन्हें एक देश के रूप में नहीं समझा जा सकता। परन्तु हम जापान के द्वीपों को प्रायः एक देश के रूप में गिनते हैं। इन उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि वह राष्ट्र कुछ अंश में भौतिकता तथा कुछ अंशों में राजनीति को लेकर प्रयुक्त होता है। परिणामस्वरूप यह कुछ धस्यष्ट भी है। यह नाम 'राष्ट्र' का समानार्थक भी समझा जाता है। देश बलिक की भाषणा में देश की भौतिक विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं और वे बड़े सुवम रूप से उसमें सम्बन्ध रहती हैं। इसमें लोगों के चरित उनका इतिहास उनकी प्रथाएँ, परम्पराएँ तथा उनकी संस्थाएँ प्रादि भी सम्मिलित रहती हैं।

(५) जाति—एक मनुष्य दूसरे मनुष्यों से अपने शारीरिक-मूल स्वभाव विचार अनुभूति और धर्मार्थों की विन्ता के कारण पृथक् बिसाई देता है। एक लीशे और एक व्यूटन में स्पष्ट भिन्नताएँ होती हैं अतः उन्हें पृथक्-पृथक् रूप में छाफ पहचाना जा सकता है। यह कहना अति कठिन है कि इस तरह की स्पष्ट भिन्नताओं वाले लोग भी एक ही तरह की जनता का निर्माण करने के लिए विचारों में पर्याप्त समानता ला सकें। परन्तु यह भी कहना कठिन है कि

१. बिट के प्रति एक सम्बोधन के रूप में "देता देता। मैं अपने देश को जैसे छोड़ सकता हूँ।" इसी तरह "भूमि को भी प्रयुक्त किया गया है जिसके मैं सब बातें बारीक से सिखा दे।"

२. इन सम्बन्ध में टैलमवीर के प्रति उद्धरण बहुत दिए जा सकते हैं—

This happy breed of men, this little world,
This precious stone set in the silver sea,
This blessed plot, this earth, this realm, this England
This land of such dear souls this dear dear land
Dear for her reputation through the world.

इसी तरह लॉर्ड तथा वाइड विरजिन के अमेरिका के प्रति मनोरम विचारों के ताव सुचना कीजिए।

३. विविध भाषा में अमेरिका और वाइड को "अमेरिकन कॉन्स-वेन्स" मिले।

ऐसी निम्नताएँ बिसफुल रखावट ही रहानी । उदाहरणस्वरूप महृषी भोग बिन देशों में रहते हैं । उन देशों के लोगों से अपनी निम्न जाति के कारण ही नहीं परन्तु बड़ राष्ट्रीय परम्पराओं के कारण भी वृक्ष विप्लवाई बेटे हैं फिर भी वे भोग बिन लोगों में रहते हैं । उनके साथ अपनी अनुकूल परिस्थिति में पुन मिन्न जाते हैं । जर्मनी में रहने वाले युसामों के विषय में कहा जाता है कि वे जर्मनी के लोगों की अपेक्षा अधिक जर्मनीवासी हैं' और इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण दिए जा सकते हैं ।

(१) राष्ट्रीयता—राष्ट्रीयता उन लोगों का एक समूह है जिसका संबंध एक ही देश में रहना प्रथम सामान्य स्थायी भाव के कारण आपस में सम्बन्ध होना प्राथमिक नहीं परन्तु उनका एक-दूसरे के साथ जाति भावा संबंध किसी पूर्व साहचर्य द्वारा सम्बन्ध होना प्राथमिक है । समुदाय राष्ट्र-सभ अमेरिका में प्रायः सर्व जर्मनी कीम तथा प्राय दूसरे राष्ट्रों के लोग रहते हैं । बेल्जियम को अपनी विद्व भूमि जर्मनी के प्रति सहानुभूति रही है । तथापि वहाँ एक सम्बे निवास के बावजूद भी उन्हें एक ब्रिटिश राष्ट्रीयता वाले के रूप में गिना जाता है ।

(७) राष्ट्र—राष्ट्र लोगों का एक समूह है जिसमें भोग प्राथमिक रूप से नहीं फिर भी एक देश के रूप में निवास करते हैं और सामान्य कानून तथा परम्पराओं के द्वारा एक-दूसरे से बंधे रहते हैं । जर्मनी और समुदाय राष्ट्र अमेरिका के भोग से निम्न-निम्न देशों के सम्बन्ध हैं । जर्मन भोग उन निम्न देशों में रहते हैं, जहाँ के लोगों ने उनके देश पर कब्जा किया हुआ है । इस प्रकार दोनों समूहों में अनेक विभिन्न राज्यों के लोग रहते हैं । यद्यपि स्काटलैण्ड प्राय एक राज्य नहीं रहा है किन्तु भेद विचारसे वह एक राष्ट्र प्राय भी है । यदि मान हीप को देश समझा जा सकता है तो मैं सोचता हूँ कि वह एक पृथक् राष्ट्र भी होगा परन्तु उसके लघुरूप और ब्रिटेन के साथ निकट सम्बन्ध के कारण ऐसा नहीं माना जाता । 'राष्ट्र' शब्द राज्य के समानार्थक ही समझा जाता है परन्तु सामान्यत एक व्यापक अर्थ में लिया जाता है ।

बेस्व स्वयं प्रभुत्व सम्मान नहीं है और न उसकी अपनी राजधानी है परन्तु उस का भी एक राष्ट्रीय-मुक्तकालय एक राष्ट्रीय अनामचर और एक विरवविद्यालय है ।

(८) सरकार—कानून द्वारा नियंत्रित जहाँ कहीं भी कोई व्यक्तिगत जीवन प्रणाली काका समूह होता है वहाँ कानून बनाने देखने और उन्हें कार्य-रूप में परिष्कृत करने वाली कोई स्वीकृत शक्ति होनी प्राथमिक है । इसी शक्ति को सरकार कहा जाता है । वह किसी एक व्यक्ति या एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा निर्मित हो सकती है । यह शक्ति निरपेक्ष होती है और उन पर कुछ बर्धन भी हो सकते हैं । उसकी प्रभुत्व-शक्ति पूरे राष्ट्र पर प्रथम उस राष्ट्र के कुछ

पृथक् वर्गों के द्वारा सीमित की जा सकती है। ऐसी अवस्था में सरकार के एक या अधिक वर्गों का प्रामाणिक पर कुछ निश्चित विभागों के प्रभार पर लोक-समुदाय ने बोटों के द्वारा चुनाव होता है। ऐसी पद्धति जितनी अधिक सुविकसित होती है उतनी ही अधिक वह इस राज्य के निकट होती है कि प्रतिम सम्प्रभुता वहाँ की जनता में निवास करती है और सरकार जनता की प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है। भाव यह मान लेना एक गलत धारणा होती कि ऐसी पद्धति में जनता शासन करती है। सर्वत्र इस बात की सम्भावना है कि निर्वाचित सरकार जनता की इच्छानुसार कार्य न करे और वास्तव में बहुत-से लोग यही चाहते हैं कि निर्वाचित सदस्य-गण अपने विवेक के अनुसार कार्य करें। अतः यह वाञ्छनीय है कि राज्य में प्रथम प्रभुसत्ता और शासन-सत्ता में भेद किया जाए जैसे एक परिवार के उदाहरण में हमने यह प्रस्तुत किया था कि एक बच्चा सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न होता है यद्यपि शासन जाता-पिता करते हैं। यह स्मरण रहे कि एक प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य भी दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध द्वारा अपने कार्यों को नियमित कर सकता है। प्रभुसत्ता के लिए आवश्यक यह है कि जिन वर्गों से यह सीमित होती है वे ऐच्छिक होने चाहिए। निरसन्देह व्यवहार में कभी कभी यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि वास्तव में ऐसी बात है या नहीं।

यह भी कहा जा सकता है कि जिन वर्गों या परिभाषाओं का यहाँ प्रयोग किया है उनका भिन्न धर्म भी हो सके। मैंने उनकी परिभाषा इस तरह से देने की कोशिश की है कि वे अपने प्रचलित प्रयोग से बहुत दूर न हो जाएँ और इसके साथ ही वे अपने महत्वपूर्ण अन्तर को प्रदर्शित करने में भी समर्थ रह पाएँ। इस विषय में अधिक विचार हमें अपनी सीमा से अधिक दूर से जाएगा। सामारण भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द कुछ अस्पष्टता भी पैदा कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हमें उतना एक ही धर्म में प्रयोग हो परन्तु बड़ा निकट दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि हम यह जान सकें कि एक विशेष समय में उतना प्रयोग किस धर्म में किया जा रहा है। राज्य की सामान्य विचारधारा से सम्बन्धित समस्याओं का उचित विरसेपण राजनीति-शास्त्र को लक्ष्य बनाकर किसी गई पुस्तकों में ही ढीक मिलेगा।

प्रधानतः राज्य के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाना पता है कि उसकी सामाजिक संगठन की मूल आधारभूत-प्रणालियाँ प्राकृतिक हैं अथवा कृत्रिम। परिवार एक प्राकृतिक संस्था है इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। १ राज्य का प्राकृतिक आधार यह स्पष्ट है कि विद्या की अक्षरों और धौद्योगिक-संस्थाओं के द्वारा पूर्ति की जाने वाली विभिन्न धातु स्वकृतार्थे हमें स्वाभाविक रूप से किसी संगठन की प्रणालियों की ओर ले जाती हैं। अब ऐसे संगठन सरकार के नियंत्रण में या

जाते हैं तो उनमें स्वीच्छिक तत्व प्रबिष्ट होते हुए दिखाई देते हैं और सामान्यतः सरकार के रूप स्वेच्छावादी होते हैं। वे मानव की मूल प्रकृति से स्वतः उच्छ-बधित होते हुए दिखाई नहीं देते परन्तु बाह्य दबाव द्वारा घाते हुए प्रतीत होते हैं। यह भी स्वीकार करने योग्य है कि वे कभी-कभी प्रत्यधिक स्पष्ट रूप में जबरबस्ती बोन भी दिये जाते हैं। जब एक राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र को जीत लेता है और उस पर अपने बड़े धनवा समी कानूनों का प्रयोग करता है तो स्पष्ट है कि वह कार्य पराजित राष्ट्र की प्रकृति के अनुसार नहीं होता वह उसी प्रकृति से एकदम विपरीत भी हो सकता है। धर्म के बनने को भी प्राकृतिक धनवा कृत्रिम कहा जा सकता है। कुछ पदार्थों के लिए किसी विभय ताप पर बनना प्राकृतिक होता है परन्तु दिन परिस्थितियों के द्वारा वह ताप उत्पन्न किया जाता है वे कृत्रिम धनवा स्वेच्छावादी हो सकती हैं। इसीलिए मनुष्यों के लिए कपड़ा पहनना स्वाभाविक है यद्यपि जिस विधेय बंध से वे पहने गये हैं वे परम्परागत हो सकते हैं। कार्मोइल की सरदार रिचार्डस (Sartor Resartus) में समी मानवीय परम्पराओं की तुलना कपड़ों के साथ की गई है। परन्तु कुछ कपड़े पहनना उतना ही स्वाभाविक है जितना खाना पीना। जब कदा नै यह कहा कि मानव स्वतन्त्र उत्पन्न हुआ है परन्तु प्रत्येक बन्धु बन्धनों में बंधा हुआ है उससे उसका मतलब सामाजिक नियमनों की प्राकृतिकता से इन्कार करना नहीं था परन्तु कृत्रिमता से प्राकृतिकता का अन्तर प्रबधित करना ही था।^१ कोई बात प्राकृतिक है इस बात का पता तो इससे भी लग जाता है कि कुछ हद तक ससजा घटित्व प्राणियों में भी पाया जाता है। पशुओं के बहुत से मूत्रों में मेटा होते हैं और कभी-कभी वे केवल मृत्यु ही नहीं कर्म परन्तु दबाव भी डालते हैं। नियमन्य की प्राकृतिकता पर बल देने वाले अन्य तरीके निस्सन्देह कम बिदबातोत्पादक हैं। डेनसपीवर ने यूनिवर्स के मुंह से तर्क

१. जिस विविध तरीकों से समाज अपने सदस्यों पर नियमन्य का प्रयोग करता है उस पर प्रो ई. व. रोस महोदय ने अपनी पुस्तक 'सोशल ऑर्थोस' में प्रबधत बला है। नियमन्य करने वाली मरवाओं में से राग्य भी एक है पर शाब्द प्रो रोस ने इसके अर्थ का कम मूल्यांकन किया है। मैकार्थर की कम्पुडिटी १ अं १२४-५ को भी देखिए।

२. The heavens themselves the planets and this centre
Observe degree priority and place
Instare course proportion, season, form,
Office and custom, in all line of order
And therefore in the glorious planet Sol
In noble eminence enthroned and sphered

के जिस ढंग का प्रयोग करवाया है वह बहुत मार्गों के लिए सब विश्वसनीय नहीं रहा है—

द्विष्य-सोक स्वर्ग यह नज़र न केवल
 भ्याम रखते हैं कम प्राथमिकता न इवान का
 नियम मार्ग अनुपलभ, ज्ञान, निर्माणा
 कानून न वरम्पराएँ, सबके सब एक व्यवस्था का
 धोर इसीलिए तो है यह उत्तम यह-व्यवस्था
 प्रति उत्कृष्टता से प्रतिष्ठित, एक योजक में प्रतिष्ठित
 धर्मों के मध्य में द्विष्यकी सर्वोपकारी धर्मों
 सुधार वेतो है यही के तुल्य से अनुभव बहुतों को
 पुन या अनुभव के प्रति बिना किसी अवरोध के ।

प्रकृति के नियमों को सब इस धर्म में नियमों के रूप में नहीं माना जाता और लोगों की प्रकृति में इस परिवर्तन के कारण सामाजिक नियमों में विश्वास भी कम हो गया है । विशेषतः बल प्रयोग का तात्त्विक विचार बंधनों में सब भी प्रावश्यक समझा जाता है सामान्यतः दुर्भाग्यपूर्ण प्रावश्यकता माना जाता है । यदि बल प्रयोग का भी नितात्म प्रभावश्यक समझ लिया जाए तो भी केन्द्रीय-संरक्षण और मार्ग-दर्शन की विधि का कम महत्त्व प्रपन्ना उसकी कम प्रावृत्तिकता नहीं रह जाती । किसी भी सरकार की प्रवृत्ति किसे हृद तक प्रावृत्तिक है यह इस बात पर बहुत अधिक निर्भर है कि वह किस हद तक लोगों के मार्ग-दर्शन की प्रावश्यकता की पूर्ति करती है । घट यह जानना प्रकृत है कि राज्य की प्रकृति के लिए बल प्रयोग की विचारधारा कहीं तक आवश्यक है ।

राज्य की विशेषता यह है कि वह समाज पर नियंत्रण करने की शक्ति रखता है । एक ऐसी शक्ति रखता है जो अपने धारण में पूर्ण तथा जिस पर कोई शक नहीं की जा सकती । घट एच० बॉन ट्रुटस्की^१
 १ बल के रूप में राज्य (Trotsky) महोदय ने विशेषरूप से यह प्रकृत किया कि राज्य की शक्तिपूर्ण विशेषता उसकी शक्ति है ।

Amidst the other whose medicinal eye
 Corrects the ill aspects of planets evil,
 And posts like the commandment of a king
 Sans check to good or bad.

—Troilus and Cressida.

२. रूसी पुस्तक शक्तिपूर्ण सब अर्थों में प्रावृत्तिक है इसका विशेषता की बलकोट महोदय द्वारा किया गया है । इसमें इसके बंधन और अनिर्भर के शक्तिपूर्ण की शक्ति करने योग्य सामग्री प्रचुर मात्रा में है ।

यह विचार बर्मेनी में बहुत व्यापक था वहाँ अपने-कॉ कारखों से राज्य पर बल बहुत मजबूती के साथ टिमा गया। यह सत्य है कि राज्य एक समा-योजित समुदाय है जिसके निश्चित कानून और सदम होते हैं और यदि आवश्यकता समुभव कर तो उन्हें लागू करने के लिए वह उनका प्रयोग कर सकता है। उसकी शक्ति का प्रयोग तो बंग से होता है एक अपने आन्तरिक-नियन्त्रण के लिए और दूसरा अपने बाह्य-संरक्षण के लिए। जेटो ने राज्य-शासकों की तुलना पहले बेनेवाल कुलों से की है जो अपने घर बासों के मित्र होते हैं और बाहर बासों के लिए धातुमक। परन्तु यह बहुत अच्छी तुलना नहीं है। एक कुलिमान् शासक बाहर और अन्दर दोनों पलों से मित्रता स्थापित करता है। पर जब वह ऐसे सम्बन्धों को स्थापित करने में असफल होता है, तभी उसे शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। अतः यह कहना मुश्किल से ही सत्य हो सकता है कि बस ही राज्य का अत्यावश्यक तत्व है। वहाँ कहीं सरकार होती है वही विरोध की सम्भावना होती है और उस विरोध को शक्ति के द्वारा ही धीला वा सकता है। माता-पिता अत्यापक और उद्योगों के संयोजक बर्मान के किसी-न-किसी रूप को अपनाते हैं। परन्तु यह कोई नहीं कह सकता है कि एने सम्बन्धों के लिये शक्ति एक अत्यावश्यक पहलू है। इस सम्बन्ध में संभवतः राज्य की समानता में निश्चिततम संस्था औद्योगिक संगठन है। औद्योगिक संगठन को भी अपने भीतर संतोषजनक स्थिति पैदा करनी पड़ती है और बाहर से आने वाली कठिनाइयों और कतरों को जीव-पड़ताम करनी पड़ती है। इन दोनों बाणों में कुछ औद्योगिक बंध का संबंध उद्योगपाला के संगठन पक्षका वहाँ के नातावरण की सामाजिक स्थिति में कोई दोष पाजाने के कारण पैदा हो सकता है। राज्य के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है। यदि कानून अच्छे बनाने गए हैं तो विरोह अत्यवश्यक ही उठना है और यदि कोई राज्य अपने पड़ोसी राज्यों के साथ मैत्री में रहता है तो यह धारा की जा सकती है कि पड़ोसी भी उसके साथ मैत्री से ही रहेंगे।

शक्ति पर बल बने का सिद्धान्त कुछ धर्मों में अस्तित्व के लिए संघर्ष नामक त्रैब सिद्धान्त से सम्बन्धित है। परन्तु प्राणी-जीवन के लिए "म सिद्धान्त का प्रयोग नमबल कुछ गणत रूप से किया गया है और उससे भी ज्यादा पतन प्रयोग मानव के जीवन के सम्बन्ध किया गया है। वास्तव में बाण यह है कि जीवन का विनाश अपनी परिस्थितियों में सबसे अधिक समा-योजन करने वाले प्राणियों के अस्तित्व तथा अपने आपकी समा-योजन न करने वाले प्राणियों के नाश पर आधारित है। परन्तु प्राणी-जीवन में भी आचामक-निकाशों द्वारा इन प्रकार के परिणाम निश्चित आवश्यक नहीं हैं और आधुनिक रूप से सर्वोच्च विज्ञान प्राणियों में भी एने परिणामों का

उत्पन्न होना तो आवश्यक हो ही नहीं सकता। मानव-जीवन में सर्वोत्तम कर्णों के कुनाह के लिए सर्वर्ष नहीं होता बरन् उम सर्वोत्तम कर्ण को चेतना युक्त प्रयासा न तो प्रोत्साहन मिलता है। सामान्यतः युद्ध या सर्वोत्तम वस्तुधा का माया सर्वप्रथम करता है। रोग तथा शोष तो निम्न शक्तियों के प्राणिया का नाश करने में अधिक समर्थ होत हैं। औद्योगिकी का विस्फेपण करने समय इस बारे में हम पहले कुछ कह भी चुके हैं तथा युद्ध-विषयक विरोध ममस्या पर हम धागे प्रकाश डालेंगे। इसी बीच यह कहना पर्याप्त होगा कि राज्य का मार केन्द्रीय नियन्त्रण में है शक्ति में नहीं। जक्ति तो केन्द्रीय नियन्त्रण के लिए एक माचन मात्र है।

इस तरह यह प्रतीत होता है कि राज्य का मूल काम अपने अन्तर किसी संगठन को बनाये रखना है और उसका दूसरा काम उम संगठन की रक्षा करना धरवा जैसे अर्धन सोग इसे कल्चर (Kultur) के रूप में पुकारत थे। इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति सरकार अपने दो प्रधान धर्मों विधान निर्माता समा और व्यवस्थापिका-सभा के द्वारा करती है। केन्द्रीय नियन्त्रण निश्चित निर्णयों और सबबद्ध-विषयाओं के द्वारा व्यक्त

४ कानूननिर्माता
के कर में
राज्य

होता है। अपनी सामान्य प्रवृत्ति के बारे में हम पहले ही कह चुके हैं^१। राज्य का जीवन बहुत मज्जा हाता है और अधिकतर उसके काम नियन्त्रण प्रगा तियों में निहित अथवा प्रयुक्त होते हैं जो बहुत कर्णों तक चलने रहने हैं। राज्य कानून और संस्थाओं में साधारण रूप बारण करता है जिसमें किसी विशेष समय क्रिये गए निर्णयों को काम रूप में परिणत किया जाता है। किसी राज्य का अितना अधिक पूर्ण संगठन होता है जगती ही अधिक उसके अधिकार द्वारा निर्धारित कार्यों और काम क्रिये गए नियमों की पूर्ति होती है इसके विपरीत विशेष व्यक्तियों और प्रकारों के अलग अलग होते हैं^२। सब जगह कानून एक समान हों यह आवश्यक नहीं है। बहुत-सी बातें स्थानीय सरकार पर छोड़ी जा सकती हैं। यदि विभिन्न राष्ट्र एक राज्य में समुक्त होत हैं तो प्रत्येक के कानून अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु उनकी शक्ति और अनुदान केन्द्रीय सरकार से ही प्राप्त होते हैं। सामान्यतः एक मुख्यस्थित राज्य को अपने कानून सीधे लागू करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कानून ब्रिट में न के अपनी 'ग्रंट-सिटी' में यह प्रतिपादित किया है कि मीय कानूनों को कानून क

१ अर्थात् ३ विभाग २।

२. इसके बारे में एक विशेष लेखक विस्लेख्य जेको के 'गैरममन' ५ में २१४ ३ २ में तथा अरलू की 'राज्यविज्ञान' खण्ड ३ अध्याय १२ में देखें।

रूप में बहुत कम सोचता है क्योंकि उन्हें वे केवल अपने उद्देश्य की प्रतिबन्धित के रूप में धनुमब करते हैं। यदि आवश्यकता पड़ने पर कानूनों को लागू नहीं किया जा सकता तो उन्हें हम किसी राज्य के कानून नहीं कह सकते हैं उन्हें हम प्रचार्ण नियम अथवा नैतिक सिद्धाचार कह सकते हैं परन्तु राज्य के कानून नहीं। अतः यह सत्य है कि राज्य की पतिविधि के पीछे सर्वत्र सक्ति सुरक्षित रखी है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस धर्म में यह सत्य है कि बस राज्य के जीवन में एक धनिचार्य तत्व है। प्रत्येक वास्तविक निर्णय को चाहे वह किसी व्यक्ति का हो या समाज का प्रभावपूर्ण बनाने के लिए शासकों की आवश्यकता होती है। किसी व्यक्ति द्वारा कोई ऐसा निर्णय करना जिसे प्रयोग में न लाया जा सके पागलपन ही कहा जाएगा और यही बात प्रत्येक व्यवस्थित समाज अथवा निगम के बारे में भी सत्य है। किसी राष्ट्र में उसके काम को लागू करने के शासन राज्य द्वारा ही नहीं व्यक्ति पर निर्भर होते हैं। जब एक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का प्रयोग करने का निर्णय करता है तो उस निर्णय को कार्य रूप में परिणत करने का उसका विश्वास इस मान पर आधारित होता है कि उसे अपने देश के कानून का समर्थन प्राप्त है तथा आवश्यकता पड़ने पर धारणी विभाग भी उसका समर्थन करेगा। और अंततः इस प्रकार के नियंत्रण प्रकारों की सफलता अतः और स्वतः सेना पर आधारित है।

यद्यपि राज्य के निर्माण में आवश्यक तत्व के रूप में व्यक्ति के विचार का लक्षण उसके महत्त्व को कम नहीं करता। सक्ति पर प्रखिन्न लोगों का ही एकाधिकार नहीं है। कालाहल जो व्यक्ति को राज्य के सार के रूप में नहीं समझता कम-से-कम सिद्धान्तरूप में उसके प्रयोग के लिए उतना ही दुर्लभ दिनाई देता है जितना कोई भी प्रथियन हो सकता है। 'मायुर्म और प्रकाश' का पोषक भी अपने पिता के कथन 'सहस्रमति प्रकृत करता है' कि उपद्रव के बारे में रोमन लोगों का उसके साथ व्यवहार करने का इय सही था कि हर एक निपाही के कोई सनायो और उसके सरदार को तारपीयन की चट्टान से लुटका दो। इनमें मायुर्म नहीं है। उपद्रव हमेशा प्रायः कुछ वास्तविक कठिनाइयों व दुर्घटनों के कारण होते हैं और उसे हटाने के लिए अथवा ही कोई धर्म उपाय अपनाना चाहिए। यह सत्य है कि अन्त में सैव्य-शक्ति का सामना सैव्य शक्ति में ही होता है^१। अतः यह राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों की रक्षा करे और कानून लागू करे। यह प्रसन्नता को बाध है कि जब पर्याप्त सैव्य-शक्ति होती है तो उसके प्रभाव की आवश्यकता घायर ही कमी होती है।

१. अथवा अथवा अथवा ।

२. बी. ई. ए. शासनः इत्यं न इवात्नेत्यनव परमर्षे ७ अ. ३३-३४ ।

हम पहल ही देख चुके हैं कि संगठन के सबसे अधिक निरिच्छत वो कौ— परिवार और राज्य हैं। ये दोनों मनुष्य के जीवन में व्यापक रूप से उपस्थित हैं और उसके सभी प्रमुख पहलुओं से सम्बन्धित होते हैं। परिवार निस्सन्देह राज्य के मूल होता है। राज्य उसके निर्माण और उसकी रक्षा के लिए और यदि आवश्यकता पड़े तो उसकी समाप्ति के लिए भी उन्हें निर्धारित करता है। जानूँ बनाते समय राज्य सामू प्रयोगों और सामिक परम्पराओं का प्रयोग कर सकता है। सामान्यतः राज्य परिवार को स्वतन्त्रता का अर्थ बताता है वह माता पिता को उसके कर्तव्यों के सरतक के रूप में समझता है और पत्यधिक प्रत्याय के समय प्रत्याय जब कोई विषय प्रायता की जाए सभी उनमें हस्तक्षेप करता है। शारांग में परिवार साम्राज्य के अन्तर्गत एक ऐसा साम्राज्य है जिसके विषये कार्य और धन ही होत हैं।

तथापि सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित संगठन की ये प्रणामियाँ प्राप्त न कुछ विरोधी रूप भी प्राण्य कर सकती हैं। इस पर प्लेटो ने बहुत बल दिया है। अपने संरक्षक के रूप में पारिवारिक जीवन के विचार को ठीक नहीं समझा और स्त्री तथा पुरुष के कार्य को अलग अलग समझाने की चेष्टा की है। यदि यह हम स्वीकार कर लेते हैं कि परिवार का प्रमुख अर्थ हम बचपन के प्रारम्भिक वर्षों में वसूला करना है तो यह एक ऐसा कार्य है जो राज्य के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस कार्य को स्वभावतः ही माता और पिता दोनों को मा विषये और पर माता को ही दिया जाता है। संघर्ष के प्रारम्भिक-काल के प्यतीत हो जाने पर माता-पिता के हाथ से बच्चे की शिक्षा का इन्तजाम अधिक-से-अधिक रूप में राज्य अपने हाथ में ले लेता है। गीघक काल में भी यह देखा जा सकता है कि राज्य बच्चे के प्रति व्यवहार के सम्बन्ध में माता-पिता के प्रति कुछ नियन्त्रण सजता है और वह उनके प्रापसी-व्यवहार तथा सम्पत्ति सम्बन्धी बातों पर नियन्त्रण सजता है। अर्थात् प्रकार से निर्मित परिवार और राज्य परस्पर विरोधी प्रतीत नहीं होते। बरन् परिवार विधान नागरिक जीवन के लिए विषय का एक सर्वश्रेष्ठ आधार है—उस नागरिक जीवन के लिए जो राज्य के संगठन के रूप में विद्यालय रूप से संगठित है।

विषयवस्तु से राज्य का कार्य संगठन का है। प्रथम उससे यह आता है कि क्या सकती कि वह शिक्षा के तार और उसके विभिन्न रूपों के साथ सम्बन्धित

सरकार के धनेकों विभिन्न वर्गों का वर्णन किया गया है। ज्येदों में पाँच धरस्तु में छः और प्राधुनिक कई विद्वानों ने और भी अधिक सूक्ष्म भेद किए हैं। यदि हम सभी समाज भेदों पर सरकार के प्रकार विचार करें तो सख्या बहुत समी हो जाएगी परंतु यह सन्देशास्पद है कि इसकी दो आधारभूत धर-जनतन्त्र तथा लोकतन्त्र की पद्धतियों के अतिरिक्त अन्य भेद भी प्रदर्शित करने चाहिए या नहीं? यद्यपि कुछ सरकारों को राजतन्त्रिक कहा जाता है और उन्हें निरंकुश शासन से भिन्न प्रदर्शित किया जाता है फिर भी म्बहार में शासकों की प्रभुसत्ता उनके सलाहकारों से परामर्श से ही चलती है। कम-से-कम जहाँ ऐसा नहीं होता है और जहाँ शासन यह कह सकता है 'चाहे वह बिलावट की ही बातें हों कि मैं ही राज्य हूँ' जहाँ समाज राज्य का निर्माक करने वाला नहीं समझा जा सकेगा। ऐसी धरस्था में वास्तव में उन्हें किसी बाह्य शक्ति द्वारा ही नियंत्रित समझा जाएगा। फिर जैस ज्येदों में कहा है कि लोकतन्त्र को भी एक धरराजकता माना जा सकता है जिसमें सरकार का कोई रूप नहीं होता। मार्ग में यह कहना सत्य है कि एक वास्तविक सरकार में शासक चाहे एक वास्तविक राज्य हूँ हर सरकार या तो कुछ बड़े स्वतन्त्र लोगों के हाथ में होती धरबा बहु पुरे समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों के हाथ में होगी। धरजनतन्त्र और लोकतन्त्र की भी पद्धतियाँ विभिन्न हैं। एक धरजनतन्त्र मूल रूप में एक धरिजाततन्त्र हो सकता है जिन्हें विधे पक्ष या बुद्धिमान् कहा जा सकता है वह एक प्राधुनिक संघ-वर्ग या सम्पति वाली लोगों की सरकार भी हो सकती है। एक वास्तविक धरिजाततन्त्र धर लोगों का प्रतिनिधि भी हो सकता है इसलिए वह लोकतन्त्र के कुछ समकक्ष हो सकता है। धर्य पद्धतियाँ तो सगमम निरंकुश-शासन के समान होती हैं धरबा बहु एक ऐसी सरकार होती है जो तत्काल उनके लिए बाहर भी होती है। फिर लोकतन्त्र का धर भी बहुमत वाल लोगों का शासन धरबा बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ बड़े से निर्वाचित धरिधियों का शासन धरबा बहु कम सलाहकारों तरीक का शासन होता है। यह स्पष्ट है कि एक विद्यात समाज में कुछ धरसा में एक सरकार धरस्य ही प्रतिनिधि के रूप में होनी चाहिए। धरत-धरबा मतमब फिर यह हो जाना है कि वह सरकार धरबाधों धरबा विधेधर्तों या बलाधों की हाती है। इस प्रकार सरकार की विभिन्न पद्धतियों का सूक्ष्म भेद नहीं किया जा सकता। एक सुधरधरिधत सरकार जनता के हृदय में धरस्य ही स्थान बना सती है और कुछ धरों में शासन भी धरष्य होता है। प्रधान धरस्य वेधत सरकार के रूप में धरत धरबा धरष्यी धरत

धीरे उनके उरसाह से काम करने के बारे में रहना है। एक प्राधुनिक विद्वान् ने यह कहा है कि 'इतिहास का एक महत्वपूर्ण सबक यह है कि सरकार की पद्धति का मुख्य केवल उसके प्रकार पर आधारित नहीं है परन्तु प्रधान रूप से उसकी भावना पर आधारित है। परन्तु उसकी भावना उसके हाथ द्वारा प्रकट प्रभावित होती है। पों की वे पंक्तियाँ—

सरकार के हाथों के बारे में सुझावों को लड़ने दो

जो सर्वोत्तम रूप से शासित हैं वही सर्वोत्तम शासन हैं।^१

तभी सही कमी जा सकती है जब सरकार के प्रकार का औपचारिक रूप में समझ जाए। परीक्षण का प्रश्न मुख्यतः सुशासित सरकार पर जाता है। परन्तु यह किसी सामान्य प्रकार पर उत्तम आधारित नहीं होता जिसका किसी मनुष्य पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए किसी राज्य के प्रधान व्यवस्थापक को सम्राट् राजा प्रजा राष्ट्रपति कहने में कोई बिनाप अन्तर नहीं परता जब तक कि वह जो कुछ करता है वह अपनी प्रजा के सुविधाकारियों के विचारों के साथ अपने विचारों का सामंजस्य स्थापित नहीं करता। सरकार के सभी कार्यों का यदि कुछ भी महत्व है तो वे सबसे बड़ी उद्देश्य की पूर्ति करने हैं। यह एक ऐसा कार्य है जिसे कोई भी सरकार सामान्यी में प्राप्त नहीं कर सकती चाहे वह अधिक से-अधिक लोकतन्त्रीय ही क्यों न हो।

राष्ट्रपति सिद्ध की उचित 'जनता द्वारा जनता के लिए जनता की सरकार को लोकतन्त्र की परिभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है। यदि इसका विस्तृत विस्तरेण किया जाए तो हम किसी भी अच्छी सरकार की विशेषता यह सकते हैं। दूसरी तरफ यदि सीमित अर्थ में लिया जाए तो इसे किसी भी प्रकार की सरकार के लिए प्रयुक्त करना बर्तन है। सरकार का वास्तविक कार्य लोगों के एक छोटे से हिस्से द्वारा कभी भी नहीं चल सकता। कभी कभी इसके विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि सरकार का कार्य किन्हीं विशिष्ट लोगों में ही होता है जबकि लोगों का जीवन कई पीढ़ियों तक विकसित पड़ा रहता है। परन्तु सब से अधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि सरकार की व्यवस्था करने वाला जनता का भाव सम्पूर्ण जनता में स मर स अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और सक्रिय प्रतिनिधित्व करने वाला होगा चाहिए।

१ 'दिल रि नीरस्त नवननेष्ट' की श्रुति ७ ३।

२ For forms of government let fools contest whatever is best administered is best—

किसी प्राथमिक विद्यालय राज्य के कार्यों का नियन्त्रण व्यावहारिक रूप से पूर्णतः किसी एक केन्द्रीय प्राधिकारी में निहित नहीं किया जा सकता। उसे हम पहले कह चुके हैं कि चाहे तो राज्यों के स्वामीय सरकार अन्तर्गत राज्य हों अथवा कुछ प्रांतों में स्वतंत्र राज्य हों कुछ भी हो नगरपालिका और जिले अपने स्थानीय कार्यों में कुछ प्रजा में स्वतंत्र हों और परिवार आदि-स्वाभाविक संगठन आदि भी अपने एक गोमित क्षेत्र में स्वामीन हों। आमतौर पर सरकार के वे कुछ ऐसे प्रकार हैं जिनमें राज्य की विद्यालय सरकार की सामान्य भावना का पता चलता है। एक पंचक पद्धति की सरकार के अन्तर्गत सामान्यतः एक परिवार का पिता किसी लोक-प्रिय सरकार के व्यक्ति की प्रेरणा अपनी छोटी-सी परिधि में अधिक बड़ा प्राधिकारी का रूप धारण कर सेवा परन्तु ऐसी मिश्रताएँ यहाँ प्रदर्शित करना आवश्यक नहीं।

राज्य की सामान्य प्रवृत्ति फैलाव की है और फैलाव का अर्थ उसमें कुछ परिवर्तन घाना होता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण १. राज्य का क्रम विकास परिवर्तन निम्न प्रकार के होत हैं—(१) नागरिकों और राज्यों का सम्बन्ध संविदा रूप से कुछ अधिक होता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि किसी राज्य के प्रारम्भिक दिनों में इस प्रकार की किसी संविदा की प्राप्ति करना बुरा ही होती है। परन्तु ज्यों-ज्यों यह बढ़ता है अधिक उ अधिक संविदाएँ स्थापित होती हैं उनमें से कुछ को निस्सन्देह प्रारम्भ में ही स्थापित समझना चाहिए। परन्तु उनका प्रारम्भ सामान्यतः प्रजा अथवा संविदा पर आधारित अर्थ में ही स्वीकृति पर ही होता है और उनका प्रत्येक कानून पर आधारित संविदा के रूप में।

(२) प्रारम्भिक-काल के राज्य अन्तर्गत के नगर राज्यों की तरह प्रजा कम से कम छोटे समुदायों के रूप में है। वे अपनी पर्याप्त सुरक्षा की शक्ति और आन्तरिक विभिन्नता के अभाव में अक्षम रहे। अतः राज्यों को संयुक्त करने के प्रति नीतियों की रचि हुई। प्रारम्भ में कुछ निश्चित रूप से संयुक्त राज्य से और बाद में अधिक-अधिक संयुक्त हुए। वे विभूत साम्राज्यों के रूप तक पहुँचे उनमें उपनिवेश और आधुनिक राज्य मिलाये गए। फिर यह प्रवृत्ति बाड़ी या अधिक विघटनकारी आन्दोलनों द्वारा स्वामीय स्वयं-शासन की

१. नीचे दिए हुए रविन अर्थों का अर्थ है कि यह प्रवृत्ति अनिश्चित रूप से अस्तित्व में है। यह एक दोहरा के संस्करण के मोड़ को भी देखिए।

की दिशा की ओर प्रवृत्त हुई। साम्राज्य राष्ट्रमण्डल के रूप में परिवर्तित हुए और धारण इसका सुरक्षित भाग पृथक २ राज्यों के रूप में चले। ऐसे पृथक पृथक राज्य परस्पर एक-दूसरे के साथ कुछ सामान्य सम्बन्ध रखते हैं और किसी विशेष उद्देश्य के लिए सुरक्षित संगठित हो जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक मनुष्य के लिए एक अच्छा यूरोपियन बनाना संभव है क्योंकि सारे यूरोप में एक समता है जो उसे रोमन-साम्राज्य द्वारा मिली^१। इस प्रकार की समानता से फिर हम एक व्यापक रूप के संगठन की ओर बढ़ते हैं जिसमें घनेकों दूसरे राष्ट्र भी भाग लेते हैं और संभवतः बहु संगठन सीमा ही विश्व-संगठन का रूप धारण कर सकता है। परन्तु यह व्यापक तथा विश्वारणीय विषय है जिस पर हम प्रागे के अध्यायों में प्रकाश डालेंगे। राज्यों के इन सम्बन्धों और उनके इन बाँधों में वास्तविक प्रगति तभी संभव हो सकती है जब वे सामान्य इच्छा धारणा सामान्य उद्देश्य को अधिकाधिक रूप में साकार बना सकें और मानवता के सामान्य हित की ओर बढ़ सकें किसी दूसरे पक्ष में हमारी प्रगति धरनति ही होगी।

राज्य सम्बन्धों सिद्धान्तों पर टिप्पणी

राज्य के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में पूर्ण विचार करना तो राजनीति-शास्त्र का विषय है। यहाँ समाज-व्यवस्था की सामान्य रूपरेखा जैसी रचना में उसकी बाह्य रूपरेखा ही प्रस्तुत की जा सकती है। परन्तु राज्य सम्बन्धी विचारों का एक विशेष महत्त्व होने के कारण यहाँ उनके बारे में एक संक्षिप्त टिप्पणी बोल देना अधिक उपयुक्त होगा। इन महत्त्वपूर्ण विचारों को हम निम्नलिखित श्रेणियों के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं —

(१) राज्य एक व्यक्तिगत के रूप में (२) राज्य एक प्रति-व्यक्तिगत इकाई के रूप में (३) राज्य एक परम व्यक्तिगत धरना धरोकरेय शक्ति के रूप में (४) राज्य एक राज्य के रूप में जिसके अनुसार वह उन व्यक्तियों का भार वहन करता है जो उसका निर्माण करते हैं तथा (५) राज्य एक प्राकृतिक साहचर्य पद्धति के रूप में जिसका धरना एक विशेष मूल्य और विषय कार्य होता है। इनमें से प्रत्येक पर कुछ संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

इन विचारों के लिए शुरुआती की परिभाषा एक विशेष अधिव्यक्ति के रूप

१. यूरोप में कठोरतम धरना की उत्पत्ति का कारण उन समय की परिस्थितियों थीं। कठोर की मात्रता रोमन-युद्धों द्वारा ही संभव हो सकी। जब वे वे शक्तियों के बीच रूप भारत करने लगीं जिससे वे संकुचित होती गईं।

में प्रयुक्त हो सकती है। उसका कहना है^१ 'राज्य लोगों का एक संगठन भवता एक साहचर्य है जो एक निश्चित प्रवेश प्राप्त करता है। राज्य एक व्यक्ति और व्यक्ति और परस्पर सम्बन्ध पुस्तिक व्यक्तित्व के रूप में संगठित है। व्यक्ति विशेषण स्मृतहीने व्यक्ति मात्रता के कारण रखा है। उसका कहना है कि राज्य

पुस्तिक है और चर्च स्वीकृत है। ऐसा सपना है कि उसकी मात्रता के पीछे इसके विनाय कुछ भी आधार नहीं है कि चर्चों में जोय राज्य और चर्च को इन्हीं लोगों में प्रयुक्त करते रहे हैं। यह सत्य है कि चर्चों के लिए जो निर्धारित करना एकदम अपनी इच्छा का विषय नहीं है। मेरा विचार है कि यह स्वीकार किया जा सकता है कि राज्य के कुछ भागों का नाम स्थलों की प्रेषणा स्वभावतः पुरुषों से अधिक सम्बन्धित है और स्थलों अधिकतर परिवार तथा चर्च के काममें लगी रहती है। परन्तु स्मृतहीने ने तो इस पर अतिरिक्त डंग से बल दिया है।^२

राज्य के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि ग्राह्यिक रूप से हम इसे नहीं रख सकते^३ और ऐसे विषय में कर्कशादि बाँधना भी कठोर से काली नहीं है। फिर यह भी सत्य है कि राज्य कुछ ऐसी विशेषताओं से युक्त होता है जो पुरुष से सम्बन्धित होती है। विशेषतः राज्य निर्णय करता है उन्हें कार्य-रूप में परिणत करता है और उनके लिए उत्तरदायी होता है। पर ऐसा तो एक बड़े प्रबन्ध प्रुत्पादन कर्म के सम्बन्ध में भी होता है, परन्तु मेरा विचार है कि उन्हें कोई भी एक व्यक्ति के रूप में नहीं मानेना। किसी राज्य के बारे में प्रायः यह कहना कठिन है कि निर्णयों के लिए उत्तरदायित्व कहाँ है। एकतात्मीय शासन में राजा प्राकृतिक रूप से ही उत्तरदायी होता है। यद्यपि यह अपने परामर्श वाताघों के दबाव पर भी बहुत अधिक प्रभावित होता है। क्रिटेन में यह कहा जाता है कि राजा कोई अप्रयुक्त नहीं कर सकता है और सामान्यतया प्रशासन कार्यों का उत्तरदायित्व प्रधान मन्त्री पर होता है। परन्तु कई महत्व के मामलों में निर्णय का उत्तरदायित्व विशेष अधिकारियों प्रेषणा किसी सरकारी संस्था पर आचारित होता है। कुछ भी हो यह उत्तरदायित्व कुछ लोगों प्रेषणा कुछ लोगों के एक मन्त्र पर ही मका जाता है।^४ यह माय है कि लोकतात्मीय देशों पर बाहर के

१. दसोती भाग २२८ भाग २ अध्याय २।

२. कुछ ज्ञानोपनामों ने तब जीवनी राजादे को पुराण 'दि देविली में ५ अं २२२ शिल्प।

३. यह हम परल ही प्रदर्शित कर चुके हैं शिल्प (अध्याय १ अं १, १२) कि इसे एक वैधानिक विधि द्वारा प्रतिपादित किया जा सकता है।

४. प्लान देने को राजा है कि राजा रोनादे पहले इनसे हम्कार करते थे परन्तु अब कुछ प्रजा में जाने विचारों का राजा रिया है। उनको पु १८ भाग १ अं २१ मेहासत अ. १६५५ अं २१ शिल्प।

सौर्या के विचारों का प्रमाण विद्येपत पड़ता है परन्तु यही बात व्यक्ति-विशेष मन्त्रका व्यक्तियों पर भी लागू होती है।

राज्य के सम्बन्ध में अपनी-अपनी प्रवचनारणा पिछले धीर हेनेल से सम्बन्धित है। मेरे विचार में इस समय ब्रिटेन में डा० बाघाके इसके सर्वोत्तम प्रतिनिधि के रूप में हो सकते हैं। हेनेल ने राज्य की २ राज्य का अपनी-अपने ईश्वर तक कहा है और इस प्रवचनारणा के सभी रूप

समर्थकों ने राज्य की कुछ समस्याओं के सर्वोत्तम साधनों का साकार रूप बतलाया है। पर इस विचार के समर्थक मैथ्यू आर्नेस्ट ने राज्य को हमारा सर्वोत्तम एकलित षष्ठ व राष्ट्रीय राज्य के बिल्टन का उत्तम स्वरूप बतलाया है। डा० बोसाके के अनुसार वह राष्ट्र की 'व्यवस्था-दण्ड' की प्रतिबन्धित है जिसमें विशेष व्यक्ति केवल प्राधिकार को प्रस्तुत करते हैं। यह स्वीकार करना परहेज कि ऐसी विचारवादाओं को पूर्णतः साक्षर राज्य के बारे में ही प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु जिन विद्वानों का यहाँ उल्लेख किया गया है 'सामान्यतः' इस बात के लिए तुझे हुए है कि यदि प्रादर्श को व्यावहारिक रूप में परिणत नहीं किया जाता तो उसका कोई मूल्य नहीं है। परन्तु क्या वह प्रवचनारणा राज्य पर भी लागू होती है? यह स्वीकार कर लिया गया हीनता है कि विज्ञान कला और श्रम के विकास में उत्तमतर पारमर्शिय कियाएँ राज्य के वैधानिक षष्ठ से हमें बहुत कुछ दूर से जाती हैं, यद्यपि इस प्रकार के प्रोत्साहन और क्रियाओं की रक्षा करना राज्य के कार्यों का ही निश्चित भाग है। सभी प्रकार के रचनात्मक कार्य जैसे प्राधिकार अनुसंधान और प्रसंगिक-प्रयोगों आदि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही बीकवा है। पर ये सब केवल वैयक्तिक साधनों पर आधारित होते हैं और साक्षर राज्य भी उन्हें जैसे ही लोगों पर छोड़ देते हैं। एक राज्य अधिकांश सत्तों या विचारकों का निर्माण नहीं कर सकता। अतः यही ठीक होगा कि वह न तो उन्हें कुचल व छोड़े और न उन्हें धर्मों के द्वारा कुचला जाने दे। यह और भी अच्छा होगा कि वह उन्हें कुछ छोड़ प्रोत्साहन दे। परन्तु वे सोच तो भूतकाल की तरह अपनी यथिय में प्राप्त होने वाली प्रेरणाओं को राज्य से सम्बन्धित सौतों की छोड़ना धर्म स्वार्थों से प्राप्त करने हैं। राज्य तो अपनी परिभाषा के अनुसार प्रमुख रूप से कानूनों के निर्माण और उन्हें कार्यों के रूप में परिणत करने सामूहिक धर्म्यवर्गों के आयोजन साम्प्रतिक सन्धि के स्थापन निर्धनता के प्रबोध समाजिक मूल्यों के सभी कार्यों की रक्षा और उनके प्रोत्साहन से सम्बन्धित होता है। अतः एक राज्य के लिए यह पर्याप्त है चाहे वह कैसा भी साक्षर राज्य ही क्यों न हो? किसी चीज की रचना करना व्यक्तिगत तथा लेखिक मन्त्रा का काम है।

परन्तु सक्ती रक्षा करना उन्हें प्रोत्साहित करना तथा संगठित करना राज्य का काम है।

बस धरणा प्रति के रूप में राज्य के सम्बन्ध में हम पहले ही विचार कर चुके हैं। परन्तु यहाँ यह विचार करें कि इसका बल के साथ क्या सम्बन्ध है।

कभी-कभी कहा जाता है कि ट्रस्टकी का सिद्धान्त २ राज्य एक बल के फिन्स और हेनेल से लिया गया है और मुझे विद्वान् रूप में है कि इनमें कुछ छत्राई भी है। वे सभी लोग उस समय के प्रसिद्धा की विशेष परिस्थितियों से बहुत अधिक

प्रभावित थे। सामान्यतः सामाजिक और राजनीतिक विद्वानों के विचारों पर स्वान की परिस्थितियों का ध्यान रखे बिना विरोध करना एक बड़ी भूल होती।

यहाँ तक कि महान् दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू तक मानवादीय नहीं कहे जा सकते हैं। वे भी नेबल मानव ही थे और इस परिवर्तनशील ससार में रह कर उसे अपनी पीछों से देखते हुए विमन करते थे। हेनेल तो इस बात को

घबड़ी तरह समझता ही होया। फिन्स और हेनेल दोनों ने एक ही समय में जर्मन जनता को उनकी राष्ट्रीय एकता का बोध कराने और उन्हें प्रसिया की

ही राजनीतिक-विद्या में प्रेरित करने का निर मित्रा। ट्रस्टकी ने उस समय मित्रा जब उसके अपने प्राथिक प्रभाव में देश ने यह ध्येय प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार जब सभी ने राज्य की एकता और उसके नियन्त्रण पर विशेष बल दिया।

और सम्बन्धत यह भी साथ है कि उन सभी ने प्रतिपद्योक्तिपूर्ण अधिष्पत्तियों से काम लिया। ग्रेन्की ने तो अपने प्रतिपद्योक्तिपूर्ण कथन में फिन्स और हेनेल को साथ ही कर दिया। वह एक दार्शनिक की घोषणा ब्रह्मा और इतिहासकार

अधिक या इसलिये उसके अतिरिक्त में कुछ कारण भी हो सकता है। यदि फिन्स और हेनेल की तरह हम भी राज्य को एक महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय स्थान दें तो यह स्वयं तिर है कि उसका महत्त्व उसके बल पर ही आधारित होया। अथवा

(अरस्तू के कथन के अनुसार) जिस पर सभी मानवीय उच्च विचार आधारित होती हैं मुख्यतः राज्य के रूप में ही प्राप्त और रचित किया जा सकता है।

इस विषय में यह कहना थोड़ी-सी प्रतिपद्योक्ति होती कि राज्य ही सर्वत प्रतिपद्योक्ति है। यह एक ऐसी प्रतिपद्योक्ति होती जिसमें स्वभावतः जर्मनी का गदा

और बहोत महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर गया। जर्मनी की एकता रक्त और सत्य का प्राप्त की गई थी। इनके पर भी जहाँ पूर्णतया सच्चयता नहीं मिली।

कुछ धर्मों में जर्मनी धर्म भी एक पूर्ण राज्य आधारित राज्य नहीं है। ही तो बात ही क्या। अन्त में जर्मनी धर्म भी एक पूर्ण राज्य आधारित राज्य नहीं है। ही तो बात ही क्या। अन्त में जर्मनी धर्म भी एक पूर्ण राज्य आधारित राज्य नहीं है। ही तो बात ही क्या।

युस नित्य धर्मन के धर्मन रक्षण का एक समूह है अथवा जैना प्लेटो ने कहा था कि वह विमुक्त में नर राजन है। ऐसे राष्ट्रों के सम्बन्ध में विशेषतः यह

सत्य है कि उनका सारतात्व बल ही होता है। इस प्रकार से ट्रेंटस्की ने तो जो देखा वही कुछ कहा परन्तु वह ऐसी परिस्थिति की कि जिससे जर्मनी राज्य वह सुषों में खेच होने पर भी विश्व-सम्भता के लिए भयकर खतरा बन गया।

हेनेल महोदय ने निश्चय ही यह नहीं कहा कि राज्य एक बल है। डॉ. बोसॉके ने ह्यास से ही एक उदाहरण की ओर ध्यान दिनाया है जिसमें उसने बल के शब्द का बौरदार सम्बंधों में लक्षण किया है। यह स्मरण रखने की बात है कि ट्रेंटस्की ने किसी प्रकार की शक्ति का समर्पण नहीं किया परन्तु वह तो एक सत्य सम्भता का समर्पण करते शब्दों एक सुगमनिश्चित राज्य के बल के समर्पण हैं। यद्यपि उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि प्रत्येक राज्य में एक सेना होनी चाहिए परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि किस प्रकार का बल राज्य का निर्माण करता है। घट हेनेल ने नेपोलियन की शक्ति की ओर भर्त्सना की है उसे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा। नेपोलियन के बल की प्रतिम प्रसफसता के दृष्टिकोण से ट्रेंटस्की इसका लक्षण और भी अच्छी तरह करता। नेपोलियन को राज्य के बल का प्रतिनिधि भी कहनाई सही कहा जा सकता है। वह तो राज्यों के लिए शान्त का और उसके प्रशंसक लोग सामान्य राष्ट्रीय शान्त के सन्तु है। यह सत्य है कि हेनेल ने बल और राज्य की एकता को उस प्रश्न में नहीं लिया जिसमें ट्रेंटस्की ने लिया है। वास्तव में ट्रेंटस्की ने अपने सिद्धान्त का आधार हीनेबीय राज्य सम्बन्धी प्रवचनारण के लक्षण पर आधारित की है।^१

परन्तु हेनेल महोदय ने राज्य के महत्व पर इस प्रकार बल दिया है जिससे संतुलन का ब्यापक प्रयास अनुपयुक्त सिद्ध होता है और शान्त युद्ध की एक आवश्यक स्थायी तस्या के रूप में प्रस्तुत किया है। डॉ. बोसॉके ने इस सम्बन्ध में पूरी तरह उसका अनुसरण नहीं किया। फिर भी कुछ शंका तक वह भी इसी मत का प्रतीत होता है।

कभी-कभी कार्मिडल की ट्रेंटस्की की तुलना में रखा जाता है परन्तु यह तुलना मिथ्या है। क्योंकि कार्मिडल का विरवाच राज्यों में नहीं था, बल्कि वह तो मेठा या नामक का बल था जिसकी उसने प्रशंसा की है। नायक स्वयं अनुप्य होते हैं घट उनमें नैतिक ध्याय की भावना होती है। इस सम्बन्ध में वह ट्रेंटस्की की धवेक्षा अपने अधिपानक के प्रति भक्ति पूर्ण विचारों के कारण नीत्ये के निश्चय है। फिर उसने उन दोनों की धवेक्षा अपनी बात बहुत ही बधाकर कही है और इसलिए उसे उनके समकक्ष नहीं रखा जा सकता। वास्तव में नीत्ये और

ट टस्की का भी एक बर्ग में नहीं रखा जा सकता, यद्यपि उनमें बहुत अधिक समानता है।

हाईस नामक एक और विज्ञान में राज्य के बस पर जोर दिया है। उन्होंने राज्य को नैतिकता के सामान्य नियमों के एक खोले के रूप में प्रस्तुत किया है परन्तु उस विषय नहीं बनाया है। उन्होंने राज्य का व्यक्तियों के घट से उद्धार के लिए मृत्युपात किया है। और उनकी प्रकृति प्रविष्टन लोगों से मेल नहीं खाती परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और उसके परिणामों के सम्बन्ध में उसके विचार ट टस्की के समान ही प्रतीत होते हैं।

यदि हम हम तरह कुछ विवेक दार्शनिकों के विद्वान्ता पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालेंगे तो अपने मन से बहुत दूर निकल जाएँगे।

ब्रिटेन में राज्य के सम्बन्ध में कम और लोगों की स्वतन्त्रता का अधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति है।^१ राज्य को सामान्यतः व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त करने

का प्रमुख साधन समझा गया है। इस तरह राज्य को एक यांत्रिक क्रिया से भी छोटा समझते हैं। और यह एक ऐसा यन्त्र है जिसका कार्य बहुत ही कम कर दिया गया है। राज्य के हित धक्का भुस को प्रो साहन देने वाले बल को कम कर दिया गया है। और कभी-कभी उसकी अधिक प्रति रोमक-वादिन का निरादर धक्का भरसना तक भी जाती है। यह सम्भवतः अधिक मन मोर्चा की तरह एक बहुत बड़ी भुस है और लगभग शरारत पूर्ण है। विषय पर अधिक धक्का धक्का का प्रतिरोध न करने का अरम सिद्धान्त कठिनाई से बुझा पूर्वक लक्षित किया जा सकता है। अल्प अल्प सिद्धान्त की तरह यह परिस्थितियों का ज्ञान में रूढ़ि बिना धार्मिक-सम्बन्धों के उपदेशों पर आधारित है। उन संज्ञों में से एक है तो यह कह कर सावधान भी बन दिया जा कि उसके कथन को अन्तरम पहुँच न दिया जाए। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जब किसी धार्मिक या नुराई का प्रतिरोध किया जाए, तो यह इतना प्रभावपूर्ण होता चाहिए कि अधिक को समाप्त करके हिन वाली बात का विश्वास बना सक। परन्तु प्रायः इन तरह का प्रतिरोध दुर्घट का चासु रणता और बढ़ावा दता है।

अप्रतिरोधक सिद्धान्त को जब सामाजिक समस्याओं पर लागू किया जाता है तो उनके फलेंद कर हो जाते हैं। बहुत समय तक ब्रिटेन में उनका बहुत स्पष्ट रूप का अन्वय व्यवहारणा के रूप में रहा था जब नुई तरह से परिष्कृत

१ राज्य के सम्बन्ध में विदित और अल्प प्रवृत्तियों में अन्तर प्रो मोरली ने अपनी शाब्दिक भाषा अन्तर्राष्ट्रीय अन्वयितः द ट्यूरी फाल्ड १९२८ विद्वानः ५ सं ३१ १२ में प्रकाश किया है। २५ अन्वय के दार्शनिकों के विचार को भी देखें।

नीय बल हुआ है। उसका परम विरोधी सिद्धान्त राज्य-समाजवाद है। परन्तु कुछ समाजवादी भी अतिविरोधक सिद्धान्त का कुछ भिन्न रूप से प्रचार करते हैं। जैसे उनका कहना है कि राष्ट्रीय की बीबन रसा और समाज-व्यवस्था के प्रतिपादन के उपकरण के रूप में बल का आशय छोड़ देना चाहिए। परन्तु जब बल का एक रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है तो वह घुसरे रूप में स्वयं पैदा हो जाता है। राज्य के बल के विरोध के रूप में अब भी वर्गीय हिंसा के समर्पण की प्रवृत्ति रही है^१। इसके मूल में एम० बर्गसन क बर्गन को माना गया है परन्तु वह कुछ भ्रमों में रसेम के एक मिश्र प्रकार के दर्शन के साथ भी सम्बन्धित है^२। मानव-जीवन की एकता के लिए मुक्त राज्य के रूप में विवेक पर विश्वास और विशिष्ट मनोबोगों भावबोगों और बधियों का आशय इन बर्गनों की समानता है।^३

इस विचारों के विरोध में राज्य की एकता पर बल बिना जा सकता है। सभी भोगों के सहयोग द्वारा ही हम कुछ व्यक्तियों अथवा वर्गीय स्वार्थों को रोकने में समर्थ हो सकते हैं और सही विवेक की प्राप्ति कर सकते हैं। जैसे कि मधु मर्गण्ड ने कहा है कि सुसमाजोचित राज्य का अस्तित्व 'जहाँ आबन्धक-महान् परिवर्तनों पर आधारित होता है वहाँ स्वामी व्यवस्था पर भी बहुत कुछ आधारित होता है। अतः इस व्यवस्था के लिए भी पर्याप्त बल का विधान होना चाहिए। यहाँ तक कि यदि हम किसी एक प्रकार के विरह-सम की स्थापना में भी सफल हो जाएँ तो भी हमें उसकी व्यवस्था के लिए एक बड़ा भारतीय-बल की आवश्यकता होगी। इसी तरह वास्तव में जब तक राज्यों में वर्तमान अराजकता की हानि नहीं बसती रहेगी तब तक एक बड़ा प्रतिउत्प्रेरक बल के अस्तित्व की आवश्यकता रहेगी। यूरोप के समाजवादी नेताओं ने इसे स्वीकार कर लिया है परन्तु ब्रिटेन में अभी इसे स्वीकार नहीं किया जा रहा है।^४

राज्य सामाजिक एकता का एक रूप है इस अवधारणा द्वारा हम इन

१. लारेंस की पुस्तक 'रिपब्लिकनियम आन वावलेन्स' देखें।

२. 'डिस्टिपल्ल माफ़ सोशल रिफ़ॉर्मिज़्म' पृ ६०।

३. इस सम्बन्ध में वे डब्ल्यू स्मॉथ के परिखायेसिशन सोसाइटी में मार्च १९१५ में दिये गए एक लेक्चर-नोट "रिपब्लिकनियम एवड वाकिडिफ़िड" को देखें।

४. स्विन लेक्चर बोरोस की पुस्तक L. Armie Nouvelle देखें। जर्मनी अनुवाद विमार्कोली एंड मिनिस्ट्री सर्विस के नाम से भी० की ऑर्गेनल में किया है। लेनन का डिस्टिपल्लियम एंड ऐन्टी डिस्टिपल्लियम, भाग दो अध्याय ९ देखें। अन्य रसक नहीं कि इसके विचार दूसरों के लिए भी आवश्यक हों।

हानिप्रसन्न शरमहीमाधों से बच सकते हैं और इस तरह सामान्य हित का विचार भी प्रभावपूर्ण हो सकता है। अन्य पक्षियों की तरह इसकी

५. राज्य : सामाजिक बुद्धि भी प्राकृतिक और अन्यायपूर्ण है यह केवल एक एकता के रूप में

प्राकृतिक उपकरण नहीं है परन्तु प्रायः पक्षियों की भाँति इसके विशेष कार्य और इसकी विशेष सीमाएँ हैं। मानवीय हित और उसके साधनों की पूर्ति इसके लिए स्वाभाविक है। चीन ने हमें यह विचार दिया है और इसी विचार को मैंने इस पुस्तक में प्रतिपादित करन की चेष्टा की है। डॉ. बोसाके का विचार भी मुझे इससे मेल खाता सीखता है। परन्तु मैं सोचता हूँ कि बोसाके हेनेस के पुराने सिद्धान्त की ओर अधिक प्रवृत्त हुए हैं। चीन ने हीनेस के सिद्धान्त में स. सर्वोत्तम सार को ग्रहण किया है। वह हीनेस की तरह एक बड़ा दार्शनिक नहीं था जैसे कि बर्डस्वर्थ गेटे जैसा महान् कवि नहीं था। परन्तु इन दोनों मामलों में सोचते समय हमें अपने दिम में कुछ कारणाँ से प्रसन्नोप नहीं होता। परन्तु बोसाके के विचारों में सही और हीगस के विचारों से बहुत अधिक प्रसन्न है। क्विटिप प्रजा स्यायक व्यवहारशास्त्रों को पूर्णता से ग्रहण करने में जमनी की बराबरी नहीं कर सकती। इसी तरह वह प्रसन्न से स्पष्टता में भी निम्न है परन्तु वह कभी-कभी उन दोनों से अधिक समुचित उतरती है। यद्यपि इस प्रकार के समुल्लस में हमसुल्लस और समपत्ति होती है फिर भी यह सदा कमबोरी का चिह्न नहीं है। हम ब्रह्माण्ड की तरह मानवसमाज का ढाँचा भी बहुत जटिल है और उसे विभिन्न पक्षों और दृष्टिकोणों से देखा जाना चाहिए। मैं यह सत्य स्वीकार करता हूँ कि डॉ. बोसाके ने राज्य सम्बन्धी व्यवहारशास्त्र पर जो विशेष बल दिया है वह उस व्यक्तिवाद के विभाग के लिए अन्यायपूर्ण था जो आज भी हमारे लिए एक स्थायी पाप बना हुआ है।

२. सर हेनरी बेन्टल अपनी पुस्तक 'दि वर्ल्डिन्गेन ऑफ दि सोशल रिवायर्स' पृ. २१२ में कहते हैं कि वह फेरो और बरलू के मूल विचारों का एक बोधापूर्ण आधुनिक रूप है।

३. मेयरबर्ग की पुस्तक 'कॉन्सुनिटी' पृ. १०१। हेनेस को उसके अपने देश में ही प्रतिपन्न पार का राज्य बहुरत व्यवसायिक किया गया।

पञ्चम अध्याय न्याय

को कुछ पढ़ने कहा जा चुका है उसके आधार पर हमें यह मान लेना चाहिए कि एक सुव्यवस्थित राज्य का मूल उद्देश्य अपनी सीमाओं में न्याय स्थापना और अक्षयी रखा करना होता है। परन्तु

१ न्याय सम्बन्धी न्याय-सम्बन्धी धनधारण को स्पष्ट करना सरल कार्य सामान्य धनधारण नहीं। मूलतः इस शब्द का अर्थ किसी शासन-व्यक्ति द्वारा किया गया धारण होता है। यद्यपि कुछ लोग जेने के 'थ्रैसिमैक' के थ्रैसिमैकस (Thrasymachus) की तरह यह प्रतिपादित करते हैं कि न्याय सामान्यतः कुछ शक्तिशाली लोगों की स्वार्थ-सिद्धि के प्रतिरिक्त कुछ नहीं है। शक्तिशाली लोगों से यहाँ अर्थ उन लोगों से है जिनके हाथ में सत्ता होती है। यह विचार बर्गवर्ष द्वारा रोम रोम के प्रति कहे गए सामान्य सिद्धांत के साथ ठीक से नहीं खाता—

शुभ नुरातन नियम एकल मोखनार्थ
अपने हाथों में रखें उन्हें वे ही जो हैं अशिक्षाली
और रखा करे उनको वे ही जो हैं पूर्ण तान्त्र्यवान् १

यह इस माय्यता में भिन्न है कि सभी मानव एक अनुपाय के सदस्य हैं और वे नियन्त्रण रखने वाली शक्ति के अधीन रहते हैं परन्तु यह उसी शासन-व्यक्ति के सम्बन्ध को बतलाता है जिसके द्वारा रोम रोम को निर्दिष्ट विद्या माता गया है। फिर यह मान लेने पर भी कि न्याय शक्तिशाली लोगों की स्वार्थ पूर्ति का साधन होता है प्रश्न उठता है कि शक्तिशाली लोगों का वास्तविक न्याय क्या है? फिर शक्तिशाली लोग भी तो मानव होते हैं, इससे फिर एक दूसरा महान् प्रश्न उठता है कि मानव का अन्तिम हित क्या है? फिर यदि हम धार्ये

१. The good old rule the simple plan
That they should take who have the power
And they should keep who can

—Wordsworth

२. वह शक्ति की शक्तिशाली की प्रथम दुलक का प्रमुख विवर है।

यह मानने की भेष्टा कर और हमें प्रबन्ध करनी भी चाहिए कि एक साधन शक्ति का कर्तव्य अपने स्वार्थों को पूर्ति करना नहीं है परन्तु उसका कर्तव्य सब लोगों के हित की पूर्ति करना है। इससे यह और स्पष्ट हो उठता है कि प्रच्छन्न समस्या यह है कि मानव हित का निर्माण कब हो। यह एक कठिन समस्या है इसका विवसेपण करना नीतिशास्त्र का कार्य है।^१ यहाँ केवल इतना ध्यान में रखना ही आवश्यक होया कि प्रच्छन्नता कबवाए शुभ भारत-साक्षात्कार जीवन-विकास तथा धर्म ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ उस हित का विवण करती हैं जो मानव मान का सदय है। यह कहना नसत नहीं होना कि यह उन धर्मशास्त्रों की पूर्ति है जो स्पष्ट रूप से मानवीय है। धर्म मान का अभिप्राय साधन शक्ति की स्वार्थ की पूर्ति के लिए बिये गए धार्य नहीं है धर्मिजिन नागरिकों पर यह साधन करती है उनके हित के लिए बिये गए धार्यो से लिखा जाना चाहिए। यहाँ बाड़ा-या परिवर्तन पर्याप्त होया कि साधन शक्ति स्वतः नागरिकों का हित नहीं कर सकती अधिकांश हित की प्राप्ति व्यक्तियों के अपने प्रयत्नों से होती है। यह भी कहा जा सकता है कि उनके प्रयत्न उनके हित के एक अंश होत है। उदाहरणस्वरूप कहा जाया है कि सत्य प्राप्ति की धोधा उसका अनुशीलन ही अत्युत्तम है। यद्यपि यह संवेह्यस्वरूप है फिर भी ऐसा भी सगता है कि जिन वस्तुओं को मनुष्य प्राप्त करना चाहता है उनका महत्त्व उनके गुण दोष विवेचन और समय पर धार्या रित होया है। धर्म कोई भी बाह्य-शक्ति उनकी पूर्ति करने में समर्थ नहीं हा सकती। इसलिये हमें यहाँ पूछने को यह नहीं रख जाता कि जनता के हित को कैसे प्राप्त किया जाता है? वरन् पूछना यह है कि साधन-शक्ति उस शुभ को प्राप्त करने में कितना प्रभाव डाल सकती है? यह कुछ सीमित सा ही प्रयत्न है फिर भी काफी बड़ा और अनुसन्धानात्मक है।

इस प्रयत्न का सामान्य उत्तर यही हो सकता है कि राज्य-सत्ता प्रत्येक हित की प्राप्ति में समर्थ होती है। परन्तु यह नागरिकों के सर्वोत्तम हित के लिए उन्नत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और रखा कर सकती है। धरन्तु में इस समस्या के दो अर्थवा यह कहना ठीक होगा कि तीन प्रमुख पहलुओं की धोर अन्तर्गत लिया है^२। प्रथम प्रयत्न यह है कि समाज का सर्वोत्तम प्रवचन क्या है जिसे राज्य स्थापित कर सकता है? दूसरा प्रयत्न यह है कि परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों में इसकी रक्षा अपनी प्रचार से कैसे हो सकती है? और तानरा यह कि जब हममें बाधा या पड़ती है तो उसे सबसे अच्छी तरह कैसे

१ मनुष्य का कर्तव्य धर्मिजिन।

२ पृ. ४-५, अध्याय २५।

की कक्षा का उच्छ्रिता है ? परन्तु के अनुसार प्रथम प्रश्न विचारण-सम्बन्धी न्याय और धर्म को प्रथम शोधक न्याय से सम्बन्धित है । शोधक न्याय को फिर बनने और प्रतिशोध की विभिन्न विचारधारामों के रूप में परन्तु की तरह प्रस्तुत करना बांझनीय प्रतीत होता है । परन्तु वहाँ विचारण-सम्बन्धी न्याय और शोधक न्याय से शारम्भ करना ही उत्तम रहेगा ।

यहाँ मूम प्रश्न यह है कि सब लोगों के अधिकारिक हित की प्राप्ति के लिए समाज का उत्तम प्रकाश क्या है ? इसके धर्मकों उत्तर हैं परन्तु उन सबकी व्याख्या वर्तमान धीमा के बाहर की बात है । वहाँ यह २ विचारण सम्बन्धी कहेला पर्याप्त होगा कि प्लेटो ने इसका जो उत्तर दिया है वह सबसे अच्छा सामान्य उत्तर प्रतीत होता है । उसके अनुसार समाज का सर्वोत्तम प्रकाश यह है

जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार उच्च स्थिति में रखा जाता है जिसके लिए वह पूर्णतया योग्य है और उच्च कार्य की पूर्ति के लिए उसे भावश्यक सामग्री और साधन दिये जाते हैं । इसे हम विचारण-सम्बन्धी न्याय की आधारभूत धर्म धारणा के रूप में स्वीकार करते हैं फिर भी इसमें कुछ विशेषताओं और योग्यताओं को जोड़ देना अधिक उचित रहेगा ।

सबसे पहले यह स्वीकार करने योग्य बात है कि किसी भी सामुदायिक विस्तृत राज्य में प्लेटो की व्यवधारणा में निहित सभी कुछ प्राप्त करना समभव नहीं । यह भी सत्येहास्य है कि क्या वह बात उस छोटे से समुदाय में भी सम्भव है जो प्लेटो के विचार में थी । यह सत्य है कि उसे प्राप्त करना प्रत्येक समाज का लक्ष्य होना चाहिए और कोई समाज उसे प्राप्त नहीं कर लेता तो यह उसके प्रति कुछ संशयों में प्रस्थान ही होता है । फिर वह भी सत्य है कि सभी सदस्यों की एक रूप से प्राप्त कर लेना संभव है और कम से कम उसे प्लेटो ने बहुत अच्छी तरह से जान लिया था । उदाहरणस्वरूप भौतिककाम का यह ध्येय है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ हो पर होता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति निरक्षर ही उसमें सम्पूर्ण होता है । इस तरह न्याय के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है । राज्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसकी योग्यतानुसार उचित स्थान उपलब्ध नहीं कर सकता, परन्तु कुछ संशयों में यह स्पष्ट कर सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति की योग्यतानुसार स्थान की खोज और उस पाने में किसी प्रकार की बाधा उसके मार्ग में न आए । शिक्षा द्वारा उसकी प्राप्ति के लिए उसकी क्षमताओं के विकास में सहायक हो सकता है । इसी तरह भूमि प्राप्ति के अधिकार सम-विधिमय और इसी तरह के धर्म साधनों के विधान में सहायक हो सकता है । परन्तु इन सहायताओं के साथ ही जातिगत के कथन, 'निर्बन्धता के बोध से उत्पन्न बहुत सीमा होता है । ये स्थायी प्रभाव रहेगा और वह हम धारणा करते हैं कि केटरटन

की भी बटमा फिर नहीं होगी। इस तरह राज्य यह प्रामा नहीं कर सकता कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार स्थान प्राप्त कर भी सता है तो वह अपने कार्यों को उचित प्रकार से पूर्ण करेगा। परन्तु वह सर्वोत्तम और निरीक्षण की विधियाँ बानू कर सकता है तथा वह उचित शिक्षा बानू कर सकता है जो कि प्राकृतिक धक्तियों का विकास ही नहीं करेगी धपिन्तु उसमें कुछ नापरिक बाधित्व की भावना भी नर बैगी। निस्सन्देह प्लेटो की योजना का यह आबन्धक भाग बा। फिर राज्य यह आबसास नहीं दे सकता कि वह प्रत्येक व्यक्ति ने कार्य की पूर्ति के लिए आबन्धक सामग्री और साधन जुटा दगा परन्तु वह कम से कम इतना कर सकता है कि नरम निर्धनता को दूर कर दे जो जनकी प्राप्ति में बाधक है और उसके पास इतना नर भी इच्छुा होने दे जो जन साधनों को ध्वंस नष्ट करने के प्रलोभन में फलन है। वह उनके लिए उचित आवास व्यवस्था जम और विद्युत् का उचित सम्पान पुस्तकालय कला-संघहासय तथा यात्रा धादि की सुविधाएँ दे सकता है और उन्हें मभी क लिए प्राय भी नर सकता है। प्लेटो भी अपनी योजनाओं की पूर्ति के लिए इन प्रकार की सहायता ने महत्त्व से धपरिधिग नहीं बा।

प्लेटो द्वारा निर्धारित सामान्य निश्चालन की दूसरी धर्तृता जो राज्य नियमों में निहित है प्रायक व्यक्ति पर प्रयुक्त नहीं की जा सकती। राज्य के कानून बैठा कि धररन्तु ने कहा है 'सामान्यतः वही कुछ प्रयान कर सक्त है जो लोगों के निय सर्वोत्तम होता है। यह छोटे ब्रीक नमुदाय की धरेसा धाधुमिक विद्यास राज्यो के लिए यह धक्तिक सही है। उदाहरण के लिए एक राज्य के द्वारा देवनापीयर बरन्धर्ब धबबा बाट के योग्य सर्वोत्तम पिता की जाने की धागा नहीं की जा सकती। इतन भी सन्देह है कि कोई व्यक्तिगत सत्सा ऐना करने में सधर्ब हो सकती हो और इती तरह कोई राज्य भी किसी लेसे धपरिधार स्वल्प धियय के लिए जो कुछ ही धर्ता में सामान्य न प्रबन्ध होता है धियेय प्रबन्ध नहीं नर सक्त है धब तक उन बहुत ने मोय न बाहुन हों। उदाहरण के लिए इन भूमि की धाय का धियय से सक्त है। कभी-कभीविद्याल सम्पत्तिका सबसे बड़ सङ्के का प्राप्ति होती है। जिन धारसी के ज्ञान बड़ सम्पत्ति धागा है तथा वह उसका उपयोग जमता के लिए ने नरेगा? धब यह जानह धाने नहीं है कि नरेव लेना नहीं हाना। परन्तु यह कहा जा सक्त है कि किसी धाय सुनिश्चित प्रबन्ध

१. धिक्क धबद २. कल्याण १७। प्लेटो ने इन धर धरने धबने धरेधुनन १०-२. २ में धानी धन िका है।

२. यह धरेधन बड़ उदाहरण के रूप में लेया नरा है। यह इन विद्या-का धपरिधुनन निधय बधातक हो सक्त है बस धर विरन्धनय धयिन कय ने वहां नहीं धिया-नरना है। इतना धपर आबन्धक कय से नरनगी दूर धरिधिनियो धर धाधालि है।

द्वारा प्रथम अन्वेषण करि लाने की प्राप्ति हो सकती है। वह भी हो सकता है कि बन्दारे से सम्पत्ति के छोटे छोटे टुकड़े ही रह जायें। बड़े लड़के को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाने का आचार यह भी हो सकता है कि अन्वेषण की प्रयत्ना नहीं संतोषप्रसन्नता से उस काम को कर सकते। इसी प्रकार का तर्क राजतन्त्र के अन्तर्गत होने के सिद्धान्त के सम्बन्ध में भी दिया जा सकता है। यहाँ भी यहो कहा जा सकता है कि इसमें सामान्य सर्वोत्तम परिणामों की प्राप्ति नहीं की जा सकती। दूसरी ओर यदि भूमि के मामले में सम्पत्ति के स्वामित्व की पद्धति अथवा धासक के सम्बन्ध में निर्दिष्ट राष्ट्रपति की पद्धति को अपनाया जाए तो यह भी निर्दिष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति के उदाहरण में के निर्दिष्ट भी सर्वोत्तम सिद्ध नहीं होंगी। सामान्यतः उनके लोको के लिए जो सामान्य हित की बात है कायम है सकता है व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान कैसे हो यह एक पृथक प्रश्न है।

एक और दूसरी प्राप्ति लाने के सिद्धान्त के सम्बन्ध में उदाहरण भी मानी है। यह कहा जा सकता है कि इससे व्यक्तिगत जीवन राज्य के कार्य के लिए अभीष्ट कर दिया जाता है। एक व्यक्ति का कार्य विश्व समाज में बड़ा होता है उससे सीधा जुड़ा हुआ होता चाहिए और संसार के लिए वह अत्यन्त महत्त्व का हो सकता है। स्थितियों का दर्शन किसी एक देश-विशेष के लिए न होकर सारे विश्व के लिए है। इस सम्प्रविष्ट में अद्यत्त अस्तित्व मूर्त्याकार करने वाले व्यक्ति बहुत ही कम है। इसी प्रकार की बात संभवतः वास्तविक के व्याकरणशास्त्री तथा अनेक महान् पण्डितों कलाकारों तथा अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। और यह भी कहा जा सकता है कि बुद्धिमान राज्य ऐसे कार्यों को प्रोत्साहन दे जो उसकी संस्कृति विकास और उत्थान की दिशा में आरंभ करवाते हैं। जैतों इस बात को अस्वीकार करता परन्तु यह कहा जा सकता है कि यदि उसके सिद्धान्त को अत्यन्त रूप दिया जाए तो उसमें यह बात नहीं घायली। फिर, सेवा के प्रयोग होने की स्थिति में यह कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा अपने नागरिकों का ध्यान रखना आवश्यक अर्थात् है। यहाँ निर्दिष्ट रूप से जैतों के विचार विन्म हैं। यह अर्थ ही यह कहता प्रतीत होता है कि जैसे ही कोई व्यक्ति अपने विशेष कार्य को करने में प्रसन्न है या जाता है अथवा ही प्रसन्नता अर्थव्ययी हो उसे अपने धाम पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। प्राक्कन बहुत से लोग इस सिद्धान्त को अमान्यता से अस्वीकार करते हैं। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि राज्य का यह अर्थ नहीं कि वह अर्थव्ययी लोगों की सेवा करता ठिरे अर्थात् यह कार्य तो व्यक्तिगत अथवा सामिक संस्थाओं का है, कि वे ऐसे लोगों का प्रबन्धन करेगा प्रसन्न है जिस पर हम बाद में विचार करेंगे।

इस धारणियों और प्रवृत्तियों में कितना भी बल क्यों न हो परन्तु हममें उम्मेद नहीं है कि प्लेटो का सिद्धान्त हमारे चित्त पर न्याय के सिद्धान्त का सही आधार प्रस्तुत करता है।

यदि किसी विधेय समुदाय से चित्त पर न्याय की प्राप्ति हो चुकी है तो उसमें बाधा डालने वाली विविध परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। इन्हीं

बाधाओं को दूर करके सही मार्ग ही हम परन्तु
 ३. शोषक न्याय के शोषक न्याय में मिलता है।^१ बाधाएँ घबरा घड़-
 बड़ किसी आकस्मिक घटना (अर्थात् किन्हीं व्यक्तियों
 द्वारा नहीं) व्यक्तिगत समझौते घबरा किसी व्यक्ति घबरा
 व्यक्ति समूह द्वारा विभिन्न ढंगों पर उपस्थित हो सकती है। व्यक्ति घबरा
 व्यक्ति-समूह विभिन्न समुदायों के हो सकते हैं। इस तरह यह अन्तर्राष्ट्रीय बलों से
 सम्बन्धित प्रश्न है जिस पर विचार इस समय स्थापित कर देना ही उचित है।
 दुर्घटनाओं की दृष्टिपूर्ति बड़ा घरा में बीजे द्वारा की जा सकती है और कभी
 इसका विधान राज्य द्वारा भी किया जाता है। समझौते के बारे में विनिमय
 सम्बन्धी न्याय के रूप में छोटे बहुत बड़ी तरह से प्रकार डाला गया है।
 व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे को पहुँचाई गई शक्ति एक ऐसा व्यवस्था
 है जिसका मरदान में शीघ्र सम्बन्ध होता है। अति में अधिकतर लक्षितार्थ
 मूल घबरा व्यक्तिगत हिंसा (जो आधुनिक घबरा शारीरिक हो सकती है) प्रादि बाधे
 जाती है। शक्तिवाचक की पूर्ति घबरा समय घबरा की दृष्टिपूर्ति करके की जा सकती
 है यदि समय की शक्ति घातक निम्न होती है घबरा मात्र की प्राप्ति भी नहीं
 की जा सकती तो यह सब व्यक्तिगत अति में घबरा। मूल के सम्बन्ध में भी यही
 बात है। सामान्यतः व्यक्तिगत शक्तियों घबरा शक्तियों की दृष्टिपूर्ति नहीं की
 जा सकती। शक्ति की पुनः प्राप्ति नहीं हो सकती और उसके बाधक की कोई शक्ति
 की भी नहीं जा सकती। यह सिद्धान्त कि शक्ति के लिए शक्ति और शक्ति के
 लिए शक्ति दृष्टि-पूर्ति करने वाली बात नहीं घबरा एक प्रतिशोध है और
 दो घबराओं में एक घबराई पैदा नहीं हो सकती। घन एक राज्य का यही
 कार्य हो सकता है कि वह एक प्रकार की घबराओं मरदान के निम्न माध्यमों
 (पारसी) द्वारा विविध तरह विधियाँ द्वारा आदर्श शक्तियों घबरा घातक घबरा
 प्रादि पर प्रतिशोध लनाकर और शक्ति निम्न का प्रबन्ध करके रोडने का
 प्रयत्न करे। इस प्रकार के शक्तियों पर विचार करना हमारे शक्ति के बाहर की
 बात है। परन्तु विविध घबरा करने में न्याय पुरस्कार घबरा दृष्टि के
 रवाना व सम्बन्ध में कुछ विधियाँ आकस्मिक प्रतीत होना है। परन्तु का इत

विषय में विनिमय कई वस्तुओं से सम्पन्न रहा है। उन्होंने व्यक्तिगत हानि और उसके लिए बिना नए वस्तु को विनिमय एवं सतिपूर्ति के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सोविक म्याम के प्रत्यक्ष विनिमय-सम्बन्धी म्याम को प्रस्तुत करना आमक होगा।^१ इसको इस तरह विचार का अर्थ यह मानना होगा कि मूलतः वितरित क्रिय जाने वाले पदार्थ पूर्णतः विविध होते हैं और यह विनिमय इस निर्लक्ष्य में एक बाधा ही पहुँचाएगा। साम्यविक रूप में होने वाले प्रतिकार विनिमय सेवाओं के विनिमय के रूप में हुआ करते हैं और वे वितरण के एक आवश्यक भाग हैं। यदि कार्य से बेका जाए तो लोग अपने बीमारों पर ध्यान उत्पादन के साधना का विनिमय नहीं करते बल्कि अपने मन द्वारा उत्पादित चीजों का विनिमय करते हैं। इस प्रकार के विनिमय द्वारा ही वे भोजन वस्त्र तथा जीवन-निर्वाह सम्बन्धी अन्य आवश्यक वस्तुएं प्राप्त करते हैं। इसलिए विनिमय सम्बन्धी समस्या वितरण म्याम से सम्बन्धित समस्याओं का एक भाग है। इस तरह राम्य को वितरण-सम्बन्धी वस्तु के लिए अधिक रूप से नयन करना चाहिए ताकि इससे भूमि तथा अन्य स्थायी सम्पत्तियों के वितरण में सुविधा हो। राम्य ऐसे क्रम भी ठठा सकता है कि नागरिक सभी आवश्यक पदार्थों को आवश्यक मात्रा में उत्पन्न करे ताकि प्रत्येक की आवश्यकताओं का संतुलन हो सके। कुछ सेवकों ने ऐसे धारण समुदाय की रूपरेखा भी बनाई का प्रयास किया है जिसमें यह सब कुछ हो। परन्तु यह सन्देह स्पष्ट ही है कि कोई अतिमत्तापूर्ण समाज के लिए ऐसी किसी योजना को बनाएगा जो व्यावहारिक रूप से ठीक बैठ सके। ऐसी योजनाओं को छोड़ कर कुछ लोगों ने अपनी परिस्थिति के अनुसार समायोजन के लिए बलाऊ रूप का काम किया है तथा उन्होंने अपनी आवश्यकता के अनुसार अपनी उत्पादित वस्तुओं के विनिमय द्वारा अपनी वस्तुओं को प्राप्त किया है। इस तरह के विनिमयों में सुविधा पैदा करने के लिए मुद्रा जमानत और विविध प्रकार के ऋण की पठितियाँ बनायी गईं और धर्म में एक अद्विष्ट वेक-पद्धति को जन्म दिया गया। इस विस्तृत पद्धति की सहायता से मॉन मॉन सम्भरण की समस्याएँ बँस हल होती हैं इन सबका विनिमय अर्थ धारण का विषय है। हमारा इन समस्याओं से यहाँ कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यहाँ सम्बन्धित प्रत्येक वस्तुओं में म्याम से है जिसके कारण हमें यह बोझ-सा विनिमय करना पड़ा। यदि म्याम के सम्बन्ध में हमारी सामान्य प्रवृत्तियाँ सही हैं तो अधिक स्वरथा का यह प्रव

१. अरधू ने इस बातों का अन्तर स्पष्ट रूप से लिखा है।

हाना कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार अच्छी तरह से कार्य करे और अपने कार्य को ठीक ढंग से चालू रखने के लिए अपने जीवन निर्वाह-सम्बन्धी वस्तुओं की बर्तन प्राप्त करता रहे। उसकी आवश्यकताओं में हम उनके परिवार की आवश्यकताओं की भी सम्मिलित कर सकते हैं और जब से कम उनके व्ययों की प्रारम्भिक विद्या तो संभव ही उसमें आनी चाहिए। अब यह स्पष्ट है कि मान और सम्मरण के कार्य के सम्बन्ध में हठना के साथ नहीं कहा जा सकता कि बर्तन न्याय वा सही व्यय यही होना। अधिक से अधिक इनका कहा जा सकता है कि हमारे भी कुछ मोटे रूप में ऐसा ही होता है जैसा किसी भी सामान्य तरीके से आता की जा सकती है। मान और सम्मरण कार्य की सफल करने में निम्न प्रमुख दोष होते हैं—

- (घ) लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार काम नहीं मिलता।
 - (घा) वे उसमें अपनी पूरी शक्ति नहीं लगाते।
 - (ङ) कभी एक ही काम के लिए अनेको लोग उपलब्ध होते हैं और काम जाकों के लिए लोग मिलते ही नहीं।
 - (च) लोगों की मान कमी-कमी उनकी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं होती कमी-कमी ऐसी मान करने हैं जो उनके लिए हानिप्रद होती है।
 - (छ) कमी-कमी भूमिदान वस्तुओं की मान बहुत कम होती है।
- इन दोषों को दूर करने के निम्नलिखित उपाय प्रस्तुत किये जा सकते हैं—
- (घ) तकनीकी प्रशिक्षण के लिए अच्छी विधियाँ
 - (घा) समतापूर्ण समिक व्यवस्था
 - (ङ) कुछ अर्थव्यय आवश्यक वस्तुओं का सम्पूर्ण सरकारी नियन्त्रण
 - (च) अपना हानिप्रद वस्तुओं पर प्रतिबन्ध व्यवस्था टैपस
 - (छ) पचास मूर्तों के मुण दोष विवेचन की शिष्टा शक्ति।
- इन तरीके के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचारना हमारी सीमा से बाहर की बात है परन्तु आगे बतकर कुछ कहा जा सकता है।

पुरस्कार एवं दण्ड का सबसे अच्छा सामाजिक महत्त्व हम इसी में देख सकते हैं कि वहीवृत्ति व्यवस्था अन्वीवृत्ति के अर्थों के रूप में चलने और मानि मूर्तों के परिणामों के द्वारा निर्मित होना है।

१. बुराचार और बन्ध धामनीर पर पुरस्कार से प्रकल्पना होती है जब दण्ड भीका बाधक होता है परन्तु गर्दब ऐसा नहीं होगा। एक अनुभव उत गन्ध बुराचार सेना व्यवस्था बाधक न होगा जब वह यह सोचेगा कि उसने अपने वर्तमान-वृत्ति से धनिरिकण कुछ भी नहीं बिदा फिर भी कार्य वृत्ति के प्रमाण रूप में एक बिन्दु देना सामाजिक महत्त्व एक सकता है। इसी तरह यदि अनप्य दण्ड विधान पर प्रकल्प भी हो सकता है यदि वह उसे उचित रूप

संज्ञा है। कोई यह भी सोच सकता है कि वह बण्ड पान का अधिकारी है और किसी बाह्य-शक्ति द्वारा बण्ड न बिना पान पर वह स्वयं अपने धायको बण्ड से सकता है और प्रायश्चित्त द्वारा संतोष प्राप्त कर सकता है।

जब अस्ति प्रथवा नास्ति मुख्य सामान्यतः क्षतिपूर्ति के रूप में प्रदान किए जाते हैं तो उन्हें पुरस्कार प्रथवा बण्ड के रूप में बखित करना उचित नहीं। बा आनसन को ही पाने वाली पन्ना निस्सम्बेह प्रथम अनुमोदन का ही रूप या परन्तु प्रथम यह इस बात की स्वीकृति भी है कि उसे उसके कार्यों के लिए उचित रूप में प्रदायनी नहीं की गई। दूसरी ओर जब किसी क्षतिपूर्ति के लिए कहा जाता है तो वह भी कुछ अर्थों में आस्पक्ति-भूगतान के रूप में होती है, यद्यपि उनका मतसब अनुमोदन भी होता है। अतः प्रथम का पुरस्कार और बण्ड के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में किया गया विश्लेषण प्रसन्तोषजनक है और कई बार तो विस्तृत अनुचित भी प्रतीत होता है।

पशुओं को दिये गए पुरस्कार और बण्ड के प्रति भी यह बात नहीं कह सकते। वे प्रायः पशुओं को कुछ कार्यों के करने और कुछ कार्यों से विमुक्त होना की शिक्षा के मतसब से दिये जाते हैं। पशुओं के साधारण जीवन में इस तरह की पूर्ति तो उनकी सफलता तथा प्रसन्नता के रूप में ही जाती है जो प्रायः सुख और कुशल के रूप में उन्हें प्राप्त होती है और वह उन्हें कुछ कार्य करने और न करने की शिक्षा भी देती रहती है। पशुओं से तथाकथित पुरस्कारों और बण्डों द्वारा नहीं परिणाम चाहना एक अप्राकृतिक बात है। मुख्यतः पशुओं को दिये जाने वाले पुरस्कार और बण्ड भी इसी तरह के होते हैं। यह उनके कार्यों के अनुमोदन प्रथवा अनुमोदन की बजाय भावोद्दीपन के लिए होते हैं। उनकी तुलना यद्यपि सामने बाहर लटकाने प्रथवा बोझों को एक लगाने से भी जा सकती है। इन्हें कठिनाई से ही पुरस्कार प्रथवा बण्ड कहा जा सकता है यद्यपि उनमें अनुमोदन प्रथवा अनुमोदन के कुछ तत्व होते हैं पर ऐसे मामलों में तो बहुत ही कम। इसके विपरीत जब मेस्सन की प्रत्यक्ष-प्रतिमा स्थापित की जाती है प्रथवा प्रायश्चित्त अभिषेक की प्रस्थिति में से बाहर कर फाँसी पर लटका दी जाती है तो यह दोनों काम अनुमोदन प्रथवा अनुमोदन के रूप में किये जाते हैं परन्तु उन्हें बण्ड प्रथवा पुरस्कार के रूप में भी बखित किया जा सकता है, यद्यपि इन दोनों सम्बन्धित व्यक्तियों को इससे न प्रसन्नता हुई और न पीड़ा।

इस प्रकार पुरस्कार और बण्ड विषयक स्वाय की जानकारी प्राप्त करते समय पाठक को इन दोनों अर्थों का अन्तर ध्यान में रखना चाहिए। जब हम क्षतिपूर्ति (उदाहरणस्वरूप नागरिक क्षति प्रायश्चित्त के रूप में पूर्व वर्णित) की बात करते हैं तो उससे सामान्य सिद्धान्त काफी स्पष्ट हो जाता है। वह एक

पौषक भाव का विषय है। पंथा कि धरतू ने तिका है। उनका यह प्रभाव
 यह सिद्धान्त के समान ही कहा जा सकता है जिसके अनुसार जिस व्यक्ति
 के पास बहुत कम है उसे दिया जाए और जिसके पास बहुत अधिक है उससे
 लें लिया जाए।" परन्तु इस मामले में सर्वत्र अनिर्णय की उही भाषा का अनु-
 मान अपनाया करना काम नहीं। विशेषतः कुछ मामलों में ठीक बराबर की वृत्ति
 पूर्ण शौकना असम्भव है। परन्तु यही ठीक पर इस तरह काम करना सामान्यतः
 स्पष्ट है। इसके विपरीत जब पुरस्कार और दण्ड उद्दीष्टक के रूप में बहस किये
 जाते हैं तो उनके उत्पन्न एक विशेष उद्देश्य सिद्धि की कामना होती है।
 यह मान लेने पर कि वह लक्ष्य अपने साथ में सुख है और दिये जाने वाला
 पुरस्कार भवना दण्ड उत्पत्ति में सहायक होना तो उनका औचित्य सिद्ध हो
 सकता है। यदि बच्चों को किसी वाच्यपूर्ण कार्य भवना सेवा के लिए प्रोत्सा-
 हित देना हमारे लिए उचित है तो उन्हें उत्साहित करने के लिए प्रभावशाली-
 विधियाँ अपनाया भी अनुचित नहीं। बच्चों कि वे निर्दयतापूर्ण न हों। यदि बच्चों
 को विशेष प्रकार की शिक्षा और ज्ञान देना उचित है तो उन्हें उत्साहित करने
 के लिए ऐसी विधियाँ अपनाया भी अनुचित नहीं परन्तु वे भी निर्दयतापूर्ण
 और अपमानजनक न हों। बच्चों के सम्बन्ध में ऐसा साम्य चुनने का औचित्य
 सम्यक्साक्षर है। बिले वे स्वयं अपने लिए कदम नहीं करते परन्तु सामान्यतापूर्ण
 के सम्बन्ध में ऐसी धारणा नहीं उठाने जा सकती। अतः पुरस्कार और दण्ड
 का उही धर्म के रूप में उद्देश्य अनुमोदन भवना अनुमोदन के लक्ष्य तथा
 धारणा को स्पष्ट करना है। पुरस्कार और दण्ड का औचित्य अभी सिद्ध हो
 सकता है जब वे उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वोत्तम ही और अनुमोदन
 भवना अनुमोदन अधिकारी व्यक्ति पर किया जाए।

पुरस्कार की अपेक्षा दण्ड के सम्बन्ध में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता
 है। बच्चों को सामान्यतः उनके अल्प कार्यों के लिए पुरस्कार दिया जाता है।
 तो यह नहीं माने बड़ने और प्रशंसा के लिए प्रयत्न होती है। उनका धर्म
 के लिए ही विशेष व्यवहार की आवश्यकता होती है। दण्ड के विभिन्न सिद्धान्त
 और उनके सम्बन्धित कार्य और उद्देश्य तो स्पष्ट ही हैं। उन्हें हम पहले ही
 बताना चुके हैं। उन लक्ष्य के लिए विचारक सिद्धान्त मायू होता है। धरतू का
 अनिर्णय भाषा सिद्धान्त तो केवल प्रथम बात के लिए ही मायू होता है। विचार-
 रणार्थ ६७६ सिद्धान्त प्राथमिक परिणामी सिद्धान्त जैसा लक्ष्य भवना होम्स
 ने प्रतिपादित किया है। वह हमारे प्रचार के सिद्धान्त के रूप में मायू होता है।
 अनिर्णय सिद्धान्त अपने मुवाशात्मक भवना शैक्षणिक धर्मों में तीसरे प्रकार के
 लिए मायू होता है। परन्तु इन सिद्धान्तों का विशेषतः समान-दर्शन की अपेक्षा

नीतिशास्त्र विधि-दर्शन और विद्या-शास्त्र से सम्बन्धित है। कम-से-कम हमारी इस परिधि से तो यह बाहर की बात है।^१

पूव कथन से यह स्पष्ट है कि जो बात कानूनी रूप से सही है वह व्यक्तिगत रूप से प्रथम विधेय मामलों में समाज के लिए सही नहीं हो सकती। कानून की सामान्यता के सिद्धान्त में विधेय परिस्थितियों पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। अतः ऐश्याना की बीच न्याय प्रवधानों से साम्य प्रवधारणा को प्रयुक्त

किया गया।^२ इस अर्थ में साम्यिक व्यवस्था जिसमें समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है, न्याय नहीं कहना सकती। अतः प्रथम में साम्यिक न्याय है यह कानून के लिए जानना असंभव ही नहीं बरन् सही निर्णय तक पहुँचने के लिए विधि विकासना भी कठिन है। निस्सन्देह कमी-कमी बीच निर्णयों में भी विधेय परिस्थितियों का ध्यान रखना सम्भव होता है। एक प्रपराधी ममुरय अनुकारक परिस्थितियों के कारण प्रसृत प्रथम प्राथिक रूप से अपने दोष से मुक्त हो सकता है। दूसरी तरह जानता-बुझता दुष्प्रयोग प्रथम भाषण बाह्य व्यक्ति प्रपरी प्राप्त बीच अधिकारों से वंचित किया जा सकता है। परन्तु इन प्रस्यष्ट विषयों पर बीच रूप से कुछ विचार नहीं किया जा सकता। अतः यह व्यक्तिगत रूप से लोगों प्रथम स्वच्छता से काम करने वाले संघों का कर्तव्य हो जाता है कि वे ऐसी बीच प्रयोगों को दूर करने में सहयोग दें। अर्थ प्राथि प्राथिक प्रथम उसी तरह की संस्थाएँ प्रथम उपकारी व्यक्ति लोगों के उन विधेय अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं जिनके लिए उनका बीच दावा नहीं होता। परन्तु ऐसी संस्थाएँ अनेक होती हैं और उनके निर्णयों में साम्य होना कठिन होता है। इस सम्बन्ध में कुछ प्राथिक विचार बाह्य में करेंगे।

यह ध्यान रहे कि साम्य (Equity) सब का अर्थ कुछ अमान्य प्रभाव डालने वाला है। यह समता (Equality) प्रत्ययक है। निस्सन्देह कुछ अर्थों में साम्यिक ही नहीं बीच भी साम्य ही होता है। दोनों का संबंध यही है कि एक तरह की बातों में एक ही तरीके से व्यवहार किया जाए। परन्तु जब बातें भिन्न भिन्न होती हैं तो उनमें समता नहीं मारी जा सकती। वास्तविकता का यह कथन प्रति सुन्दर है^३ कि मैं ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं करूँगा जिसका समान

१. अन्वेषणीय पुस्तकें प्रीत — मिनिशपलस अफ पोसिटिव अम्पियोगन बीनके रिजलसिफिकल एवरी अफ रि रेट, अज्वाब ८ ७; मेक्यगॉट एवरी अफ इव इमिनिशन अम्पोजाओ रेटलास एवरी अफ गुड एवव रैलस ८० २, अ १ ८० २, स्केमर : एन्वेषण' अ १।

२. अरन्टू अ १४ रि मिनिशपलस अफ रैरिअ एज्वावर" अ २ भी अन्वेषणीय है

३. अफ अफ रैरिअ एज्वावर" १४।

क्यों न धरना प्रतिबन्ध नहीं — सरकार स्वीकार नहीं किया जा सकता। यन्त्रा व्यक्ति अपनी चीसों के लिए कोई समप्रभावी वस्तु प्राप्त नहीं कर सकता। इसी तरह किसी प्रकार स समर्थ व्यक्ति कोई समप्रभावी प्राप्त नहीं कर सकता। पूर्वोक्त कथन स्थापित धरना कृत्रिम साधनों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है पर उते प्राकृतिक विभिन्नताओं के लिए नहीं और कभी कभी तो प्रथम के लिए भी ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर समता के सम्बन्ध में हम पुनरावृत्त धरने धर्याय में विचार करने।

बैच रूप से लोग राज्य धरना राज्य से सम्बन्धता प्राप्त अधिकारियों द्वारा प्रदत्त या स्वीकृत अधिकारों के भावी होते हैं। नैतिक रूप में उनके अधिकार पूर्व कृतित स्याय तथा साम्ब पैस विचारों द्वारा निश्चित ७ प्राकृतिक अधिकार होते हैं। यदि बैच तथा नैतिक अधिकार एक दूसरे के अनुरूप नहीं होते तो उनमें सुधार के लिए एक संभव साधन उपनाए जा सकते हैं। क्या सरकार के प्रति उचित प्रतिरोध बैच है या नहीं और यदि है तो किस परिस्थितियों में यह एक कृत्रिम प्ररत है। इनका हस्तोपजनक विरसेपल नहीं किया जा सकता। यहाँ जो कुछ कहा जा सकता है तो यही कि यह प्रराजकता की बुराइयों के सम्बन्ध पर धारण है—इस सम्बन्ध पर विनका कोई यथार्थ माप नहीं है परन्तु धातुमानिक धर्याय लगाया जा सकता है। हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए तो इतना ही मान लेना पर्याप्त होना कि एक सुस्पष्टिचत समुदाय के विभाग में कृतित अधिकारों की ही प्राकृतिक कहा जा सकता है परन्तु प्राकृतिक अधिकारों का मात्र विन्न धर्य में लिया जाता है। उनका सम्बन्ध विधी धातोमित राज्य के निर्माण से पूर्व वर्तमान प्राकृतिक राज्य की धर्यायस्था से आदा जाता है। उदाहरणसम्बन्ध हाम्ना का इस विषय पर सबसे अधिक निश्चित व धरिचित कथन है कि प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति का सब चीसों प्राप्त करने का अधिकार है धर्याय सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में बैच चाहता है बैच ही प्रयोग और उपयोग कर सकता है तथा यह उन्हें प्राप्त कर सकता है जिस व्यक्ति के प्रति यह धर्याय बैच चाहता है वे सकता है। यह पहले ही यह चुके हैं कि प्राकृतिक राज्य की धर्यायस्था वास्तविक है और यह भावने के लिए भी कोई यथार्थ धाधार दिवार्द नहीं देना कि एक सुस्पष्टिचत समुदाय का धरितत्व अनुप्य के लिए सम्बन्ध प्राकृतिक नहीं है। हम एक निश्चित व्यवस्था न पूर्व की प्राकृतिक कृतियों के बारे में सोच सकते हैं परन्तु वस्तुओं में भी तो प्राकृतिक कृतियाँ कुछ धरयोप उरान्न करती हैं फिर मानव में तो वे धरिक निश्चित रूप से इनके धरितनन-रुन धौर नावाय-रुन द्वारा प्राकृतिक रूप से धरयोप उरान्न करने कभी होपी नागम में यह कहना न्य है कि वही प्राकृतिक

व्यक्ति की निजी सम्पत्ति कहा जा सके और जिसके प्रयोग के लिए वह पूर्ण स्वतन्त्र होता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति पशु रख सकता है परन्तु उनके साथ निर्यथापुण व्यवहार करने के लिए वह स्वतन्त्र नहीं जैसे ही पशुमा को कोई वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं। वैधानिक कानूनों द्वारा तो मर्यादा हीन प्रयोग वस्तुओं तक को भी गामी बना निषिद्ध हो सकता है। यह कहा जा सकता है कि समुदाय अपने नागरिकों का जहाँ कुछ रखने की स्वीकृति देता है तो वह उन वस्तुओं के प्रति कुछ अधिकार भी देता है। परन्तु दूसरी तरफ वह भी कहा जा सकता है कि नागरिक जिस वस्तुओं का उपभोग करते हैं उनके प्रयोग सम्बन्धी कर्तव्यों का भी भ्रामक रूप इस सीमा तक तो प्येटो की प्रवचनार्थता पुष्ट मान्य है।

पष्ठम अध्याय सामाजिक आदर्श

मनुष्य जीवन के अन्त्य पहुँचों की तरह समाज भी उत्पन्न प्रगतिशील है।

समाज क्या होता है और उसका विकास कैसे होता है यह जानना हमारे लिए आवश्यक है। कुछ अर्थों तक यह बात उन सब चीजों

पर लागू होती है जो सीमित रहती बढ़ती हैं। परन्तु
सांख्यिक कहलक ने भी इसी बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

इनके अध्ययन के समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए

कि विकास के लिए समाज में अनन्त शक्ति होती है। परन्तु बहुत-सी आबादी की चीजों में यह शक्ति सीमित रूप में है। एक बीज एक विशेष प्रकार के बीजे के रूप में और एक भ्रूण एक विशेष प्रकार के पशु के रूप में परिवर्तित होते हैं और उनमें हर-छेद भी तुलनात्मक रूप में बहुत ही कम होता है। मानव के शारीरिक पहुँच के विषय में भी वही कहा जा सकता है। हम अपने शारीरिक ढाँचे में विचारपूर्वक यदि एक रसी नर भी डेर फल करना चाहें तो नहीं कर सकते और न हमारे स्वभाव और नैसर्गिक-सम्पत्ति और सामान्य विवेकताओं में कोई परिवर्तन संभव होता है। परन्तु इसके विपरीत हम मानव-जाति के विकास की संभावनाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार की सीमाएँ निर्दिष्ट नहीं कर सकते। हमारा ज्ञान अपने स्वयं और इस विश्व के सम्बन्ध में जिसमें हम रहते हैं मसीमित रूप में विकसित हो सकता है और हमारी नाभी भौतिक समस्याओं के निम्नलिखित और हमारे सामाजिक सम्बन्धों के विकास के लिए वर्तमान में ही अन्तःपरिष्कार उत्पन्न कर सकता है। इस सम्बन्ध में कम-से-कम इतना कहना सत्य है कि मनुष्य शक्तिशाली है और वह पूर्ण बनने की धारा करता है। निस्सन्देह यह सत्य हमें उसके सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने से रोकता है। कभी-कभी यह कहना भी सही है कि "मनुष्य कभी भी उठना माने नहीं बढ़ सकता जब तक उसे यह पता न हो कि वह कहाँ जा रहा है। फिर भी मनुष्य कुछ हद तक ध्यान दृष्टिपात कर सकता है और कुछ अर्थों में जिस सामान्य-विद्या की ओर वह बढ़ रहा होता है उसके सम्बन्ध में भी बता सकता

पूर्व साक्षित हो रहा है जो प्लेटो द्वारा दासत्व पर कठोरता के साथ मगाया गया था और उन्हें बाणिज्य और औद्योगिक वर्गों को दिये जाने वाले अनेक सामाजिक अधिकार दिए गए। कार्नाइस कहता है ' बुद्धिमान लोगों द्वारा साक्षित होना मूर्ख लोगों का विषयव्यतिकार है। धीरता-सम्बन्धी व्यवहारणा जो मध्यम के सामर्थ्य तथा आपान के समुदाय लोगों में पाई जाती है इसी तरह विशेषाधिकार के विपरीत प्रतिष्ठा-सन्तुलन को प्रदर्शित करती है। यह स्मरण रहे कि नाइट (Knight) शब्द का अर्थ मूलतः एक सेवक है और कुछ राजकुमारों का धार्मिक-व्यवसाय में सेवा करता है' वा। परन्तु जिस तरह एक मजदूरी पर काम करने वाला कठोर मूढ़ी को डक़ मिला है उसी तरह कमी-कमी एक दिनभर काम करने वाला भी परदा डाल देती है। फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अधिवात्य धार्य का उद्देश्य अधिवात्य ही है। एक सुविश्रुत धार्मिकता को मुक्ति से ही कमी उचित पुरस्कार मिला जाता है। एक नेता में योग्यता होना परम महत्त्व की बात है। एक दासक की योग्यता के पश्चात् (अर्थात् उसकी गणना पहले की जानी चाहिए) निष्ठा-साक्षी की योग्यता का सबसे अधिक महत्त्व है।

लोकतन्त्रप्रणमक-धार्य का कमी-कमी अधिवात्य समाज के निम्नवर्ग के दासक व्यवसाय (जगत्तम उसी मतलब वाले) बहुमत के दासक से लिया जाता है। इसी अर्थ में इस व्यवहारणा को प्लेटो तथा आधुनिक काल में लोकतन्त्रप्रणमक-धार्य में कार्नाइस रचित और इतरी नेत के समझ और उम पर प्राप्ति की। वे प्रॉन्टिन ने लोकतन्त्र की परिभाषा यह उद्देश्य जिसके साधन-अवयव में तुलनात्मक रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र का विभाज्य अंश भाग लेता हो' की है परन्तु इस धार्य के अधिवात्य इस परिभाषा को मुक्ति से ही सही मानेगे। राष्ट्रपति सिद्ध के प्रजा के लिए, प्रजा के द्वारा प्रजा की सरकार वाला वाक्यांश सामान्यतः सही परिभाषा के रूप में अधिक स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु इस अधिवात्य का प्रथम और अन्तिम भाग सभी धार्मिक सरकारों के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। अधिवात्य तन्त्र के अधिवात्यधियों का उद्देश्य प्रजा की सरकार से है और वे सोचते हैं कि ऐसी सरकार लोगों के हित के लिए होती है। उनकी धारणा है कि अपने-आपको लोकतन्त्र कहने वाली सरकार मुक्ति से ही सरकार हो सकती है परन्तु वह प्रकृत तन्त्र में अराजकता का ही रूप है। यह धार्य में लोगों के हित के लिए नहीं होती परन्तु कम-अ-कम लोगों के उस भाग के लिए होती है जिन्होंने अस्ति

१. सेट्टेरे वैन्डरट I।

२. 'लोकतन्त्र का ही अन्तर्द्वय उगम 'अधिकार का अस्ति प्रणम तथा मने के वास्तविक अन्तर्द्वय परसे।'

की आवश्यकता से जोड़ता है। एक पुरानी कहावत के अनुसार मित्रों में सभी वस्तुएँ समान होती हैं। यदि इसे हम तुल्य सही मान लें तो यह आपत्ति हो सकती है कि सभी लोग मित्र नहीं होते परन्तु उत्तरोत्तर वे मित्र बन सकते हैं। कुछ भी ही इन आवश्यकताओं के विकास में पूर्णतः स्वीकार करने में वे बाधक नहीं हो सकतीं। इस विषय में सबके अधिक आपत्ति वाली बात जेटो की कार्य में विभक्तता की आवश्यकता हो सकती है। जिनके कार्य विभिन्न होते हैं उनकी आवश्यकताएँ भी भिन्न होती हैं। एक यदि एक कम्पनाधीन बाधक मित्र बनना एक सामाजिक शिक्षक की केवल सामान्य भौतिक आवश्यकताओं के प्रतिरिक्त कुछ और आवश्यकताएँ भी होती हैं। उन्हें अपने स्वतन्त्र प्रत्यक्षीकरण विचार बनना अन्तःजगत् के लिए अथवा तथा सम्मेलन सम्मेलन के लिए पुस्तकें जो किमी सार्वजनिक पुस्तकालय में मिल सकती हैं की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत एक प्राविधिक बनना प्रकृति विज्ञान के एक विद्यार्थी को अनुसंधान के समय कुछ नूतन यन्त्रों बनना अन्य उपकरणों की आवश्यकता हो सकती है और वे इनका उपयोग अपनी इच्छा अनुसार करना चाहेंगे। यदि बनता ही यह वस्तुएँ उन्हें बोझे समय के लिए लेनी हैं तो भी कुछ समय के लिए वे ऊँची की सम्पत्ति होंगी दूसरे लोगों को उनका प्रयोग करने का कुछ भी अधिकार नहीं होगा। पर मंत्री की भावना रखने वाली जनता भी उन्हें यह वस्तुएँ तब तक गोप्य रखे हुए रखेगी तब तक वे अपने साहसिक कार्यों द्वारा जनता का विश्वास प्राप्त नहीं कर सके।

किन्तु यदि सब लोगों का परिग्रह समान होना ना व्यावहारिक रूप से यह भी आवश्यक होना कि सब लोग सेवाएँ भी समान करें, पर यह होगा एकदम आवश्यकताओं नहीं। सबको समानता की तरह परन्तु ना नहीं मापी जा सकती। ऐसा समझना है कि यह सब सामर्थ्यों की समता का प्रचार करने वालों में मान लिया है कि वर्तमान समय में विद्यमान वस्तुएँ या सामर्थ्यों वितरण के लिए प्राप्त होंगी। परन्तु वे सामर्थ्यों जिन धन से पैदा होती हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए भी बुरी तरह से बैठा ही धन दिया जाए। यदि प्रत्येक व्यक्ति समान सेवा की गर्न का नाम दिया किना समान धन का अधिकारी होना चाहता है तो भी ऐसी व्यवस्था करना कठिन होगा कि सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होनी सकेगी। सब तो यह है कि ऐसा प्रत्येक प्राकृतिक ही नहीं है। लोगों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे आवश्यक वस्तुएँ पाने के लिए प्रयाग करें और वे परन्तु उन वस्तुओं का उत्पादन करके वह सफल हैं अथवा अशुभ रूप से अन्य वस्तुओं का उत्पादन करके उनका विभिन्न भाग कर सकते हैं। परन्तु अनुपम मर्यादा की दृष्टि अथवा सुसंस्कृत की दृष्टि से बाहर नरक का अनुसरण करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति ही नहीं होती। और यदि हम यह जानें कि उनमें ऐसी दृष्टि

है तो बात ही बूझी जाती। सम्भवतः धिया की पूर्ण व्यवस्था और औद्योगिकी के विद्यमानों के प्रयोग से ऐसी जाति उत्पन्न की जा सके परन्तु वर्तमान समय में प्रतिमात्रक गुणों में वृद्धि के सामाजिक संगठन की बनना करना उपयोगी नहीं होगा। इस बीच यह मान लेना भी ठीक नहीं कि प्राथमिक व्यवस्था परिचारों में भी सम्पत्ति की समता का विद्यमान पालन किया जाता होगा। परन्तु सोपों की प्रकृति ऐसी है कि सम्पत्ति का प्राथमिकता और योग्यता के अनुसार समायोजन किया जाए। यह कबल प्लेनो की ग्यास-सम्बन्धी प्रवचनार्था को मायू करता है जिसके सम्बन्ध में हम यह देख चुके हैं कि उनमें समता की बात नहीं है।

(२) कानून की शक्तों में समता ग्यास के प्रत्यय से वृद्ध है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं यदि प्राथमिक परिस्थितियाँ समान होंगी तो ग्यास भी समान ही होगा। कानून व्यक्तियों में भेद नहीं करता जबकि उसके प्रति पालन के समय साम्य में कुछ अन्तर भी सकता है। साम्य सम्बन्धी प्रवचनार्था स्वयं कुछ सम्प्राप्ति देना करती है। यह कहा जा सकता है कि साम्य में समता के सर्व निहित हैं पर है ऐसा कठिन। उदाहरणस्वरूप स्पेन्सर ने साम्य और समता के प्रापसी सम्बन्ध पर प्राथमिक बत दिया है।^१ में सोचता हूँ कि कुछ अर्थों में यह निष्पत्त्यास्था से हुआ है। कभी कभी सांग ऐसा सोचते हैं कि साम्य सम्बन्धी प्रवचनार्था समता से उत्पन्न हुई है परन्तु ऐसा समता है कि हुआ इसके विपरीत है।

(३) समता का तीव्रतम अर्थ हमारे वर्तमान वर्हस के लिए बहुत महत्त्व रखता है और यह इसे प्राणुमान के प्रत्यय से सम्बन्धित करता है। इस भागवता में यह भाव अन्तर्बल है कि एक मानव को दूसरे मानव से वृद्ध करने वाली वस्तुओं के अन्तर्गत करने वाली महत्त्वहीन होती है। वस्तुओं के अन्तर्गत करने वाली वस्तुओं की तुलना में महत्त्वहीन होती है। सामान्यतः जब हम एक ही प्रकार के जीवनधारियों के विषय में बात करते हैं तो यह बात सही प्रतीत होती है। कुत्ते घनेकों तरह के होते हैं परन्तु साम्य उनके जीवन प्रकार के विषय में निर्णय करत समय उनके धारीरिक्त-मण की अपेक्षा उनके कुत्तेपन पर अधिक ध्यान देना होगा। कुछ भी हा यह अच्छी तरह से प्रतिपादित किया जा सकता है कि यह हमारी सामान्य मानवता ही है जो हम विषय में प्राथमिक स्थापना प्रदान किया हुए है अन्य अन्तर महत्त्वहीन है।^२ एक मानव एक मानव ही होता है " यह इसलिए कि उसमें कुछ अन्त्या की प्रोभा

१. बारा भाग परिचय।

२. मैं इस विचारधारा पर बाइबल का ध्यान आवश्यक है कि के सेवों तथा धर्म मानु निकलें धर्म प्रसिद्ध जो के के सेवक के मरने के सेवों में निरन्तर दिव्य वर की बार ध्यानीय करना चाहता है।

अधिक धाधारयुक्त धारण होते हैं। बर्न ने अपने पीछों में स्थिति और भाव द्वारा प्रतिगमित धारण को महत्त्वहीन बताया है। 'ज्ञान और बोधता प्रथम भी मिश्रता के तर्कसंगत धाधार माने जाते हैं। परन्तु जब हम मानव की तालिका एकता के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो जातीय भेदों को स्थाय नहीं देना चाहिए। धाधारक के भोग प्लेटो के इस उदात्त मूठ' को समत कहेंगे कि कुछ लोग छोटे कुछ बड़ी और कुछ निम्न धातु के होते हैं। परन्तु ने ध्येयावृत्त ऐसे कम से स्थापित किए हैं फिर भी उसने स्वामाधिक रूप से स्वतन्त्र तथा स्वामाधिक रूप से दास' के रूप में तीव्र भेद प्रस्तुत किया है। स्टोइकवाद और ईसाई धर्म ने ऐसे भेदों को हटाने का बहुत प्रयास किया फिर भी वे नीचे की स्वामी और पुत्राओं की नैतिकता की प्रतिस्थापना के रूप में पुनः प्रयत्न हो गए। कार्लोस का 'बुरे और अच्छे धाधमी में वास्तव धारण का धाधार भी ईसाई धर्म के विपरीत है और अपने-आप में पुष्ट नहीं है। बहुत से लोग न कामे होने हैं न मोरे, परन्तु कुछ सारे रूप के मो होने हैं। देखसपीयर धाधवा वास्तुविद्यमान जैसे प्राकृतिक शक्तियों से युक्त प्रतिमानव भी शेषता न होकर देव-स्वरूप मानव ही अधिक थे। कुछ भी हो इसी तरह के विचारों से मानवीय धातुत्व के विचारों की स्थापना होती है। इसी भावना में समता सम्बन्ध धातुत्व का धाधार रचना है और अधिक सुनिश्चित धर्म देता है।

परन्तु यह ध्यान रहे कि इसका माव उन भेदों को धत्वीकार करना भी नहीं है और यह हमें इस इच्छा की धोर प्रेरित भी नहीं करता कि हम एक-दूसरे के टिकोण को समाप्त ही कर दें। इसे समाप्त करने के मो डंग हैं। एक यह कि किसी कोण के सिरे की समाप्त धाधवा उसका विस्तार कर दें। पहली विधि का क्षेत्र सीमित और दूसरी का व्यापक है। ऐसा समता है कि दूसरी विधि ही हमारा ध्येय है। उदाहरण के लिए धर्म के सम्बन्ध में उस बहस को समाप्त कर देना बुद्धिमत्ता होगी जिसने द्वारा विभिन्न धर्मों में धारण दिखाई देता है। धाधव इससे यह धाधवा होता कि धाधारयुक्त सिद्धान्तों की तालिका एकता के विकास के लिए प्रयास किया जाए जिससे धीरे धीरे उनमें पाये जाने वाले धेद स्वत ही प्रभाव हीन हो जाएँ। परन्तु इस उदाहरण पर हम अधिक कुछ नहीं कहेंगे।

धम हम स्वतन्त्रता की धाधधारणा पर धाते हैं। एक धाधरी समाज में स्वतन्त्रता का धर्म व्यक्तियों की पूर्ण स्वतन्त्रता से है जब तक कि वह दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधक न हो। धाधव ने इसका प्रतिपादन १. स्वतन्त्रता इसी प्रकार से किया है और धाधरी बर्नमानवता में स्पेसर ने भी ऐसा ही किया है। परन्तु क्या यह मर्दास उपयुक्त है? स्वातन्त्र्य नियन्त्रण में बर्न डंग है। धाधरी ने परन्तु ने धुधरों को धिये एए धाधधारों या धाधरी-स्वातन्त्र्य के धाधरूप ही होठ है।

‘जितकी ताडी उखकी मेस’ वाले सिठान्त पर सभी धमक कर सकते है और उठोयो में अहस्तसेप की धमधारणा इसी सिठान्त का एक सीमित प्रयोग है । और स्वतन्त्रता का वास्तविक सीमा-निर्धारण तो सामान्य-हित के प्रत्यय में है । भाष्यों में कार्य-स्वतन्त्रता सीमित होता है । यह केवल इसीलिए ही नहीं कि दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचे बरन् इसलिए भी कि किसी के हित में अकारण न बड़े । यदि वातमीय भावुक की धमधारणा में कोई वास्तविकता है तो ऐसी ही मर्बादारे विद्यालय समाज के लिए भी लागू होगी । यह अग्नेहस्वर है कि स्वतन्त्रता के विधेय कर्तों के लिए कोई संतोषजनक धाधार सिधाय इसके कि इससे हानि की धमेका नाम धधिक है दिया जा सकता है । दूसरे धम्यो में यह सकते हैं कि न ऐसे धधिकार हैं जिनके साथ उनके संबाडी धावक्य रहते हैं । असाहस्यस्वरूप धाम-समाज के लिए बोझने की स्वतन्त्रता का धाना किया जाता है । यह उचित भी है क्योंकि उस पर रोक लगाना एक बाधा होनी और कुछ बाधों के प्रति नै विचार छिपे रह जाएँ जिनका प्रकट होना ही मच्छा है । परन्तु यह बात सभी सही हो सकती है जब लोग बोझने के सम्बन्ध में धारण-समय के एक विधेय स्तर तक पहुँच गए हों परन्तु कुछ-बाल-बैठी परिस्थितियों में यह बात सही नहीं होगी, धर्बाँ उस समय बोझने की स्वतन्त्रता नहीं भी जा सकती । जैसे धान्ति के समय में भी बोझने को पूर्ण स्वतन्त्रता पर कुछ अकारण होनी ही चाहिए । डॉ. बालबल ने कहा है कि प्रत्येक धारमी को कुछ सोचता है यह कहने का उसे धधिकार है, परन्तु दूसरों को भी उस बात के धमन का पूरा धधिकार है । परन्तु यह सांसाजिक व्यवस्था और भावुक की बाधना के लिए अकारण नहीं । यह कहना ठीक प्रतीत होता है कि सामान्यतः सरल धविध्वसित धमका धारे डंग से किसी बात को कहने से किसी को मुक्यान नहीं होता परन्तु इस प्रकार की धमिध्वसितियों का नियन्त्रण (साहित्यिक कार्यों पर संभर) सरकारी धधिकारियों के हाथों छीप देना धमका कानून द्वारा यह निर्णय करने की कोधिस करना कि किस तरह के विचार व्यक्त किये जाएँ धाधि बाधों से धहत्तपूर्वी प्रत्यक्ष धमका साहित्यिक-कला के धूस्यमान् कर्तों का धविलंबन होगा । परन्तु धान्ति-काल में भी कुछ धर्बाँ निर्धारित करना मच्छा रहेगा । यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती कि एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को बिना पुष्ट प्रमाण के मूटा धमका हारवाच करे । इस बात की भी धान्ता नहीं की जा सकती कि कोई मनुष्य धनाधरयक धाधामक तरीके से धमका पर की अट से धिसना धिसना कर धमनी राय धाधिर करे । परन्तु ऐसे मामलों में यह धिसधय करना अठिन है कि किस माधा तक धाधामक डंग और उसके अंशपर पर रोक लगायी जाए । परन्तु इस प्रकार की धर्बाँ कानूनी नियन्त्रण की धमेका नैतिक नियन्त्रण के रूप में मच्छी धमनी जानी चाहिए कम-से-कम ऐसे समाज में जहाँ लोग

साधन-नयन जानते हैं। परन्तु जब इन सम्बन्ध में अधिक विस्तारपूर्वक कहने की आवश्यकता नहीं।

सामाज्यता यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वतन्त्रता का बाधा प्राणुत्व के विज्ञान में निहित है। जो लोग एक दूसरे का धारण-सत्कार करते हैं, वे एक दूसरे के कार्यों में पर्याप्त कारण के बिना बाधा नहीं डालेंगे। परन्तु कुछ ऐसी बातें भी होती हैं जिनके लिए ऐसी पर्याप्त कारण प्रस्तुत करना पड़ता है जैसे जब वह स्पष्ट हो जाय कि स्वतन्त्रता का कोई विशेष रूप सामाज्य-हित का बाधक होगा। पर प्रचुर प्रमाणों के बिना प्रत्यक्ष क बिना किसी बात को उचित बताना किसी विशेष परिस्थिति को रोकने का प्रयत्न करना बाल व्यक्तियों के सिवा प्रजातंत्रों का मान-बहुल करने के लिये कुछ नहीं होता।^१

स्वतन्त्रता की अन्वयणता लाक्षणिक को अनिश्चित्य धारणों में परिवर्तित करने वाली नहीं या सकती है क्योंकि ज्यों-ज्यों लोग अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र होते जाते हैं वे अपने उत्कर्ष और हीनता को अधिक-अधिक उच्च स्थितिगत विकास प्रदर्शित करते हैं। और सामाज्यता जो लोग किसी भी पहलु में उत्कृष्ट (विषय-प्रमुख और परिश्रमशील पहलु में) होते हैं वे अपने ही लोकों पर प्रभुत्व जमा लेते हैं। अधिजात्य धारणों की उत्पत्ति भी इनो काय्यता के होती है कि उत्कृष्टता को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। यह बात प्राणुत्व की भावना के विरुद्ध नहीं है यद्यपि परन्तु यह कहा है कि जब स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष होती है, तो सामाजिक-वैधी हाता बढ़ा रहता है। यह भी समझना नहीं है कि जब एक मानव-जाति में सामाजिक रूप में प्रभुत्व रहेगी तब तक कोई भी मानवीय प्राणुत्व ऐसी प्रभुत्वताओं के भरा रहेगा और सभी पहलुओं में अन्वयणता सीमाओं का प्रभुत्व रहेगा। ऐसी सामाज्यता अधिजात्य समाज के लिए आवश्यक नहीं है परन्तु प्रायः पैदा होता रहा है विशेषतः ऐसी परिस्थितियों के अधिकांश अधिजात्य के किसी विशेष हीन पर बल दिया जाता रहा है—जैसे संव्य-रक्षा में प्रवीणता तथा किसी विशेष ज्ञान को रचना जैसे प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन आदि। निम्नोक्त का मत यह है कि प्राचीन हीन नरके सिवा सामाज्य होता है और जब लोग इनका समान रूप में उपभोग कर सकते हैं। यह इन नरके का गाव संवत् नहीं बैठता कि सुन्दर तब वस्तुओं का सुस्थापन एक लम्बे घण्टे और अधिकांश घण्टे के बाद ही दिया जा सकता है। इन प्रकार प्येरो द्वारा अनुसंधित अधिजात्य न इन सामाज्यता

^१ इन विषय में लेखक का मत यह है कि "निर्वाही" हर पुण्ड्र लक्ष्य लक्ष्य पुण्ड्र है। लेखक को "दिल्ली नरके दि १९१६" दृश्य-वस्तु पुण्ड्र है और इसी तरह ही लक्ष्य है कि जो वे वे लक्ष्यता नरके अधिजात्य में अधिजात्य-वर्षणों के लिए नरके है।

पर आधारित है कि सर्वोत्तम हित उचित रूप से कुछ ही लोगों द्वारा समझ तथा मूर्खांकित किया जा सकता है। और वे ऐसा तभी कर सकते हैं कि जब उन्हें अपने काम तक ज्ञान तथा प्रशिक्षण दिया जाए। जो लोग इस तरह अनुशासित नहीं वे अपने-के अनुसार किसी बाह्य नियंत्रण में रहने चाहिएं। ऐसे विचारों के प्रति प्रमुख धारणियाँ इस प्रकार हैं कि (१) उच्चतम मूर्खों का मूर्खांकन करने योग्य और धर्मोद्योग्य व्यक्तियों में स्पष्ट भेद नहीं किया जा सकता (२) उन लोगों का मूर्खांकन प्रशिक्षण की विधेय-विधि की अनुमति के अनुसार होता है, और (३) मानव भ्रातृत्व की मान्यता (प्लेटो द्वारा स्वीकृत) स्वयं एक उच्चतम मूल्य है तथा बर्गों का तीव्र भेद उस मान्यता के मार्ग में एक बाधक स्काबट पैदा करता है। परन्तु इस प्रकार की धारणियाँ हमें यह मानने से रोक नहीं सकती कि कुछ लोग कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं में दूसरे लोगों से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं और प्रत्येक प्रकार की उत्कर्ष-भावना नैतृत्व के त्यों को जन्म देती है। प्रत्येक जीवन-युग सभी प्रकार के बुद्धि-जीवियों के लिए खुला होना चाहिए जिससे जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण मूल्य योग्यतम तरीके से पूर्ण हो सकें। इस प्रकार से हम योग्यता के धारण तक पहुँच सकते हैं जो कि स्वभावतः ही स्वतंत्र विकास से सम्बन्धित होता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं उससे यह स्पष्ट है कि सुम्पबन्धित-समान सम्बन्धी धर्मधारणा बसता समता और स्वतंत्रता के रूप में निहित रखी

है। इस प्रकार उसमें अभिजात्यतन्त्र तथा भोजनता

न बसता

त्मक प्रणालियों के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। सामान्य

हित की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति को जहाँ तक हो सके

उसकी योग्यतानुसार उचित स्थान देकर ही की जा सकती है। वास्तव में यह बात महान् उत्तरदायित्वपूर्ण पदों तथा दूर तक प्रभाव डालने वाली नियुक्तियों के लिए विशेष महत्त्व रखती है। वह सर्वैव स्मरण रखना चाहिए कि बसता का तात्पर्य सामान्य-हित सम्बन्धी योग्यता से है। एक घासक प्रपत्र कार्यों में बख हो सकता है फिर भी वह मूलतः अपने निजी तथा कुछ व्यक्तियों के स्वार्थों की पूर्ति में प्रयत्नशील हो सकता है। केवल यह कहना जैसा कि कार्लाइल ने कहा कि समर्थ व्यक्ति राजा होना चाहिए सम्तोपजनक अभिव्यक्ति नहीं है। कार्लाइल के विचार कुछ धर्मों में योग्यता के विषय रूपों में अभिस्वात तथा योग्यता व धर्मधर्म के किन्हीं भर्गों के मध्य धारणित हैं। परन्तु कम-से-कम जैसा बेकन ने कहा है कि स्वयं व्यक्ति के लिए प्रज्ञान स्पष्टतः सामुदायिक प्रज्ञान से मिल जाता है। एक विषय के लिए सेवा के नेतृत्व की योग्यता का अर्थ यह नहीं कि विषय का उचित प्रयोग प्रयत्न एसा करन की इच्छा उस व्यक्ति में होनी। यह सत्य है कि बड़े और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कार्यों में किंसकत

जहाँ तुरन्त निर्णय की आवश्यकता पड़ती है— यह अभिचार्य ही जाता है कि सब से योग्यतम व्यक्ति ही नैतत्व करे और उन्हें काम की पूर्ण स्वतन्त्रता मिले। ऐसी परिस्थितियों में होमर की इस उक्ति को धोरे में प्रयुक्त किया जा सकता है कि 'बहुत-से लोगों का दास्यन भण्डा नहीं एक को ही बुनियाद बनने दो। परन्तु होमर ने भी यह माना है कि किसी विचार-विनिमय के समय नेता भी अपनी सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त करे। प्रमाण रूप में व्यवस्था-कार्यों के लिए तुरन्त निर्णय कर सके वाला एक योग्य व्यक्ति भण्डा रहता है। बोम्बे में विचार-विनिमय तथा व्यवस्था-सम्बन्धी कार्यवाही का अन्तर स्पष्ट रूप से पर विद्येय बन दिया है। उसके सिवाय एक-दूसरे संयोग में इन प्रकार प्रस्तुत किया है "एक तरह हमें वास्तविक नैतत्व की आवश्यकता होती है तथा दूसरी ओर भीतिक परामर्श की। इस प्रकार अभिचार्यतन्त्र तथा मोक्षतन्त्र की विशेषताओं का एक समन्वय-सा हो जाता है।

यह हम सामाजिक धार्य के दो प्रमुख प्रकारों का सारोप संयोग में प्रस्तुत करते हैं — (१) कुछ लोचतन्त्रात्मक धार्य समता की व्यवस्था पर अवलम्बित

बन रहा है। इस प्रकार इसमें इस बात की आवश्यकता

२ सामाजिक धार्य ही है कि प्रत्येक स्वाम पर उपयुक्त और योग्य संश्लेष रूप में व्यक्ति ही रहे जाएँ। इस प्रकार उत्तम रसता और

अन्ततम व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता।

इसमें वास्तविक के कथनानुसार सर्वतोमुखी व्यक्तित्व वाले लोगों की इतनी आवश्यकता नहीं अर्थात् उनकी अपेक्षा सम्पूर्ण जाति का ही विकास करना चाहिए। परन्तु जाति का विकास धीरे-धीरे ही हो सकता है। जाति के विकास में मुख्य तत्त्व अन्ततम योग्यता एवं अरिज वाले लोगों की उपस्थिति प्रभाव एवं योग्यतानुसार उन्हें स्वान प्रदान करने में है।

(२) दूसरी ओर अभिचार्यतन्त्र के धार्य में निम्न कमियाँ हैं—

(घ) इसमें कभी इस बात की व्याख्या नहीं की गई कि योग्यतम धार्य को कैसे सोचा जा सकता और उन्हें अर्थात् स्वाम पर कैसे रखा जा सकता है। धार्य के योग्य सर्वोत्तम व्यक्ति उचित स्वान प्राप्त करने में सर्वत्र समर्थ नहीं होते। अतः ओटो को यह कहना पड़ा कि योग्य धार्यों को धार्य के लिए बाध्य किया जाएगा। अतः क समय कभी-कभी सर्वोत्तम योग्य व्यक्ति उनकी इच्छाओं के विरुद्ध भी सबसे धाने बनें जाते हैं परन्तु सर्वत्र यही होता हो ऐसा नहीं माना जा सकता।

१ आमेर पत्रक प्रामक ५ १९११। सर आरुध बाइर एडिन बरोक्षप की अरिखो किया क ही तथा पैरिहाटिख नैतनत क्यइ इकरर नैतनत" धूमिख इरिखे की १० प्य० लुओपीही अउ प्रकौट "इ रिखिअ अरि अरिखोही भी रेटे।

(भा) एक योग्य शासक के लिए भी माय वर्धन और नियंत्रण की आवश्यकता होती है। ऐसा नेता हमारे लोगों से ऊपर, उठा हुआ होता है। इसी से यह सिद्ध होता है कि वह जिन लोगों पर शासन करता है उनकी आवश्यकताओं को समझना उसके लिए कठिन होता है। ऐसा तब तक नहीं हो सकता जब तक समाज छोटा न हो और वह अपने पीछे वाले लोगों के साथ निरन्तर संघर्ष न रखे। यह नहीं कहा जा सकता कि योग्यतम शासक भी सभी आवश्यक बातें जानने में समर्थ हो सकता है।

एतद् एक मौखिक प्रवचन में अभिजात्यवर्ग और लोकवर्ग दोनों के तत्त्व रहने चाहिए। इन दोनों का सम्बन्ध किन घटकों में हो यह समय और स्थान की परिस्थितियों पर आधारित होता है। सामान्यतः वायद यह कहना सत्य हो सकता है कि जब तक अमता शिक्षित और सुसंगठित नहीं होती तब तक उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सर्वोत्तम और योग्यतम व्यक्ति के संरक्षण में रहे और वह उनका पथ प्रदर्शन करे। जब लोगों में संगठन आ जाता है उनमें सुव्यवस्थित परम्पराएँ पड़ती हैं और ज्ञान प्राप्त होता है तब उनके सम्बन्ध में एक लोकव्यवहारमक तत्त्व बढ़ने और विकसित होने लगते हैं।

कम्पनेसा तथा अधिकतर बिसेमी किसिम मौरिस और एच बी वेल्थ के रामराज्य अर्थात् एक पूर्ण सामाजिक-संगठन की कास्मिक स्थिति की कल्पना कीजने के प्रयास संभवतः मानव-जीवन के सही विचार व सही विद्या की अधिक-बाणी के अभाव से असम्भव हैं। उनकी जब एक-दूसरे के साथ तुलना की गई तो वे अधिकतर विद्यात्मक पाये गए और उनमें ऐतिहासिक स्थिति की बातें हैं। वे किसी विशेष समय में विद्यमान किसी सामाजिक व्यवस्था के लोगों की ओर संकेत करते हैं तथा उन लोगों की कुर करने की विधियाँ बतलाते हैं।^१ एतद् उन्हें एतद् के 'रिपब्लिक' की तरह अधिक मूल्यवान् सभी कहा जा सकता है जब कुछ रामराज्य-सम्बन्धी न मानकर अपेक्षाकृत किसी सामाजिक ढाँचे का सुन्दर अध्ययन तथा उस समाज के संगठन एवं कमजोरी के तत्त्व को प्रस्तुत करने का एक निश्चित साधन समझ लिया जाए। एतद् का 'रिपब्लिक' एपेस तथा स्पार्टा

१. यही अर्थ है कुछ प्रभावशाली हंस से कुछ अल्पनिष्क-समाजों के अर्थशास्त्र-विदों के रूप में भी प्रसिद्ध किया गया है। उदाहरण के लिए 'रेवेन्यू तथा स्वयं को ले सकते हैं। जबकि आधुनिक समय में अल्पकाल के अर्थशास्त्र 'बर्बान' तथा एच अनापोले अंस का 'रेग्युरन आरलैब' को सिखा जा सकता है। एक वास्तविक रूप से छोटे आदर्श-समाज को स्थापित करने के लिए ही बोरबोच की पुस्तक 'दिसी' विद्यापीठ में 'सोशियोलॉजी ऑफ़ इन्फ़ॉर्मेशन' का एक इन्फ़ॉर्मेशन से अधिक महत्व है। वा. वेरी कोविचर द्वारा लिखित पुस्तक 'सोशियोलॉजी ऑफ़ इन्फ़ॉर्मेशन' में 'सोशियोलॉजी ऑफ़ इन्फ़ॉर्मेशन' पृ. १, २ में कुछ अर्थ संकेत हैं।

के समाज के अध्ययन पर आधारित है। यह इन दोनों के सुन्दरतम वर्गों का एक अच्छा संश्लेष है। इनके साथ ही उस समन्वय की छाया में कुछ बिचाव सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार का अध्ययन हम पहले ही एक ऐसा मार्ग दिखाने में समर्थ हो सकता है जिसके लिए पूर्ण मानव जाति आधारों समाए बैठी है।

किसी विशेष समाज के संवर्धन की सर्वोत्तम विधि क बिचार में सर्वाधिक कठिनाई दूसरे समाजों के साथ सम्बन्ध प्रकटित करने में पड़ती है। यह सम्बन्ध मित्रता तथा शत्रुता के तरीकों से प्रभावित होना बहुत कुछ सम्भावित है। इन बिचारों पर हम आसानी से प्रभावित हो सकते हैं।

तृतीय खण्ड
विश्व-व्यवस्था

प्रथम अध्याय अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध

कमी तक हमने प्रमान रूप से ऐसे पृथक धनदा स्वतन्त्र समुदायों के विधान पर जो विचार किया है जो स्वयं ही अपने आन्तरिक सम्बन्धों और बाह्य-सुरक्षा और व्यवस्था करते हैं। सामान्यतः सामाजिक तथा राजनीतिक-सिद्धांतों के लेखकों में इस तरह के विचारों तक सीमित रहने की प्रवृत्ति रही है। जदाहरण के लिए लैटो ने यह माना है कि उसका निरिच्छित आदर्श समाज स्वयं में पूर्ण एक धाम निर्भर होगा। इसके प्रतिरिक्त उसके सम्बन्ध प्रीक-समुदायों के साथ कुछ पहलु में आत्म-वास के बर्बर लोगों की धर्मशास्त्रिक बनिष्ठ रहेंगे। वास्तव में यह उसकी एक प्राकृतिक मायता थी। उसके आदर्श निराधार नहीं थे अपितु वह अपने विरपिच्छित व वास्तविक बपर-राज्यों की समस्यार्यों का विरोध कर रहा था। बार के लेखकों ने जो निस्सन्देह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर काफ़ी प्रकाश डाला है किन्तु वह कहना क्याबिन् ही समय होया कि ऐसे सम्बन्धों पर पर्याप्त बल दिया गया है।¹

इससे यह स्पष्ट है कि प्राथमिक राज्य आत्म-निर्भर नहीं हैं परन्तु वे अपने उभ सम्बन्धों द्वारा विभिन्न बनेके धर्मित्व पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है विधान-समुदाय का निर्माण करते हैं। प्राथमिक विधान राज्य आन्तरिक पृथक-पृथक देशों के सम्बन्ध से बनते हैं। कभी-कभी वे पारस्परिक बर्बातों यथा आस्पृश्यात्मिक आबस्यकताओं के कारण संकुच हो जाते हैं और अपनी एक सर्वमाय सरकार होती हुए भी वे कुछ मंडलों में पृथक् राष्ट्र बन रहते हैं। राजनीतिक दृष्टि से किसी विधान राज्य में सम्मिलित ऐसे देशों का सम्बन्ध अन्य देशों के साथ अपने आन्तरीक सम्बन्ध की तरह बनिष्ठ न हो ऐसी बात नहीं है। स्कॉटलैण्ड के ब्रिटेन के साथ पूर्णतः संकुच हो जाने पर भी उसने फ्रांस के साथ अपना

1. इस विषय पर लोगों के बल निस्सन्देह, प्रमुख रूप में वैदिकिक पञ्चास से प्राप्त हैं। मुझे यह पदरत ही लीजिये है कि मैं तर्क-चित्ती विचार व्युत्पत्तिका में बोन रूप की बर्बात बर्बात-सुदृढकर्म में विरवाच करता हूँ।

सम्बन्ध उसी तरह जानू रना। धायरसैण्ड ने भी संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रचुर मात्रा में व्यवहार जानू रना। बेस्म ने भी बिरकाम तक ब्रिटेनी से अपने अनिष्ट सम्बन्ध बनाए रने। स्वयं इंग्लैण्ड भी अभी कुछ समय पहले तक अर्मेनी से राष्ट्री प्रभावित रहा तथा यह प्रभाव राष्ट्री भाषा में हितकर भी रहा और अहितकर भी। पोल जाति कस अर्मेनी और आस्ट्रिया में बिबाधित रही है फिर नी अममें अपनी राष्ट्रीय प्रेरणाएँ बिद्यमान हैं। महुषी लोगों को जब तक साहित्यजना का बर्ताब भिमता रहता है तब तब के इन राष्ट्रों के जिनकी सीमाओं में वे रहते हैं अन्धे नागरिक बने रहते हैं किन्तु फिर भी वे अपनी कुछ सामान्य प्रधाओं से बरत्पर बँधे हुए हैं। तगभन सभी यूरोपीय राष्ट्रों में ऐंसे लोग प्रचुर मात्रा में भिमने लौ देव-बिदेय की संस्थाओं और प्रधाओं के प्रति बिदेय भिष्ठा रखने की अपेक्षा अपने धायको एक अन्धे यूरोपवासी समझना पसन्द करते हैं इनमें से कुछ लोगों की प्रबुत्ति बिद्याल बिबन-अनुत्प की ओर अधिक रही है। पर यह निर्णय करना अतिकठिन है कि किन धंधों में पारचात्य सम्प्रदा रोम कीस तथा अ्यूड सम्प्रदा पर आचारित रही है। ऐंसे धनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनमें यह माग्यता अिष्ठ की जा सके कि क्रिस्ती भी राष्ट्र का जीवन पूर्ण उजातीय स्वतन्त्र एवं आत्म निर्भर है। अत एक मुख्यबिबत समुदाय की सामान्य बिधाओं के साथ अन्य समुदायों के प्रभाव की प्रमुख बिधियों पर भी बिचार करना अत्यधिक महत्व का बिषय है।

यदि मानवीय आतृत्व की अवधारणा में कुछ भी सरय है तो यह स्पष्ट है कि सभी राष्ट्रीयताओं के सिए नैतिक आचार सामान्य समझे जाने चाहिए।

- ० अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता
- बास्तव में मानव प्रकृति के सभी भोबधम्य बिचारों को भी ऐंसा ही समझ जाना चाहिए। यहाँ नैतिकता के बिद्यमान सिद्धान्तों की ध्याख्या करना यद्यपि अपने क्षेत्र से बाहर की बात है फिर भी चाहे हम यह मान

लें कि नैतिकता धान्द की बुद्धि अथवा पूर्णता में है अथवा चाहे हम यह मान लें कि वह धन्ध-प्रधा की अतना अथवा बिबेक के निर्णय में है परन्तु इसमें को मत नहीं है कि वह मानवता की आत्विक समानता में निवास करती है। किन्तु यह फिर भी स्वीकार करना पड़या कि प्रत्येक सिद्धान्त अर्थात् नैतिक बिचार अनुभ्य आदि के व्यावहारिक पक्ष में तथा अपने संज्ञान्तिक पक्ष में भिन्नान्त संगठ नहीं बैठते और वे समय-समय पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर तथा एक अ्यक्ति के साथ ही कुछ परिवर्तित अवस्थ होते हैं। कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अपने बिदेय कर्त्तव्यों तथा बिदेय पुराओं का अधिक मुख्यांजन करते तथा उनका अधिक समान रूप से व्यवहार एवं बिकास करते हैं। कुछ लोग अस्ताह को कुछ स्वभाव अथवा आत्म-संयम को कुछ लोग सरय को, कुछ लोग स्वामि-

नरिष्ठ को तो कुछ परोपकार को कुछ उद्योग को, कुछ ज्ञान धनका बुद्धि के
 अनुधीनता को तो कुछ लोग इच्छाओं के समन को धर्मिक महत्त्व देने हैं।
 परन्तु वे लोग जो किसी विशेष क्षेत्र प्रणाली के प्रसंस्कृत एवं प्रकारक होते हैं
 दूसरों द्वारा अनुमृत प्रणालियों की ध्येष्टता से भी इन्कार नहीं करते। कभी
 कभी यह कहा जाता है कि प्रत्येक जाति की अपनी एक विशेष सम्मत्ता होती है
 अपना जैसे जर्मन लोग अपनी एक विशेष कस्टर मानते हैं तथा उसके साथ
 अपनेकी नैतिक पद्धतियों का सम्बन्ध भी है। यह एक पूरे राष्ट्र का काम है कि
 यह अपनी सामूहिक शक्ति द्वारा अपनी विशेष प्रकार की सम्मत्ता की रखा
 और विकास करे। कुछ लोग जो इस विचार को अतिरिक्त करके प्रतिपादित
 करते हैं। उनके अनुसार किसी राज्य के व्यक्तियों का यह कर्तव्य हो जाता है
 कि वे अपने कतिपय कर्तव्यों का पालन करें तथा अपने कुछ गुणों का विकास
 करें। परन्तु राज्य का इस प्रकार का कोई कर्तव्य नहीं सिद्धात्त इसके कि यह
 अपने धर्म निहित विवेक नीति-पद्धतियों का पोषण रखाए एवं विकास करे।
 उनकी धर्मधारणा है कि कोई कार्य चाहे कितना ही धार्मिक बनक न्यो न हो
 राज्य उसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न्यायोचित ह्य से कर सकता है।
 ऐसी धार्मिकधर्मियों के धर्मपर पर कानून का कोई महत्त्व नहीं रहता। मध्य
 कोई भी सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसके द्वारा नैतिक रूप से इसका प्रतिरोध
 किया जा सके। ऐसे ही एक दृष्टिकोण का उक्त सिद्धान्त के साथ स्पष्टतः अनिष्ट
 सम्बन्ध है जिसकी धीरे धीरे ही संकेत किया जा चुका है और जिसके अनु
 धार राज्य धार्मिक रूप में एक अन्तर्गत माना गया है। इस सिद्धान्त का प्रति
 पादन और प्रयोग जिस विधि से किया गया है, उसकी तरफ राज्य के सिद्धान्त
 पर कुछ प्रथमियन लेखकों के बारे में हम संकेत कर चुके हैं और जिनमें से भी
 एक डॉ. हेनरी डेविस का उल्लेख विशेष रूप में किया गया है। प्रथिया ने इस
 सिद्धान्त का प्रतिपादन करते व्यापक रूप से किया है कि इसे 'प्रथमियन-सिद्धान्त'
 नाम देना किसी भी रूप में अनुचित न होगा। किन्तु वास्तव में यह पूर्णतः
 प्रथिया की ही विशेषता नहीं है क्योंकि कुछ ग्रंथों में मध्य देशों द्वारा भी उक्त
 सिद्धान्त-रूप में स्वीकृत किया गया है और धार्मिक संसदों भी धार्मिक कार्य-रूप
 में भी परिणत किया गया है।^१ कुछ प्रथमियन लेखक भी—विशेषतः फ्रान्स और
 प्रोचवा हैं कि पॉससन भी इसमें योग देने के दूर ही रहे हैं।^२ परन्तु इसका

१. अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध की प. १५५ पर धार्मिक धारा लिखित 'डुप्लेस रियरमेसल तबनमेंट'
 २. १९०६ और १९०७ एरन की इंग्लिश एरन ६ मेकिनलेसीम मिथ ६ सं १९ से
 ३. का संकेत किया जा सकता है।
 ४. प्रिम लोगों में इसमें योग देना है वे लगभग सभी इसके प्रयोग में उक्त रखते हैं
 ५. फ्रान्स और पालतन को प्रतिपन्न नहीं क्या का संख्या और इंग्लैंड को भी देना
 नहीं कहा जा सकता।

सफल प्रयोग के अतिरिक्त महान् धीर विस्मार्क ने किया है तथा इसका विस्तृत प्रतिपादन ट्रेटस्की तथा अन्य लोगों द्वारा हुआ है। इनके इसका साधुनिक प्रथिया में तो अधिकार जम ही गया है। यहाँ तक कि हमारे जर्मनी में भी इसका इतना अधिकार जम गया है कि जितना पहले किसी काम में देना नहीं हो सका था। इस विद्यार्थ को यहाँ पूर्णतः व्याख्या तो नहीं की जा सकती पर जोड़ा-बहुत संकेत कर देना लाभदायक और सामयिक होगा। इसका उल्लेख करना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि सामंतों पर जोप इसे वर्तमान यूरोपीय महापुत्र (संघर्ष) के प्रमुख कारणों में न एक तथा कुछ लोग इन निरिच्छत मूल कारणों के रूप में भी समझते हैं।

यह पहले बता चुके हैं कि व्यक्ति को राज्य का मूल उत्पन्न मान लेना ठीक है। परन्तु यह भी स्वीकार कर चुके हैं कि व्यक्ति होता है राज्य की एक प्राथमिक विषयता है। इस व्यक्ति का प्रयोग जीवन तथा तत्सम्बन्धी सभी मुख्य काम वस्तुओं के लिए किया जाता है। यह बात स्पष्ट है। धीर जो बात स्पष्ट नहीं है वह यह है कि क्या प्रायः हमारे कर्तव्य के सामने विरोध उत्पन्न हो जाय पर व्यक्ति का प्रयोग वैधानिक रूप से किया जा सकता है? यह स्वीकार किया जा सकता है कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ भी होती हैं जब सामने सामने काम उल्टा इतना महत्वपूर्ण हो जाए कि उसके भागे अन्य अधिकार भंग्य रह जाएँ। यदि हम किसी एक देश को सम्पत्ता में उल्टा धीर अतिथीय समझे धीर यह चाहें कि उस देश की सम्पत्ता को प्रत्यक्ष विस्म-हित की दृष्टि से समस्त सत्ता पर समान रूप से बौध दिया जाए। चाहे उसके लिए फिर बल का प्रयोग ही क्यों न करना पड़े तो इसके मार्ग में बाधा बनकर मानवानी किसी भी अङ्गण का सम्बन्ध करना प्रति कठिन होगा। अतीत में कुछ जातियों का ऐसी कारखानों के आधार पर अतिवृत्त किये जाने का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काम में कर्वाचित् यही लोगों की ऐसी धारणा थी कि पड़ोसियों से किया गया हिंसा-पूर्ण व्यवहार उनके परम धार्मिक-मूर्खों तथा सम्बन्ध प्रथमों द्वारा उचित माना गया है। मुसलमानों का विश्वास भी कुछ इसी तरह का था। वास्तव में लगभग सभी प्रकार के धार्मिक-बुद्धों की यह में इस प्रकार की धारणा मिलेगी। इसी प्रकार रोमन लोगों का भी यह दावा था जिसे पूर्णतः विवेक रहित भी नहीं कहा जा सकता कि उनकी सरकार धीर उनकी कानून-व्यति संश्लेष्य है। अपने इसी विश्वास के आधार पर वे लोग सोचते थे कि रोमन साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करना उनका कर्तव्य है। सिक्न्दर महान् का कर्वाचित् वह विश्वास था कि वह हीक सभ्यता के सुन्दरतम रूप को अस्तम्य लोगों में फैला रहा है तथा नैवीनियम भी धर्म की शक्ति के मानवीय-विद्यार्थों की स्थापना के लिए निकला जान

पड़ता था। अनेकों आधुनिक राष्ट्र भी अपने आपको दूसरों पर राज्य करने का अधिकारी मानते हैं। और अपने इस अधिकार को वे 'स्वतः सौगों के उत्तर दायित्व' के नाम से पुकारते हैं। अब यह प्रबल ही विचारणीय बात है कि यदि इस तरह के उद्देश्य एकमात्र हिंसा से भी सफलतापूर्वक उपलब्ध किये जा सकते हों और अन्य किसी विधि के द्वारा प्राप्त नहीं किये जा सकें तो उनकी सफलता के लिए कितनी भी हिंसा न्यायोचित ठहराई जा सकती है। इसी तरह यदि कोई एक व्यक्ति इस विश्व के सारे लोगों से इतना अधिक बुद्धिमान और भयंकर हो कि उसके एक-एक आसक्त बलने से समग्र विश्व को लाभ होगा तो उस पर जो प्राप्त करने के लिए उपाय द्वारा काम में लिये गए किसी भी साधन को साम्य समझा जा सकता है। परन्तु इस तरह का एक उपस्थित करने का सर्व मानव-जीवन की वास्तविक स्थिति की अवहेलना करना ही होया। किसी भी युग में किसी एक राष्ट्र अपना किसी एक व्यक्ति को दूसरों की अपेक्षा इतना अष्ट मान लेना कि उसका कोई भी कार्य न्यायोचित ठहराया जा सके मूर्खतापूर्ण ही होया। और ज्यों-ज्यों विश्व की सामान्य सम्मता अधिक विकास करती जाती है वैसे-वैसे ही ऐसी प्रवृत्तियाँ अधिक मूर्खतापूर्ण सिद्ध होती जाती हैं। कम-से-कम प्रायः क विश्व में किसी राष्ट्र की सम्मता अथवा किसी एक व्यक्ति की श्रेष्ठता हिंसा के साधन को अपनाने बिना भी अनिवार्यतः दूसरों में एक व्यापक पैमाने पर फैलाई जा सकती है। और जब वे प्रत्यक्ष रूप से लाभदायक सिद्ध होती हैं तो उन्हें हमारे विचार-संबन्धन के साधन एक दूसरे के पास तीव्रता से ले जाते हैं और कहीं-कहीं तो उन्हें उठनी ही तीव्र गति क साथ अपना भी लिया जाता है। निस्सन्देह कभी-कभी उक्त प्रयोग कुछ निहित-स्वाभावों के कारण तथा कुछ स्वार्थी लोगों या बलों की शक्ति द्वारा रोका जाता है और उनके विरोध में कुछ शक्ति का प्रयोग भी किया जाता है, परन्तु उक्त शक्ति का प्रयोग अपने उद्देश्य के रूप के अनुसार सीमित ही हो। यह कहना उचित नहीं होगा कि वह शक्ति जो कामून नहीं आती शक्ति नहीं है। उदाहरण के लिए सुन्दर विचारों का प्रसार कूर विधियों से नहीं किया जा सकता। इस विश्व में जहाँ लोग इतनी स्वतन्त्रता से एक-दूसरे क साथ मिल-जुल सकते हैं और इतनी प्रासंगी से एक-दूसरे को समझ सकते हैं वहाँ यदि एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र पर अपनी सम्मता को बिना किसी प्रतिबन्ध अथवा सहाय के बोधना चाहे तो उस मानव-जाति का उपकारी नहीं अपितु उक्त सम्मत्त आना चाहिए। यदि उसकी श्रेष्ठता को सत्य ही मान लिया जाए तो भी वह यह निश्चित करने का एकाधिकारी नहीं कि उसकी सम्मता दूसरों की अपेक्षा पूर्णरूप से श्रेष्ठ है। वास्तव में इस प्रकार का कोई भी दावा स्पष्ट रूप में उन सामान्य सिद्धांतों के

विषय पढ़ता है जिनमें यह कहा गया है कि प्रत्येक राज्य अपनी सम्यता के विकास और उसकी रक्षा करने का पूर्ण अधिकारी है। किस्मसे यह स्वीकार किया जा सकता है कि कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें कोई राज्य अपने अधिकारों को उनसे सम्बन्धित कर्तव्यों की पूर्ति के धर्माभ में लगे रहता है। यदि किसी ऐसे राज्य की सरकार इसकी दृष्टि और धम्यापी हो कि इसे ठीक ढंगों में राज्य हो नहीं कहा जा सके तो ऐसी स्थिति में यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अन्य राज्य उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर वे व्यवस्था-स्थापन के लिए अग्नि का भी प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु यह स्वीकार करना पड़ता है कि वैधानिक रूप से ऐसा करने के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण करना भी असंभव नहीं है। यह भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में से एक है जिनका कुछ उल्लेख आगे किया जाएगा।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि राज्य अपने सामूहिक कार्यों में जिन नैतिक सिद्धान्तों से निर्दिष्ट होता है उन सिद्धान्तों को स्वायत्त-व्यक्तियों पर लागू करने वाले सिद्धान्तों के विस्फुट समान नहीं कहा जा सकता। व्यक्तियों के कर्तव्य भी उनकी परिस्थिति एवं कार्यों के अनुसार बदलते रहते हैं। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जो दूसरों के प्रतिनिधि के रूप में काम कर रहा है उस पर लागू होने वाली सत्तों को स्मरण रूप से अपना स्वयं का काम करने वाले व्यक्ति पर लागू नहीं किया जा सकता। यही सिद्धान्त हम लोगों की ओर से प्रतिनिधि के रूप में काम करने वाली सरकार पर भी लागू होता है। पर इस तरह के भेदों पर विस्तृत विचार हमें व्यावहारिक नीतिशास्त्र की सुदूर सीमा में ले जा पटकेंगा। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इन भेदों को ही जाने वाली साम्यता नैतिक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होगा। कर्तव्य बदलते हैं परन्तु इस तरह के कर्तव्य कर्तव्य नहीं रह जाते। सामान्य मानवीय-नैतिक धर्मपारता ही सर्वत्र परम-निर्देशक सिद्धान्त मानी जाएगी।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की वास्तविक कठिनाई नैतिकता के सम्बन्ध में नहीं बल्कि कानून के सम्बन्ध में है। नैतिक नियमों का व्यक्तियों पर और उससे भी अधिक समूहों पर लागू किया जाना एक कठिन होता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून है जब उन नियमों को वैधानिक परिणति और उचित स्वीकृतियों का समर्थन प्राप्त नहीं होता। अतः अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को एक समन्वयात्मक प्रकार से देने को जो प्रयास किये गए हैं

८. जब एक के कार्य का विवरण दम्भु ई हाल महोदय के इन्टरनेशनल लॉ ऑफ़ नैशनल्स (संवादक श्री डॉ० ए. पी. वॉल्टर हीलिग्स) में देखें। श्री दम्भु ए० फिलिप्स महोदय की "दि कान्सेप्ट्स ऑफ़ इन्टरनेशनल लॉ ऑफ़ नैशनल्स" में देखें।

उन्हें बिल्कुल ही असफलतापूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस कार्य में हेग में आयी बिल कांग्रेस ने महान सेवा की है। व्यक्तियों के व्यवहार की अपेक्षा राज्य के व्यवहार के लिए उचित कानूनों का निर्माण करना उचित चिन्ता कठिन नहीं है, उससे कहीं अधिक कठिन उनको लागू करना है। फिर जो लोग यह कहते हैं कि राज्य मूलतः एक व्यक्ति है वे यदि वैधानिक रूप से बाध्य न हों तो स्वाभाविक रूप से प्रबन्ध ही यह विचारने के लिए प्रवृत्त होते कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्मति पर्याप्त स्वीकृति या सहमति के बिना केवल रही कांग्रेस के दुकड़े हैं। स्वतन्त्र व्यक्तियों के कार्यों की लेकर धनेक लोग यह धोचने को उद्यत हो सकते हैं कि कानूनों में तब तक कुछ भी वास्तविक बन नहीं होता जब तक उनके पीछे व्यक्ति न हो। फिर सभी कानूनों के पीछे व्यक्ति की माय्यता अन्तिम रूप से उनके अधिकार की माय्यता पर आधारित होती है। एक व्यक्तिधारी से व्यक्तिधारी बाबदाह भी अपनी धाराओं का तब तक पालन नहीं करवा सकता जब तक इन धाराओं के अधिकार को स्वीकार करने वाले लोग उसकी सहमति न करें। यह स्वीकृति अनिच्छापूर्वक हो सकती है जो खबरबस्ती कई तरह के हथकण्डों और प्रसोमनों द्वारा प्राप्त की जा सकती है किन्तु उसे केवल व्यक्ति के द्वारा ही प्राप्त करना बड़ा कठिन है। परन्तु राष्ट्रों में जब तक परस्पर किसी कानून की शक्ति को माय्यता नहीं दी जाती तब तक दूसरों को मनवाने का उचित व्यक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। कभी-कभी एक सामान्य-बर्मे प्रबन्ध एक सामान्य भाषा भी या साधाम्भ प्रचारों प्रबन्ध सम्बन्ध को व्यापार या भाषा के द्वारा स्थापित किए जाते हैं। स्वाधीनताओं का प्रवृत्त कर सकते हैं। ऐसे स्वाधीनता धामतौर पर एक राष्ट्र के अन्दर ही मिल सकते हैं जिनके कारण व्यक्ति का प्रयोग किया जाना अनावश्यक व्यवहारस्वरूप बन जाता है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष और भय ऐसे स्वाधीनताओं की परिणति को उनके पूर्णतः अस्तमान रहने पर भी कुछ अदिग्ध बना देते हैं। यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि किसी राज्य के अपने कानून के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अधिकारों को स्थापित करना ही कठिन कठिन न होना, बल्कि ऐसे कानून के बारे में जिन्हें स्वीकार किया जाता है सम्मति पर पहुँचना और भी कठिन होगा। किसी भी राज्य में धामतौर पर एक ऐसा अस्ममत मिल ही जाता है जो किसी कानून की एक घास सर्व के विरोध में हो, जो ऐसे अवसर पर किसी धाम मिलन पर पहुँचने के लिए बहस और सम्मति का ही सहारा लेना पड़ता है। स्वतन्त्र राज्य अपने आपको प्रमुख-सम्पन्न कहने के धारी होते हैं उनमें से प्रत्येक अपनी स्वयं की प्रथा विशेष रखता है तथा उसके अपने समय से विचार और अभिव्यक्तिधारी होती है। ऐसे राज्यों के पारस्परिक अन्तर को सरलता से समापोबिल नहीं किया जा सकता। अतः अन्तर्राष्ट्रीय कानून किसी विशेष राज्यों के कानून का

घरेलू घपनी रचना में अधिक मजबूत और कम निश्चित रूप में बाध्य करने वाले होते हैं। इस विषय में मुझ पर भी आभा तो भी था मफती है परन्तु उसका गंभीरता पर विचार करने से पूर्व राष्ट्रों को बाध्य करने वाली एक उत्कृष्ट विधि—व्यापार—पर कुछ ध्यान देना अच्छा रहेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय-नैतिकता और अन्तर्राष्ट्रीय-कानून के तत्त्वों के साथ-साथ घरेलू अर्थ प्रभावशाली तत्त्व भी राष्ट्रों के संघटन में योग देते हैं। उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सम्बन्ध-धर्म आदि भाषा सामान्य

४ अन्तर्राष्ट्रीय-व्यापार मन्त्रिण के समुदायों तथा उद्योग और वाणिज्य व्यवहार के द्वारा उत्पन्न सम्बन्धों को माना जा सकता है।

भाषा का सामान्य तुलनात्मक रूप से विरल होता है। अतः उस पर यहाँ विशेष रूप से विचार करना आवश्यक नहीं। प्राचीन ग्रीक के पृथक्-पृथक् राष्ट्रों के बीच संगठन पैदा करने का यही एक महत्वपूर्ण बन्धन था। इसी ने अर्थनी और आस्ट्रिया फ्रांस और बेल्जियम तथा स्विट्जरलैण्ड और अन्य देशों के बीच में यैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के लिए बहुत बड़ा योग दिया है। इसी ने क्रिश्चियन और अमेरिका के सम्बन्धों को वास्तविक रूप में प्रभावित किया है। वर्तमान के राष्ट्रों में ये दोनों देश "वेकसपीयर जिस भाषा में बोला उसमें बोलते हैं बिस्म ने जिस विरवास और नैतिकता का प्रतिपादन किया उसका प्रतिपादन करते हैं।" ^१ केना कि हम पहले देश चुके हैं यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए ऐतिहासिक प्रयोग और बाद में फ्रेंच तथा अंग्रेजी का प्रयोग भी भाषा में संघर्ष पैदा करने वाला रहा है। राष्ट्रीय-संघटन भाषा धर्म और सांस्कृतिक प्रथाओं के साथ मिलकर कुछ प्रभावशाली के प्रतिरिक्त अधिक प्रभावशाली नहीं रहे हैं। धर्म और सामान्य संस्कृति की व्याख्या बाद में अच्छी तरह से की जायगी यहाँ तो हमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तक सीमित रहना ही उचित होगा।

इस पहलू का प्रभाव स्पष्ट है तथा प्राकृतिक काल से ही साफ़ इतिहासिक प्रतिरिक्त रूप में देखने की प्रवृत्ति भी रही है। जीवन महोदय और उनके मुक्त-व्यापार के सामान्य सिद्धान्त की स्थापना में राष्ट्रमोनी साधियों ने बहुत बड़ी भूमिका की कि अन्त में यह सिद्धान्त अर्थों पर व्यापार-प्रति-योगिता से उत्पन्न ईर्ष्या और संघर्ष को हटाने में बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। हार्डट स्पेन्सर ने सामान्य ढंग से संघ-सहित और भौतिक स्वार्थों के बीच में उपस्थित वैधर्म्य पर बहुत अधिक जोर दिया है। ^२ उन्होंने एक के बहुत विरोध को दूसरे के मैत्रीपूर्ण सहयोग के साथ पृथक् करके दिखाया है। अभी हाल में

१. यह स्पष्ट है कि इस काल का वैश्व-व्यवहार के विना कम प्रभावशाली रहेगा। भाषा की समझ और विचारक इतिहास एक अधिक हुए बन्धन स्थापित करेगा है अतः ये दोनों बातें एक साथ ही चलती हैं।

२. 'द्वारा भाषा-व्यवहार' ५, ३०

नारमन एंजिल ने यह प्रतिपादित किया है कि पूबल्-यूबक राज्यों के धार्मिक स्वातन्त्र्य की सही भावनायी स्वतन्त्र ही अन्तर्राष्ट्रीय छर्चर्च को समाप्त करने में सहायक हो सकेगी। इन सभी बाद-विचारों में कुछ-न-कुछ सत्य प्रकट है इसे मेरे विचार में कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु इस समय यह भी विचार नहीं किया जा सकता कि बाइबल में उनमें भी प्रथम कुछ बदल है। कुछ धर्मों में इसका कारण यह भी रहा है कि जोधन और धर्म लोगों के स्वतन्त्र-व्यापार से उत्पन्न भिन्न परिणामों की पहले प्राप्ति की थी सामान्यतः वह नतीजा नहीं निकली। पर उससे भी अधिक धार्मिक केवल धार्मिक विचार भी उठने प्रभावदायी दिखाई नहीं पड़े वित्तों के समझे जाने के। कार्म मार्शल से प्रभावित कई लेखकों ने इतिहास के धार्मिक विरोध पर लिखते समय उद्योग और बाणिज्य सम्बन्धी प्रदाओं को मानव-जीवन में आने वाले आन्दोलनों के आधारभूत विरोध के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रो मार्शल के साथ यह कहना भी सत्य है कि धर्म के बाद धार्मिक पहलू सबसे अधिक प्रबल पहलू है। परन्तु इसके साथ यह भी कहना पड़ेगा कि जाति भाषा विभिन्न लोगों के सामान्य विचार और प्रचार (विभिन्न परिस्थितियों पर आधारित) भी कुछ ऐसे पहलू हैं जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती। जब तक विभिन्न राज्य अपने-आपको दूसरे प्रकार से बिलग समझते हैं तब तक धार्मिक साम को राष्ट्रीय-एकता का निर्माण करते हैं—जैसे जोधना सोहा तथा जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं का प्रचुर वितरण—वे सब प्रतियोगिता और विरोध के लिए आधार बन जाते हैं। वे उस एकता की प्रवृत्ति का विरोध करते हैं जिसे धार्मिक प्रभाव धर्मवा प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। जर्मनी के लेखकों ने इस पर विरोध रूप से बत दिया है। स्पेन्सर ने इस विचार के लिए कम-से-कम जर्मनी का उदाहरण प्रकट नहीं है कि सुविकसित उद्योग जीवन-शक्ति का विरोधी होता है।

इतना सब कुछ कहने पर भी यह सत्य है कि उद्योग और बाणिज्य अन्तर्राष्ट्रीय-संगठन में सहायक होते हैं। जैसा कि कुछ स्थितियों के इस वाक्य-कथन में स्पष्ट है— कुछ धार्मिक प्रदाओं के बारे में यह सर्वथा सत्य है कि वे सब लोगों के लिए सामान्य तथा सब लोग समान उपभोग कर सकते हैं। यद्यपि इसे सभी के लिए तो किसी तरह से भी सत्य नहीं ठहराया जा सकता। और इसी भेद के कारण राज्यों के अन्तर्गत और उनमें अन्तर्गत में इतनी धार्मिक जीवनान मची है। कुछ राज्यों की अतिरिक्त सीमा तक बुद्धि

१. 'दि ग्रेट इन्फ्लूअन्स एंजिल के कथन को प्रचुर आलोचना की जा सकती है। उस पर तीन प्रचार दिने गए अन्तर्गत के लिए सबसे अधिक उद्योग प्रचार की भी-आन्दोलन में अपनी पुस्तक "दि मेन इन्फ्लूअन्स अफ् देसिफ्रिज्म" में प्रकट किए हैं।

२. "डिसेम्बर अफ् इन्फ्लूअन्स के प्रारम्भ में देखिये।

घौर उनका वितरण नारे विरल में किया जा सकता है घौर प्रत्येक के साथ की दृष्टि से उनका स्वतन्त्र भाषागमन भी हो सकता है। कुछ धन्य इन्ध्र अपनी धर्मि में निश्चित रूप से भीमित होने हैं धन्यवा किसी विधिप प्रवृत्त तक ही धारण रहन है। घौर उन्हें कुछ विधय मौन धन्यवा राष्ट्र धन्ये आर्थिक हिन के लिए धन्ये तक रगते हैं। इसका विस्तृत विवेचन धर्मगारन घौर राजनीति धारन के मसफो पर छोड़ दिया जाना चाहिए। जब तक धर्मों का बराबर वितरण होना रहता है तब तक जनता धाधानमन मंत्रीपुण सम्बन्धों को बढ़ाता है घौर कई प्रकार के संघटनों का कारण होता है। लोगों को जिनक साथ के व्यवहार करते हैं उनकी कुछ भाषा घौर विचारों को सीधना पड़ता है। उन्हें उनकी व्यापारिक विधियों घौर उनके संचार के साधन जैसे बाक-तार, घौर वातायात के साधनों को भी पूर्णतः समझना पड़ता है। यह नियम बहुत कुछ संघों में अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं इसलिए विभिन्न राष्ट्रों के बीच में स्थित सीमाएँ इतिम विवाई बन सकती हैं। धन भी यद्यपि धन्य वस्तुओं की तरह सरसता से नहीं फिर भी एक देश से दूसरे देश की सीमाओं को पार कर जाता है घौर अधिकतर देशों की जनसंख्या के कठोर भेद अधिकांश में समाप्त हो जाते हैं। ये सब विषय स्वयं स्पष्ट हैं मत्र धार्मिक अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के संघटन की स्थापना के विषय में विचार करते समय हमने कुछ कठिनाइयों की घौर संकेत किया था इसक साथ ही धापस में धौधौगिक सम्बन्ध बढ़ने से अन्तर्राष्ट्रीय संघटन ५ मुठ घौर धार्मिक बढ़ता है इस विषय पर भी विवेचन किया गया है। यह बात हमें यह मान लेने के लिए बाध्य करती है कि पृथक पृथक राष्ट्रों के बीच संघर्ष की संभावना फिर भी रहती है। राष्ट्रों के अन्तर के संघर्षों को सामान्यतः मिटाया धन्यवा एक सामान्य स्थिति तक धान्त किया जा सकता है। एक सुष्यवस्थित-समुदाय में लोगों के धापसी ऋद्धो धन्यवा छोटे-छोटे सामाजिक समूहों के सभी ऋद्धों को कानून की सक्ति द्वारा हन किया जा सकता है। इन्ड-मुठ घौर "मारपीट के कानून धन्य सम्म देशों से उठते जा रहे हैं। कुछ स्वार्थों पर इन्ड-मुठ धन्य भी होता है घौर उसके पक्ष में यह तर्क पेश किया जाता है कि जब 'सम्मान' पर धार्मिक धापी है घौर कानून कोई पर्याप्त विधान नहीं कर सकता तब इन्ड-मुठ धावश्यक होता है। परन्तु अधिकतर लोग यह मानने लगे हैं कि इन्ड-तरह की बातें भी हिंसा के प्रयोग की धन्यवा कानून धन्यवा मध्यस्थता द्वारा अधिक सुदूर ढंग से निपटाई जा सकती है। धौधौगिक ऋद्धों को जिनमें विधान जन-समुदाय सम्मिलित होता है ढंग से सुतझाना बढ़ा कठिन होता है। हड़ताओं को कभी-कभी धौधौगिक मुठ के उन्मु बताना जाता है परन्तु

उनके वास्तविक रक्तपात कमी मुस्लिम से ही होता है, अथवा सम्पत्ति को सम्मीर-नुकसान भी बहुत कम हो पाता है तथा ऐसे सजाओं को प्रायः बीच-बाजार से खान्त किया जा सकता है। राज्यों में यह कुछ होना कोई नयी बात नहीं है। विशेषतः से जब राज्यों में विभिन्न राष्ट्र सम्मिलित हों और वे कुछ घंटों में अपनी स्वतन्त्रता का दावा करते हों। परन्तु अधिकतर इस प्रकार के भय तो हमें उन दावों के पीछे वास्तविकता क्या है के विवेचन की ओर न आता है। और यदि अन्य स्वतन्त्र राज्य इन सजाओं में न पड़ें तो उनका निपटारा भरसका से किया जा सकता है। सामान्यतः स्वतन्त्र राज्यों को ही हमें वास्तविक सजाई के मूल में समझना चाहिए। कभी-कभी तो यह कहा जाता है कि कुछ परि-निष्ठियाँ ऐसी होती हैं जिनमें कुछ अनिवार्य हो जाता है क्योंकि प्रभुत्व-सम्पन्न राज्यों के ऊपर और कोई ऐसी उच्च शक्ति नहीं होती जिनके प्रति वे उत्तरदायी हो सकें। इस कठिनाई का सामना कैसे किया जा सकता है इस सम्बन्ध में हम घामे विचार करेंगे। इस बीच हम कुछ ऐसे तर्कों की ओर भी ध्यान देंगे जो सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य के समर्पण में रिय आते हैं। उनके अनुसार इस प्रश्न को हल करने के लिए कुछ के प्रतिरिक्त अन्य कोई विधि बाध्यकारी नहीं हो सकती।

यह दृष्टिकोण बहुत कुछ सम्प्रभुता की अवधारणा पर बल देने वाला ही प्राभाणिक है। इसके पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि किसी उच्चतर शक्ति को नियेदन करने का मतलब यह होना कि समुदाय के हित का विकास और रक्षा करने वाले सम्प्रभुता के अधिकार का परित्याग किया जाए। यह निःसन्देह सत्य है पर यह भी प्रश्न उठता है कि क्या किसी राज्य की अन्यतम सम्प्रभुता को उसके प्रतिरिक्त शर्त में सुरक्षित रक्षणा बाध्यकारी हो सकता है? इस प्रश्न पर हम योज ही विचार करेंगे। यह स्वीकार कर लेने पर भी कि राज्य की सम्प्रभुता की कुछ सीमाओं को निर्धारित करना ठीक है हम कुछ ऐसे तर्कों का सामना करना पड़ता जिनमें कहा जाता है कि अपने समुदाय के हित-साधन के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न होते हैं जिन्हें कोई भी आत्मविमाननी राज्य किसी अन्य बाह्य-शक्ति को निर्यय देने के लिए समर्पण कर देना उचित नहीं सम-झेगा। जब किसी एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ सजावा हो जाए और ऐसी ही समस्या या कड़ी हो तो यही निर्णय किया जाएगा कि राज्य को पूर्ण अधिकार प्राप्त है और यदि सम्भव हो तो वह किसी भी मूल्य पर अपने निर्यय की रक्षा करने के लिए बाध्य हो सकता है। कभी-कभी तो ऐसा भी कहा जाता है कि ऐसे विषयों में तो उनकी शक्ति में ही उनके अधिकार निहित होते हैं और उनकी यह शक्ति ही उनकी वैधानिक सीमाओं का निर्यय करती है। इस तरह के विचारों का उन विद्वानों के साथ अनिष्ट सम्बन्ध है जिनका उन्मेष

हम पहले भी कर चुके हैं। राज्य का सार उनकी शक्ति में है वह नैतिक विचारों का विषय नहीं बन सकती और प्रायः इन प्रकार के सिद्धान्तों में अन्तर प्रदर्शित करता सरल नहीं होता। उन्हें यहाँ प्युब्लिक करके बैंगना प्रायः स्पष्ट नहीं है। यहाँ कर यह स्वीकार किया जा सकता है कि रीति का प्रयोग राज्य के कार्यों का एक पहलू हो सकता है और उस शक्ति के प्रयोग में नैतिक विचारों द्वारा पय-प्रदर्शन किया जाना चाहिए। किन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि आस-सुआसों पर किसी भी समुदाय के हित का ध्यान सर्वोपरि और जो किसी भी वैधानिक कार्य की प्रवेष्टा अधिक मांग्य होता है। ऐसे विचारों में यह कहा जा सकता है कि जनता का कल्याण ही सर्वश्रेष्ठ कानून होता है। राज्य अपने इस परमबोध-उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए जो शक्ति रखता है उसे उसका अधिकार ही समझ जाना चाहिए। यह स्वीकार करना पड़गा कि किसी प्रत्यक्ष रूप से प्रत्यक्ष वस्तु को पाने का प्रयास करना उचित नहीं कहा जा सकता परन्तु जब किसी काम को करना परम बाधनीय होता है और यदि उसे पूर्ण करने के लिए शक्ति भी प्राप्त होती है तभी उसे करना उचित कहलाता है। राज्य के सम्बन्ध में यह समझ लेना चाहिए कि उसे के कभी आवश्यक अधिकार प्राप्त हैं जो उसके उच्चतम लक्ष्य की सुरक्षा व विकास के लिए आवश्यक होते हैं। यहाँ मेंच मठसब कार्यालय और ट्रेडस्की द्वारा अधिकार और शक्ति के सामान्यरूप से जो उमानता दिखाई गई है उससे है। परन्तु यह बात स्पष्ट हो जानी आवश्यक है कि एक समाज के कल्याण के लिए क्या-क्या वस्तुएँ आवश्यक होती हैं। इसके साथ ही यदि संभव हो तो क्या यह अधिक प्रच्छा नहीं रहेगा कि उन्हें प्राप्त करने के लिए दूसरों के विरोध की प्रवेष्टा सतर्क रजामन्वी लेकर प्राप्त कर लिया जाए? कुछ लोग इसमें विश्वास नहीं करते और कहते हैं कि कम-से-कम कुछ परिस्थितियों में कुछ स्वयं हितकर होता है। परत हम यहाँ देखेंगे कि उन लोगों के विचारों का

२. कार्यालय और ट्रेडस्की के नाम को अग्रस में इस तरह से जोड़ देना उचित नहीं होता। कार्यालय के अधिकार को हमेशा छोड़े रखा है और वह आपत्त किया कि एक कार्य का अधिकार ही कलको शक्ति प्रदान करता है। और यदि ऐसा ही मान लिया जाए, यैसा हम भी स्वीकार करते हैं कि अधिकारों की निरन्तरपूर्वक बाँच नहीं की जा सकती जबकि शक्ति के बारे में ऐसा किया जा सकता है ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकार ही शक्ति है और शक्ति ही अधिकार है। इन सिद्धान्तों में अन्तराधिकारिक अन्तर यदि कुछ है तो नोडा ना। प्रो. एच. वन स्टैट की पब्लिश एम्प्लोयर्स एंड एम्प्लोयर्स ऑफ एम्प्लोयर्स १९१२ का पृष्ठ २७२।

घाबार क्या है ?

युद्ध की घण्टा बोलित करने वाले लोगों का उसके समर्पण में यह कहना है कि सबसे कुछ ऐसे कुछ उत्पन्न होते हैं जो शान्ति के समय में क्षीण हो सकते हैं और अपने प्रभाव में गूँघ हो सकते हैं। युद्ध साहस भाव-बलिदान में ही की भावना तथा सामान्य-हित के प्रति समर्पण को उत्साहित करता है तथा बयानुठा, दौंस और महानता के लिए एक नया ध्येय प्रदान करता है। इतना ही नहीं यह भी स्वीकार किया जा सकता है यद्यपि यह भय की बात है कि युद्ध के यथार्थ तनाव और उसकी मयातकता के समय इन उत्तम गुणों में से कुछ को तो एकदम से मुभा दिया जाता है। फिर यह भी कहा जाता है कि साहित्य और कला में जो शक्ति महान् है वह संवेगात्मक जीवन की उच्चता पर आधारित होता है। उनका साक्षात्कार केवल महासंघर्षों और उग्र प्रयासों की अपस्थिति या कल्पना में ही पुरुषरूप से प्राप्त किया जा सकता है। रसिकता को कुछ धर्मों में स्वतः ही यह स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा था कि इसमें सत्य का कुछ संघ है। मैं सोचता हूँ कि नीत्ये के कथन का विरलेपण भी इस प्रकार किया जा सकता है कि— एक पक्षे युद्ध में प्रत्येक वस्तु बलिदान या व्योधावर कर दी जाती है। इसमें घात-समर्पण की बात मन्त्र स्वीकृति के रूप में है। इन बातों में कुछ शक्ति है इसे मुस्किन् से ही प्रस्वीकार किया जा सकता है कि नयभय भयुम कायों में भी सर्व्व ही कुछ घण्टाई की भावना निहित रहती है। इसी परिणामस्वरूप का भोग युद्ध के सम्मूलन के लिए उत्सुक हैं वे भी इसको नैतिक सम्भावना के रूप में प्रवस्य स्वीकार करते हैं। संभवतः इसके लिए हमें यह मानना पड़ेगा कि मानव-जीवन निम्न स्तर से विकसित हुआ है और उसी से यह परत

१. इन विषय में युद्ध की क्षमता मूर्च्छा लुप्त हो और प्रव्य महान् उपायों से की गई है परन्तु अन्तर यह है कि इनमें वहाँ कीरोचित युद्ध जीवन की रक्षा करने में भय भाते हैं वहाँ युद्ध के समय विनाश के भय भाते हैं।

२. "एक पक्षे युद्ध में प्रत्येक वस्तु व्योधावर कर दी जाती है। इस तरह कि वस्तु एवं प्रयत्न कर्मों की व्याख्या करना सरल काम नहीं है। इनके अविच्छाद साधक शक्त कर्म समझे गए हैं। परन्तु ऐसे प्रविश्वकला में ही के अन्तरेको विनाश उद्देश्य वस संसार में शान्ति नहीं अविशु भयन फैलाना होता है युद्ध विनाशयता होती ही है। नीत्ये के कुछ कथन कुछ बोरी-सी भाव्य रचना के परिपूरक के साथ समर्पण के समान ही हैं। उनमें प्रमुख अन्तर शान्तवन और अन्तरे के अन्तर की तरह है। इन समय धर्मो भी नीत्ये पर नाविच्छाद केन्द्र कल्प्य एव साक्षर प्रवेष्टक है। वा अन्त की युद्ध "किर्त्तिसकी अ फ नीत्ये" भी है। नी १० एव अन्तो-विही के एवक अन्तरे के अन्तरे अन्तरे की व्याख्या वने सरल व आदर्शक रूप से की है।

है। हम संघर्ष करके घाये बने हैं अतएव हम सद्गता उपर्य-विहीन जीवन के लिए अपने-आपको सैत समर्पित कर सकते हैं? रोगियों के बावजूद भी मैं प्रयत्न करता हूँ यह एक ऐसी प्रवृत्ति को व्यक्त करना है या मानव के लिए स्वभाविक रही है। यदि हम अपने धनु के विरोध में लड़ाई नहीं कर रहे हैं तो यह भी दूसरे ढंग से हम एक बड़ी लड़ाई लड़ रहे हैं और दुर्भाग्य से मानव क प्राणायुष व। प्रकट करने वाला इनके प्रतिरिक्त धर्म बार्ड ढंग भी नहीं है। यह हम जब दूसरे वर्ग की धार में जाता है जिसके आधार पर कुछ भी आधारभूतता पर बस दिया जाता है।

घाबुद्धि विकारकार के विद्यमान के अनुसार यह कहा जाता है कि जीवन की उच्चतर शक्तियों का विकास संघर्ष पर आधारित है जिसमें निम्नतर शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उच्चतर शक्तियाँ सुरक्षित रह जाती हैं। इसके विरोध में यह भी कहा जाता है कि यह बात अनिवार्य नहीं है कि जो जीवित रह जाती है वे उच्चतर ही होती हैं वे तो केवल किमी परिस्थिति-विषय में अपने-आपको अनुकूल बना लेने वाली होती हैं। यह कहना निरर्थक ही बड़ा कठिन है कि प्राचीन ग्रीक पद्यों का अथवा रोमन साम्राज्य का विनाश मानव के हित के लिए हुआ था और जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है मुझे मैं अधिकतर सबसे अधिक बलवान् और गुलवान् लोग ही नष्ट होते हैं। फिर यह भी कहा जा सकता है कि जैसे-जैसे हम जीवन का विकास करते जाते हैं जैसे-जैसे सभेतर बुद्धि और प्रकाश के कारण हम जैसे-जैसे स्तर की ओर बढ़ते जाते हैं। स्वास्थ्य धिया जीवन की सुन्दरतम परिस्थितियों और उचित समय पर सांख्यिकी के विद्यार्थियों के प्रयोग मानव जाति के विकास में योग दे सकते हैं।

इन विषय की पूरी व्याख्या मोस्त के मोक्षिकाने की है।^१ उनकी प्रमुख विचारधारा यह है कि मानव प्रकृति अपने अस्तित्व के लिए निरन्तर संघर्ष पर आधारित है यह प्रकृति की शक्तियों के विरुद्ध होता है पर अपने शक्तियों के विरुद्ध नहीं। प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष को ही विलियम वैम्स न कुछ की नैतिक सम्पादना बताया है।^२ वास्तव में यह सुझाव कुछ संशोधनों में कार्लाइल को

१. प्राकृतिक-शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष पर देखें मो इन्कर की 'कार्लिनियन एवड रेन मॉविल अस्तित्व के लिए संघर्ष का लक्ष्य निरन्तर पर देखें—प्रो कार्लिनियन विसेल की पुस्तक 'इकोनॉमिक एवड रिचर विरुद्ध' पृ २; भी भी. कार्लिनियन की पुस्तक 'मेन एवड वन ऑफ वैबिडियन विरुद्ध' पृ ११-११४। इन्कर की "इकोनॉमिक एवड रिचर" ; कार्लिनियन की "वीरुद्ध ऑफ मेन" पृ २ पृ २; प्रो डॉक्टर की पुस्तक "सोशल इकोनॉमिक एवड विरुद्ध एवड" पृ २।

^२ विरोधी एवड संशोधन देखें।

उद्योगों के मुक्तिवादी और धर्मियों के समूह पर बम डेते समय पहले ही धामा सिद्ध हो गया था।^१ आधुनिक काल में औद्योगिक संघर्षों को अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के स्तर पर काम में लाना का गुम्हाव अधिक प्रापतिजनक है।^२ इसमें मय की बात यह है कि ऐसे सगर्षों में उन उदार भावनाओं का समाव रहेगा जो बहुधा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में पाई जाती है। कुछ भी हो इसे हम युद्ध का समप्रमाणी नहीं कह सकते अपितु यह एक नये रूप में स्वयं युद्ध होगा।

इस विषय पर यहाँ हम कुछ अधिक नहीं कह सकते। यह स्पष्ट है कि युद्ध स्वयं टिकता नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि वह बोड़े हित परन्तु अधिक प्रहित का धनक है। इसके तुरन्त उन्मूलन के बारे में सोचना भी बुद्धिमत्ता नहीं है। हमें युद्ध करने के लिए तैयार तो नहीं रहना चाहिए परन्तु उसका सामना करने की तैयारियों की व्यवस्था भी नहीं करनी चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें सबसे कमजोर हुए हथियारों से सजकर रहना चाहिए परन्तु घाने वाले अतारों को पहल भौष सेने और उनसे बारे में कल्पना कर सेने की शक्ति हम में प्रबल्य होगी चाहिए। हमें अतारों के बीच निहत्थ होकर घाँसे में मौठी मीर के मारे नहीं सेने चाहिए। यहाँ विरवास के साथ यह भी कहा जा सकता है कि यदि घान्ति का स्वाबी रूप से शम्भ हो भी जाता है तो भी वह एक ऐसी घान्ति होगी जिसमें पूर्ण रूप से संघर्ष की व्यवस्था नहीं की जा सकेगी। परन्तु वह स्वयं मानवता के उच्चतम लक्ष्य के लिए एक संघर्ष का रूप होगी। "वह एक ऐसी विजय होगी जो युद्ध की प्रवेसा कम अययुक्त नहीं होगी। तभी हम नीत्ये के सैनिक घावसों के स्तर पर घुसरे घावस रखने में समर्थ हो सकेंगे। नीत्ये ने जो यह कहा है कि अतारों में रहो और कठोर बने। इससे अधिक घान्ति वाला घावस होगा— मजबूती से रहो और घाघावाबी बने। जैसे घारस्तू ने कहा है कि 'मुलामों के लिए घाराम नहीं है। इसी प्रकार हम अमपूर्ण स्वतन्त्रता की प्रवेसा घाराम सहित सम्बन्ध को प्राथमिकता नहीं दे सकते। घान्ति और स्वतन्त्रता वही सम्बन्ध हो सकती है वहाँ उनकी रक्षा और उनके स्थापन के लिए निरन्तर प्रयत्न किए जाते हैं।

विर हम यह सोचने में सही है कि पूर्वोक्तित घान्ति हमारा लक्ष्य होगा

१. 'वास्तु प्रवृत्ति में घान्ति' तथा "सिद्धि देवदत्त" देखें।

२. श्री राम सारेन का सार्वजनिक इवटान के बारे में यह बाया है कि इण्डोनेशिया ने मजूर बल के लोगों में लक्ष्य अधिक लक्ष्यता मनीरता और स्वाबी भावों को बन्ध दिया। लक्ष्यकृत रूप से प्रकृतित किया और उन्हें एक-दूसरे के निकट लाने प्रत्येक को अधिकतम रूप बना से अत है। रिक्तेवस्तु जॉन बॉबकेन्स (म. ४ ५ १९०)।

चाहिए, तो हमारे लिए, उसे प्राप्त करने की विधियों का अन्वेषण करना आवश्यक ही जाता है। स्पष्ट उद्देश्य प्राप्त करने में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों परनेकों कठिनाइयाँ हैं। विद्यमान अध्याय में मैंने उनकी प्रवृत्ति पर बहस करने की प्रयत्ना उनको प्राप्त करने पर अधिक बल दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि इस विषय में कुछ प्रवृत्ति की जा सकती है। 'मम महान्' देश को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बुद्धि करके ही किया जा सकता है। इसके लिए पर्याप्त धनुराज आवश्यक है जो बड़े देश ही प्रदान कर सकते हैं; परन्तु 'मम प्रजा' की उत्थिति के लिए लोगों को राष्ट्र-सुख की स्थापना की आवश्यकता पड़ी। परन्तु ऐसी योजना के विरुद्ध भी अनेकों आशयिका उठ लगी होती हैं जो स्वतन्त्र राज्य की सम्प्रभुता में बाधक होती हैं। उन्हें सामान्यतः हटाया नहीं जा सकता परन्तु उनका समाधान में यह कहा जा सकता है कि कोई भी सम्प्रभुता विरुद्ध नहीं होती। एक सम्प्रभु राज्य और एक असम्प्रभु राज्य के अन्तर में केवल सम्बन्धित प्रामाणिकता होती है। एक सम्प्रभु राज्य बड़े होता है जो किसी एक विदेश शक्ति के अधीन नहीं होता। और कोई ऐसा प्रस्ताव भी नहीं है जिसके द्वारा ऐसी सत्ता एक राष्ट्र-सुख को प्रदान की जा सके, न ही कोई विदेश-संघ कायम करने का विचार-विमर्श चल रहा है। ऐसे विधि भी प्रस्ताव का अर्थ होना एकमात्र सम्प्रभु-राज्य की स्थापना अन्य सभी राज्य विश्वक अधीन होने किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह विचार अभी तक उस परिपक्व अवस्था में नहीं पहुँच सका है और न चापक अभी उस अवस्था में पहुँच ही सकेगा। हाँ अधिक-अधिक इतना हो सकता है कि कुछ विभिन्न जाति के लोग अपनी अलग अलग पद्धतियों के अनुसार विकास करते रहें। परन्तु कबल मात्र किसी अल्प राज्य की स्थापना के अलावा ऐसा प्रतीत होता है कि सम्प्रभु राज्य भी कुछ बन्धनों को स्वीकार करेंगे। यहाँ तक कि अमेरिका के महान् राज्य को भी अपने अन्तर स्थित कुछ छोटे राज्यों के अधिकारों के कारण कुछ बन्धनों को स्वीकार करना पड़ा था। प्रत्येक सन्धि उक्त राष्ट्रों की पूर्ण स्वतन्त्रता में कुछ बन्धन अवश्य लगाती है जो राष्ट्र उस पर हस्तक्षेप करते हैं। फिर यह भी स्पष्ट है कि इस प्रकार की कुछ सन्धियों के बिना सुरक्षा यह भी नहीं सकती। यह अवश्य लगी बात है कि ऐसी सन्धियाँ

२. इस विषय पर लिखने वाले अनेक लेखकों की रचनाओं का अन्वेषण किया जा सकता है। ताबत उनमें से बहुत-सी रचनाएँ तो अल्पजीवी ही रही हैं। श्री विक्रमचन्द्र । वि. शंकर वि. शंकर । श्री बी. कर्तव्य; मारेसिटी चारु मेरुम्प । श्री सुनीलकुमारी की 'विश्वविद्यालय चारु मेरुम्प' भी अल्पजीवी है। श्री महेन्द्र की 'विश्वविद्यालय चारु मेरुम्प' १९५१ भी देखें। श्री ए. के. शंकर की 'विश्वविद्यालय चारु मेरुम्प' १९५१ भी देखें।

तब तक बेकार होती है जब तक कि हस्तांतर करने वाला राष्ट्र उसके समर्थन के लिए संगठित होने के प्रयत्न को पूरी तरह निभाते नहीं। फिर वर्तमान-कास में कोई भी राष्ट्र अपने मित्र-राष्ट्रों के समर्थन के बिना किसी महान् युद्ध में भाग लेने का विचार तक नहीं कर सकता। ऐसे मित्र राष्ट्रों का एक प्रकार का राष्ट्र-संघ बन जाता है। अतएव अब यह जानना आवश्यक हो जाता है कि प्राक्कित वे ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिनसे ऐसे राष्ट्र-संघों की स्थापना सम्भव होती है? इस प्रश्न का सामान्य उत्तर यही होना कि कुछ राष्ट्रों के अपने सामान्य हित इसकी स्थापना के लिए प्रेरणा देते हैं। अतएव अनेक राष्ट्र उस सामान्य-हित को पाने के लिए सम्मिलित होते हैं उतना ही अधिक राष्ट्र-संघ भावी बनता है तथा जो सामान्य बात ऐसे सभी सम्मिलित राष्ट्रों के लिए हितकर होती है तो व सब इसकी प्राप्ति के लिए एक साथ जुट जाते हैं। अब प्रत्येक राज्य जो अपनी सम्प्रभुता का मूल्यांकन करता है उसे एक ऐस सामान्य-हित को भी मान्यता देनी पड़ती है या सभी के लिए समान होता है, जैसे अपनी सम्प्रभुता की रक्षा करने की स्वतन्त्रता और उनको ऐसा करने का आश्वासन दिलाने के लिए शान्ति की वरम आवश्यकता। अब यह सत्यता से प्रतिपादित किया जा सकता है कि शान्ति और स्वतन्त्रता से बहिष्कृत वे सम्मिलित हित हैं जो समान रूप से सभी राष्ट्रों के लिए सामान्य होते हैं और जहाँ रक्षा के लिए वे सभी एक साथ बहुत अच्छी तरह से सम्मिलित हो सकते हैं। ऐसा करने के लिए वास्तव में सम्प्रभुता का बहिष्कार आवश्यक नहीं होना अपितु इसके लो बहुत जग परिस्थितियों को बनाए रखने में समर्थ होता है जिनके द्वारा सम्प्रभुता के लक्ष्यों को सुरक्षित रखा जा सकता है। यहाँ अब का आचार यह हो सकता है कि इस अर्थ के लिए निमित्त राष्ट्र-संघ धीरे धीरे कुछ समय के बाद कुछ समय अहोरात्रों की प्राप्ति के लिए भी प्रेरित हो सकता है। यह स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देने की अपेक्षा उसमें बाधक भी बन सकता है। इस तरह ऐसे राष्ट्र-संघ से उत्पन्न होने वाले अतरे से पूर्णतः स्कार भी नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि कुछ राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए दूसरों के कर्मों को रोकना आवश्यक हो जाएगा। वे सम्भव आवश्यक बन्धनों से फिर दुसराही और हानिकारक बन्धनों में भी परिचित हो सकते हैं। राष्ट्र-संघ का मूल अर्थ सुरक्षा और शान्ति है। व दोनों इसके अस्तित्व के लिए बड़े आचार है। यदि इसके अधिकार की रचना बड़ी आवश्यकता से की जाती है तो साथ विश्व इसका पीछे होना। यदि पानी ही हमें बन्धा बनाएगा तो उसे हम किससे बाँटेंगे? यदि इस विश्व में बुद्धिमत्ता पर्याप्त नहीं है तो उससे अच्छी बुद्धिमत्ता हम कहाँ से लाएँगे? निरसम्भेह हम अब विश्व को ही अधिक बुद्धिमान् बना सकते हैं और ऐसा करने के लिए कुछ

तब तक बेकार होती है जब तक कि हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र उसके समर्थन के लिए संकठित होने के प्रण को पूरी तरह निभाते नहीं। फिर वर्तमान-काल में कोई भी राष्ट्र अपने मित्र राष्ट्रों के समर्थन के बिना किसी महान् युद्ध में भाग लेने का विचार तक नहीं कर सकता। ऐसे मित्र राष्ट्रों का एक प्रकार का राष्ट्र-संघ बन जाता है। अतएव जब यह जानना आवश्यक हो जाता है कि आखिर के ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जिनसे ऐसे राष्ट्र-संघों की स्थापना सम्भव होती है? इस प्रश्न का सामान्य उत्तर यही होगा कि कुछ राष्ट्रों के अपने सामान्य हित इसकी स्थापना के लिए प्रेरणा देते हैं। जितने अधिक राष्ट्र उस सामान्य-हित को पाने के लिए सम्मिलित होते हैं उतना ही अधिक राष्ट्र-संघ मजबूत बनता है तथा जो सामान्य बात ऐसे सभी सम्मिलित राष्ट्रों के लिए हितकर होती है तो वे सब उसकी प्राप्ति के लिए एक साथ जुट जाते हैं। एक प्रत्येक राज्य जो अपनी सम्प्रभुता का भूस्वीकरण करता है उसे एक ऐसे सामान्य-हित को भी मास्यता देनी पड़ती है जो सभी के लिए समान होता है, जैसे अपनी सम्प्रभुता की रक्षा करने की स्वतन्त्रता और इनको ऐसा करने का आस्वादन दिमाने के लिए धार्मिक की परम आवश्यकता। अतः यह सरलता से प्रतिपादित किया जा सकता है कि धार्मिक और स्वतन्त्रता को समिष्टता के सम्बन्धित हित हैं जो समान रूप से सभी राष्ट्रों के लिए सामान्य होते हैं और उसकी रक्षा के लिए वे सभी एक साथ बहुत मजबूती तरह से सम्मिलित हो सकते हैं। ऐसा करने के लिए वास्तव में सम्प्रभुता का बलिदान आवश्यक नहीं होगा अपितु इसके तो यह जन परिस्थितियों को बनाए रखने में समर्थ होता है जिनके द्वारा सम्प्रभुता के उत्तमों को सुरक्षित रखा जा सकता है। यहाँ भय का आचार यह हो सकता है कि इस अर्थस्य के लिए निमित्त राष्ट्र-संघ और-औरे कुछ समय के बाद कुछ अन्य अर्थस्यों की प्राप्ति के लिए भी प्रेरित हो सकता है। यह स्वतन्त्रता को आस्वादन देने की अपेक्षा उत्तम आश्चर्य भी बन सकती है। इस तरह ऐसे राष्ट्र-संघ से उत्पन्न होने वाले अंतर से पूर्व-सं-इन्कार भी नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि कुछ राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए दूसरों के कर्मों को रोकना आवश्यक हो जाएगा। ये सम्भव आवश्यक बन्धनों से फिर दुसराही और हानिकारक बन्धनों में भी परिवर्तित हो सकते हैं। राष्ट्र-संघ का मूल अर्थस्य सुरक्षा और धार्मिक है। ये दोनों इसके पश्चिन्व के लिए बड़े आचार हैं। यदि इसके संविधान की रचना बड़ी सावधानी से की जाती है तो साथ विरह इसके पीछे होगा। यदि पानी ही हमें गन्ना बनाएगा तो उसे हम किछसे बोएँगे? यदि इस विरह में बुद्धिमत्ता पर्याप्त नहीं है तो उससे मजबूती बुद्धिमत्ता हम कहीं से लाएँगे? निस्सन्देह हम इस विरह को ही अधिक बुद्धिमान् बना सकते हैं और ऐसा करने के लिए कुछ

विधियों पर हम धामे विचार करेंगे । परन्तु कुछ भी हो इस विशेष समय के लिए तो हम धानी वर्तमान बुद्धिमत्ता से ही काम लेना पड़ेगा । यह स्पष्ट है कि इस तरह की समस्या को कोई भी आग्निष्क योजना नहीं सुसम्भ्य सकती । पर आग्निष्क योजना केवल सोचा की इच्छाओं को प्रभावित ही नहीं कर सकती परन्तु उन इच्छाओं को विघास रूप से उत्पान करने में भी सहायक हो सकती है । वहीं पर राष्ट्र-संघ के संविधान पर लिखना हमारे सम्बन्धित नहीं । उसे स्पष्ट करने का काम तो व्यावहारिक राजनीतिक नेताओं का है । समाज-दार्शन का काम तो विचारघातों के आचारमूत सामान्य-सिद्धांतों पर विचार करना है । अब तक जो कुछ कहा गया है वह यहाँ के लिए पर्याप्त है । कुछ ही समय में वह हम अधिकाः महत्त्वपूर्ण समस्याओं की धोर प्ररित कर सकेगा । वह हमें राष्ट्रीय भेदभाव की राइयों का पूर्णतः पाट देने के उपरान्त 'मानव संसद् अधिका विरव सबठन तक भी ले जा सकेगा । परन्तु इस समय हमें अपने आपको तात्कालिक समस्याओं तक ही सीमित रखना अधिका उपयुक्त होगा ।

द्वितीय अध्याय धर्म का स्थान

धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ की गई हैं और उन्हें विभिन्न परिभाषाओं में बाँधकर कटित बना दिया गया है। यहाँ उन सभी का विवेचन करना उचित नहीं है।^१ यहाँ तो इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि

१ धर्म का धर्म धर्म का धर्म कम-से-कम अपने सर्वोच्च विकसित रूप में उच्चतम और सबसे अधिक मूल्यवान् के प्रति पूर्णतया समर्पण है।^२ कार्लाइल के स्वर में कहना मुश्किल से ही सही हो सकता है कि कार्य ही पूजा है। परन्तु ऐसा उस भावना के प्रति कहा जा सकता है जो रचनात्मक या सुव्यवस्थित कार्य के उच्चतम रूपों के लिए प्रेरणा देती है। उसको ही हम उचित रूप से धार्मिक भी कह सकते हैं। विद्यमान ईसाई-धर्म शायद अन्य सभी विश्व-धर्मों की अपेक्षा प्रमुख रूप से सामाजिक समुदाय के धर्म के प्रति समर्पण की एक भावना है। वहीं मूलतः इसकी बुद्धि और रक्षा के लिए धार्मिक भी है। धर्म का यही पहलू हमारे लिए यहाँ धार्मिक महत्त्व रखता है। उदाहरणस्वरूप यह स्पष्ट है कि समर्पण की ऐसी भावना के बिना राष्ट्रीय जीवन अपना अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास की इच्छा करना धर्म ही पर पिछले अध्यायों में बल दिया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय एकता और विश्व-साम्मिलन की स्थापना के सम्बन्ध में इतिहास में आज ही में एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में भी किया जा चुका है। उसमें धार्मिक प्रकृति द्वारा की जाने वाली सेवाओं का एक कार्यक्रम विन प्रस्तुत किया गया है। उसमें सन् १९०६ ई. की प्रेरणा बना और जर्मनी में हुई लड़ाई का उल्लेख किया गया है, जिसे ईसाइयत के आचारमूठ विद्वानों की धर्मिता द्वारा बन्द करवाया गया था।^३ ऐसे

१ ई. डेवर्ट की पुस्तक 'दिव्य धर्म' नामक ऐतिहासिक का प्रथम अध्याय देखें।

२ यहाँ धर्म अन्तर्निहित और समर्पण विनता है वहीं धर्म का धार्मिक रूप प्राप्त हो जाता है - नोट्स: 'दिव्य धर्म' ऐतिहासिक का प्रथम अध्याय देखें।

३ 'वाक्य विचार' पृष्ठ १२९।

उशाहरण बहुत कम मिलने हैं। इतिहास का कहना है कि उन्हें पूर्णतः 'सम्भृत' कहा जा सकता है परन्तु धार्मिक विचारों का प्रभाव केवल वर्णवर्गों में ही नहीं मिलता कुछ अन्य साम्प्रदायिकों में भी देखा जा सकता है। उन्हें सामान्यतः धार्मिक (सामान्य निरालस उचित रूप में नहीं) कहा जाता है। इस प्रकार संज्ञा की शक्ति द्वारा सूत्रपाठ किये गए सुधारों में भी उस प्रभाव को देखा जा सकता है। मानव धर्म जैसे हम विद्वान् धर्म मुक्ति के ही कह सकते हैं प्रभुत्व रूप से बोध और ईसाई धर्म का श्रेणी है। उसमें धार्मिक भावना का एक पहलू सम्भवतः अन्य पहलुओं से पृथक् है जो इनकी विशेषता है। सम्भवतः यह सही है कि ऐसे धर्म की पूर्णता के लिए हमें बड़े-सर्व धर्म धर्मों की कठिनाईयों में मिलने वाली प्रकृति पूजा का और इनके साथ ही सामान्य धर्म के सामान्यतात्मक विचारों के निरालस प्रयासों को भी जो धर्मों तथा साम्य सूत्रधारमक विचारकों के धर्मों में प्राप्त होना है जोड़ देना चाहिए। परन्तु यहाँ तो धर्म के धर्म के बारे में इतना समझ सेना ही पर्याप्त होगा कि वह मानव-जीवन की पूर्णता के प्रति समर्पण की एक भावना है। इसी दृष्टिकोण को धारण रखकर हम इसे मानव-व्यक्ति के साथ सम्बन्धित कर सकते हैं जिसके बारे में इस पुस्तक को धार्मिक धर्मों में उल्लेख किया जा चुका है। परन्तु इस दृष्टिकोण के धारण सेना पर भी धर्म के कुछ अन्य विभिन्न पहलुओं की धारण भी ध्यान धारणित किया जाना आवश्यक है। परन्तु उनका सूत्र-विशेषण यहाँ स्वाभाविक के कारण नहीं किया जा सकता।

इस पुस्तक के कुछ धार्मिक धर्मों में वह प्रस्तुत किया गया था कि मानव जीवन के तीन प्रमुख पहलू होते हैं—धर्म प्राणी-जीवन सम्बन्धी और सबसे अधिक विशेषता वाला मानव-जीवन सम्बन्धी। २ धर्म के प्रमुख पहलू कुछ मानवीय पहलू शैक्षिक धर्म पर धारणित होकर धर्म को पहलुओं को धारणित करता है और धर्म धर्म पर धारणित बना जाता है। हमारी सामाजिक संस्थाएँ धर्म संवर्धन पद्धतियाँ जिसके बारे में धर्म तक उल्लेख कर चुके हैं प्रभुत्व उन्हीं विधियों के रूप में जिन्हें हमारी निम्नतम धारणितताएँ और धारणित धर्मों के कारण प्राप्त करती हैं। धर्म हमें उस धारणित धर्म की धारणित देना चाहिए जो हमारी अन्तिम प्रकृति के कुछ मानवीय धर्म से विशेषतः सम्बन्धित है। यही कुछ मानवीय धर्म स्वतः ही धर्म धर्म धर्म के धर्मधर्म में प्रकट होता है। धर्म भी इन्हीं उन्निवर्धन धर्मों के साथ ही धारणित को प्राप्त करता है। यहाँ सामाजिक धर्मों में धर्म बना होता है उसे देखा ही प्रमुख धर्म है परन्तु धर्म पहलुओं को भी धारणित धारणित नहीं जा सकता।

सब सामाजिक कार्यों पर धर्म के प्रभाव को विशेष रूप से देखा जाता है। तब धर्म और नैतिकता में कोई अन्तर नहीं रह जाता। यहाँ नैतिकता अपने अपने उच्चतम धर्म में प्रयुक्त किया गया है। मैन्सू चार्नेन्स ने कहा है^१ कि 'सुनत धर्म सर्वियों से युक्त नैतिकता है।' परन्तु सभी नैतिकताएँ, जो अधिकांश लोगों के लिए सुम होती हैं, संवेग का पुट रहती हैं। नैतिकताएँ सम्बन्धी विचार भी धर्म-सहित उच्च नैतिकता ही तो हैं। परन्तु यह एकल विवेकवाद की तरह धर्म में प्रकृति पूजा और अनुभवमय-ब्रह्माण्ड की प्रवचनका की प्रकृति करता है। यह कहा जा सकता है कि नैतिकता का मान इसके उच्चतम धर्मों में प्रत्येक वस्तु का अनुशीलन करना है जो सत्य और सत्य हो। परन्तु कुछ भी हो वह उन सब का एक अनुशीलन है, जहाँ वे सब धर्म में सामाजिक रूप से प्रत्येक धर्मका वस्तु की प्रकृति में सम्पुक्त होते हैं। अधिकांश नैतिकता का धर्म जहाँ सामान्यतः किसी विशेष काल और स्थान में सत्य एवं सत्य के प्रति समर्पण और अनुशीलन सम्बन्ध जाता है जहाँ धर्म में निरपेक्ष धारण करने की आवश्यकता होती है। नैतिकता की व्याख्या अस्तित्व के रूप में व्याख्या करने की प्रकृति है। कुछ धर्मों में यह परम्परागत भी होती है। यह भी कहा जा सकता है कि थोड़ा या अधिक यही बात धर्म के बारे में भी सत्य है परन्तु कम-से-कम इसका अहोस्व निश्चित रूप से पूर्णत्व की ओर ही अधिकांश है। इस नैतिकता में प्रकृति माने वाली भावना भी कहा जा सकता है। परन्तु इसी से कला और समय में भी प्रकृति होता है और वे दोनों अपने अत्यन्त रूप में धर्म का रूप बाल्य कर लेता है, बस कि नैतिकता भी। सौन्दर्य का धारण और सत्य के प्रति चिन्तन सुनत धार्मिक प्रकृति है। इसी तरह सत्य और सुन्दर की रक्षा के लिए नैतिकता का सुनतत्व—उच्च प्रयास भी एक धार्मिक प्रकृति है। इस प्रकार धर्म सर्व सिद्ध और सुन्दर का सम्बन्ध एक ऐसे रूप से करता है जो विज्ञान कला और नैतिकता के सम्बन्ध में नहीं मिल सकता। फिर यह भी सत्य हो सकता है कि दार्शनिक चिन्तन के अत्यन्त रूप काव्य-सर्वज्ञ और नैतिकता के प्रयास भी सुनत धार्मिक ही हैं।

यह स्वाभाविक है कि धार्मिक प्रकृति विशेषतः अपने सामाजिक पक्ष में कुछ विशेष लक्ष्यों के सम्बन्ध और निर्माण के लिए प्रेरित करती है। जैसे कि धार्मिक प्रकृति के अर्थ परन्तु भी करते हैं। यह भी स्वाभाविक

१ धार्मिक संस्थाएँ हैं कि उन संस्थाओं में धर्मों की भाँति कुछ ही तत्व भी हैं जिन्हें हम परम्परागत कहते हैं। इनका सबसे अधिक स्पष्ट रूप हम विभिन्न गिरजाघरों और धर्म साम्प्रदायिक संघों में देख सकते हैं।

१ लैडिकोवट एच डायमा 'संस्था १।

२ एनीमैडन ऑफ कल्चरल डिजासिटी' अर्थ १ अध्याय ४।

इसी तरह नैबोसिटवाद के विराम संघटनों से लेकर मित्र-नमोत्र के नामा-
 रण संघटन तक पहुँचा जा सकता है। कभी-कभी कुछ वर्गों में सामाजिक सत्य
 ऐसी संस्थाओं में ही निहित था कि उन्हीं के अधीन होते हैं। वे संस्थाएँ सामा-
 जिक संघटन के धारकों की प्रस्तावित सिद्धान्तों की घोषणा और विशेष
 समारोह करन था कि संवित्तक जीवन के सुधार की ओर ही अधिक ध्यान देती
 हैं। परन्तु उद्देश्य सभी के सामान्य होने हैं और उनका एक विशेष सामाजिक
 महत्त्व देने हैं। यह सही है कि कभी-कभी वर्ग के बारे में यह कहा जाता है कि
 यह एक सुख संवित्तक वस्तु है। कभी-कभी ऐसा भी सोचा जा सकता है कि
 व्यक्ति वर्ग को उगी प्रकार वृत्त करने हैं जिस प्रकार विद्युत्मा धरवा
 संगीतकमा को वृत्त किया जाता है। उनमें वे एक प्रकार का सतृप और धनु
 धारण की प्राप्त करन हैं। परन्तु सामाजिक कर्मण्य के साथ उन नामों का सम्बन्ध
 बहुत कम होता है और सामान्यतः धार्मिक संघटनों के साथ धरने-धारकों
 सम्बन्धित नहीं करते। प्राचीन गृह्यधारी मध्यकालीन सतृप और वे सुन्दर
 धारणाएँ (जैसे गेटे ने कहा है) उन प्रकृतियों के उदाहरण हैं। परन्तु सभी
 प्रकृतियों को धारण करने वाले भी सामान्यतः एक ही धार्मिक गणागत लोगों
 के साथ सभी करना धार्मिक उचित समझने हैं। मनोविज्ञान और इसी तरह
 की धर्म संस्थाएँ विशेषतः से सब के कुछ ऐसी धरवाधारणाओं से धनुधारणित
 होती हैं जैसी गेटे के नैबोसिटक मतों में व्यक्त हुई हैं। तो वे भी इसी प्रकार से
 ध्यान देने योग्य होती हैं। नास्तिक म विचारक समीक्षण और विचारक लोग भी
 कभी-कभी धरना एक संघटन बनाने हैं और विशेष उदाहरण के साथ धरने
 सामान्य सत्य की प्राप्ति म धारण समर्पण कर देती हैं। इस प्रकृति को भी
 धार्मिक कहा जा सकता है। यह निर्णय करना कुछ कठिन होता कि वैधानिकियन
 लोगों के संघटन को धार्मिक मन्त्र धरवा धार्मिक-सम्प्रदाय कहा जाए। इसी
 तरह सामाजिक धारणों के प्रकार के लिए उत्तरण करने वाले लोगों और सभी
 उद्देश्य की पूर्ति के लिए धरने लंबा को भी इस प्रकृति के कारण धार्मिक समझा
 जा सकता है, पर उनके उद्देश्य के अनुसार उन्हें धार्मिक वर्गीकरण में नहीं
 रखा जा सकता। कभी-कभी कुछ ऐसी धर्मव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है
 जैसे 'धर्मिकी लोकप्रणय एक धर्म के रूप में धरवा 'समाजवाद का धर्म'
 इस सब से यही ज्ञात होता है कि राजनीतिक धरवा सामाजिक धारणों का भी
 पूरे दिन से धनुसीनत किया जा सकता है और उन्हें जीवन का उच्च और
 सुन्दरतम स्वरूप समझा जा सकता है। फिर धार्मिक और धर्मिक संस्थाओं
 की स्थापना मुख्यतः धार्मिक प्रकृति वाले लोगों द्वारा की जाती रही है और ऐसी
 संस्थाओं को कभी-कभी विशेषतः धार्मिक समझा जाता है। इस तरह से यहाँ
 धार्मिक संस्थाओं से सब स्थापन धरवा में देना चाहिए। कुछ विशेष संस्थाएँ

ऐसे प्रभाव धर्म्य प्रभावों द्वारा सगुणित किये जा सकत हैं। कुछ भी हो ऐसे प्रभाव उन धर्म्य प्रकार के प्रभावों में से हैं जो बच्चे के विकासोन्मुख मस्तिष्क पर उसके अध्ययक के मातृमीय वर्गीकरण द्वारा प्रावरणक रूप में पड़ते हैं। धर्म्य प्रभाव यह रह जाता है कि बच्चे में इस प्रकार के धर्मिचार्य प्रभावों को किसी विशेष प्रकार की धार्मिक शिक्षा से मुक्त किया जाए अथवा किसी विशेष प्रकार की धार्मिक प्रवृत्ति पैदा की जाए।

बहु स्पष्ट है कि कुछ धार्मिक विचारों का धिखण दिया जाना चाहिए क्योंकि विभिन्न धार्मिक व्यवहारणाओं को समझे बिना इतिहास को समझना बठिन होगा। इसी तरह धार्मिक विचारों के मूल्यांकन के बिना साहित्य भी कुछ धर्मों में निरर्थक ही होगा क्योंकि बहुत से महान् लेखकों के प्ररणा-स्रोत धार्मिक विचार ही रहे हैं। परन्तु बिन विचारों से लोग प्रभावित हुए हैं उन्हें जानने और उनका मूल्यांकन करने का धर्म्य प्रावरणक रूप में उन्हें प्रहण करना नहीं होता। इसके विपरीत किसी परा को प्रहण करना स्वाभाविक होता है और धर्म्य बहु ठीक भी होता है फिर भी विभिन्न प्रवृत्तियों को जानने और उनके मूल्यांकन का धर्म्य महत्व होता है। उदाहरणरूपक रूप में धर्म्य प्रहण को जानने के लिए धर्म्य के प्रति उनके दृष्टिकोण में सहानुभूति होनी चाहिए। इसी तरह ऐतिहासिक धर्मिचार्यों और साहित्यिक धर्मिस्थितियों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। धार्मिक विचारों और प्रवृत्तियों का इस तरह का अध्ययन मानव-व्यक्तित्व के लिए सामग्र्य होगा और इसका हानिकारक प्रभाव न होगा। वर्तमान काल में विभिन्न धार्मिक प्रभावों के ज्ञान और उनके मूल्यांकन के बारे में भी यही कहा जा सकता है। ऐसा करना धर्म्य प्रारम्भिक शिक्षा के लिए एक प्रावरणक तत्व के रूप में समझा जाना सवा है।

इसके उपरान्त धार्मिक प्रवृत्ति के मूल तत्व को प्रहण करना प्रावरणक ही जाता है। यदि उसे हम धर्म्य शिक्षा और सुन्दर के प्रति समर्पण की भावना समझते हैं तो बहु स्पष्ट है कि उसे धर्म्य धर्मों प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। विज्ञान का अध्ययन विशेषतः धर्म्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। कला का अध्ययन धर्म्य के प्रति प्रेम जागृत करता है और इतिहास व साहित्य का धर्म्य अध्ययन धर्म्य के मूल्यांकन तथा धर्म्य के प्रति दृष्टा की ओर इतर ही ले जाता है। धर्म्य का वैयक्तिक तथा सामाजिक रूप समझने के लिए नवयुवकों के सामने इस तरह से सोचकर रख देना चाहिए जिससे उनके प्रति सहानुभूति पैदा हो और वे उसे अपने व्यवहार में लाएँ। परन्तु यह सब कुछ इस ढंग से किया जाए कि वे सब चीजों धर्म्य के किसी विशेष मत सिद्धान्त या किसी विशेष विधि पर आधारित न हों ताकि बिन लोगों के मस्तिष्क धर्म्य दृष्टियों पर धर्म्य प्रभाव डालने के चाहे अपने से बड़े लोगों के

सिद्धान्तों को ग्रहण करें या न करें, परन्तु उन मौलिक धारणात्मक मूल्यों को प्रकट करने कि मूल रूप से प्रकृत्य की प्रवेक्षा सत्य प्रकृत्य की प्रवेक्षा सौन्दर्य, और प्रकृत्य की प्रवेक्षा शुभ प्राप्त होते हैं। इस तरह से धार्मिक भावना निरंतर प्राप्त होती रहेगी तब ही उसका विशेष रूप चाहे कुछ भी क्यों न हो। यही एक विशेष सत्य है पर इसकी विस्तृत व्याख्या यहाँ नहीं की जा सकती।

धर्म को मनों तथा गिरजाघरों की परिधि में बाँध देना तो स्पष्टतः उसे प्रत्यक्ष संकुचित बना देना है। जैसा हम पहले बता चुके हैं इसके वास्तविक रूप का दर्शन शिक्षा प्रवृत्त धर्मों कायों राजनीतिक

५ धर्म और समाज प्रायः कला और विज्ञान की सेवाओं तथा धर्म प्रवृत्तों विधियों में होता है। परन्तु इसके धार्मिक विवेक दर्शन तो हमें सामाजिक दृष्टि के सुधार के प्रयास में होये

धीरे उसका अभ्यन्त प्रवृत्त वर्तमान प्रवेक्ष के दृष्टिकोण से धार्मिक महत्त्व रखता है। जैसा हम पहले बता चुके हैं कि विशेष रूप से संगठित समाजों में भी न्याय और समता के धारणों का पूर्ण धारणात्मक कठिनाई से ही होता है। और जो मूलतः साम्य है वह सीमित और कठिनाई से बिरा हुआ है जिन्हें दूर करना प्रवृत्त पूर्णतया समाप्त करना बाँधनीय है। ये कारण उन समाजों के लिए धार्मिक सही रूपसे मागूँ होते हैं जो धर्म पूरी तरह से सुव्यवस्थित नहीं हो सके। इन कठिनाईयों का समाधान तथा उनके ऊपर उठाने का कार्य मानव जाति के हित में सभी धर्मों करती रही है। मुझ-काल में ऐसे प्रयासों का महत्त्व प्रत्यक्ष रूप में विशेष होता है परन्तु धार्मिककाल में भी उन्हें धर्मों के सेवा-कार्यों जैसे धर्मरक्षण धर्मरक्षणों तथा धर्म स्मरणों धार्मिक में निरंतर प्रवृत्त मिलते रहते हैं। और इस तरह के कार्यों से यह धर्म सम्पत्ति शिक्षा और धर्म परिस्थितियों के कारण व्यक्ति धर्म वर्गों के धर्म के धर्म प्रवृत्त धार्मिक धर्मों को पाठने का काम होता है। धार्मिक काल में धर्मधार्मिकीय धर्मों में इन धर्मों के विकास का धर्म उदाहरण मिलता है। निस्तान्त्रेह इन धर्मों का प्रत्यक्ष रूप से धर्म के धर्मों में कोई धारणा नहीं किया जाता। परन्तु यदि हम इस धर्म के धर्म धर्म में धार्मिक तो यह कार्य धार्मिक भावना से प्रेरित होने चाहिएँ और धर्मरक्षण में धर्मों धर्म स्थान ऐसे कार्य करना प्रवृत्त प्रवृत्त प्रवृत्त हैं। संभवतः उनके कार्य का यही पक्ष निरव्यक्त रूप से धार्मिक धर्मरक्षण एवं मागूँ हुआ है। यह कार्य धर्म धर्म धर्मरक्षण धर्मरक्षण के धर्मरक्षण नहीं धारणा, धर्म धर्मरक्षण प्रयास होने के कारण पूर्ण तरह नहीं हो पाया। इसका मूल कारण धर्म धर्मरक्षण कारणों की तरह मुख्यतः धर्म-स्थानों के धर्मरक्षण का न होता ही है। परन्तु धर्म के मूल धर्मों की धर्मरक्षण के कारण धर्मरक्षण धर्मरक्षण की धारणा की जा

सकती है। इस प्रकार विचारों के मतभेद जो लोगों के गूबक-गूबक विद्युत बलि और सम्झाने पर आधारित होते हैं, सदस्य के इन व्यावहारिक प्रयास को रोकने में समर्थ नहीं होते।

जैसे जम व्यापक एक संकुचित धर्म में शिक्षा सामाजिक संगठन और सामान्य हित की भावना के उद्धान के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है जैसे ही राज्य भी उसके संरक्षण में विमुख नहीं रह सकता।

१. राज्य और धर्म - राज्य और धर्म का घटती सम्बन्ध दिखाने में धर्मको बहिष्कारों प्राप्ति है और उन्हे यहाँ प्रवर्णित भी नहीं किया जा सकता। यहाँ कुछ सामान्य-विज्ञान ही प्रतिपादित किए जा सकते हैं।

धार्मिक संस्थाओं का प्रमुख कार्य शिक्षा प्रसार है। घट राज्य और शिक्षा का जो सामान्य सम्बन्ध है उसे ही राज्य और धर्म के सम्बन्ध में भी समझा जा सकता है। राज्य को शिक्षा के पहलु की तरफ ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि यह उसके विभाग के अन्तर्गत बात है परन्तु राज्य का शिक्षा की पाठ्य-सामग्री लिखण-लिखि और उनके संचालन के साथ वैज्ञानिक रूप से कोई सम्बन्ध नहीं होता।^१ व्यावहारिक रूप से किसी धर्म या किसी धर्म संस्थान को राजकीय बोधित करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं होगी चाहिए। यदि यह व्यावहारिक सम्बन्ध भी पाता है तो एक ऐसी धार्मिक-संस्था को मायदा भी जानी चाहिए जो राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा कुछ राजकीय अनुदान प्राप्त करे। परन्तु शिक्षा की धर्मको पर्याप्तता की प्रवेष्टा धर्म के बारे में यह निर्णय करना अत्यधिक कठिन हो जाता है कि कौन-सी संस्था को उचित रूप से राष्ट्रीय आवश्यकताओं का पूरक माना जाए। इस सम्बन्ध में किसी निरिच्छत विज्ञान की स्थापना नहीं की जा सकती। इसका निर्णय राज्यों में विचारों और भावनाओं की बदलती हुई स्थितियाँ ही होंगी।

धार्मिक यह प्रश्न और अधिक कठिन इसलिए हो जाता है कि यह एक कुछ औद्योगिक समस्या नहीं रह जाता। राष्ट्रीय जीवन के सम्बन्धित धार्मिक धर्म से अनिच्छत रूप से सम्बन्धित होते हैं और धार्मिक धर्मिक-धर्मियों के रूप में प्रकट

१. इस विषय में विभिन्न लेखकों द्वारा कई मतदान मिले गए हैं जैसे मैन्वु चार्ल्स के धर्म की तुलना 'कन्वर्ज्ड इन्डिया' तथा वा. एम्बरक द्वारा के धर्म की तुलना 'कन्वर्ज्ड इन्डिया' तथा ए. ए. ए. के धर्म में। यहाँ धर्म तथा धर्म प्रदाने लेखकों का उद्देश्य न करना सम्भव नहीं परन्तु उनके इस में सम्बन्ध है कि उन्होंने पूर्वोक्त लेखकों से कुछ अधिक बात कही हो। मैं जिस विचारधारा को प्रस्तुत कर रहा था वह जो धर्मिकी धर्मियों की विभिन्नता का एक मॉडल उदाहरण है २१५ २६ में अपने योग्य है।

होते हैं। राजकीय समारोह प्रायः धार्मिक रूप लिये होते हैं। यद्यपि यह धर्म धार्य हो जाता है कि वे अपने रूप धार धारकर किसी विशेष धार्मिक संगठन से हैं। यहाँ पर यही प्रतिपादित किया जा सकता है कि वहाँ तक सम्भव है इस तरह के समारोहों के सभी प्रमुख कर्मों के प्रसूतार हों प्रकृत कर्म-से-कर्म उनके विपरीत भी न हों। यह धार्य तो कर्म-से-कर्म हमारा लक्ष्य बनना ही चाहिए यद्यपि यह अपने-आपमें पूर्ण नहीं है।

दूसरी बड़ी कठिनाई यह रह जाती है कि कुछ विशेष प्रकार के धार्मिक संगठन सामान्य सभी राज्यों प्रकृत कुछ विशेष प्रकार के राज्यों के विद्ये होते हैं। वे अपनी सम्प्रदाय में हस्तक्षेप करते हैं। एक विद्यालय अन्तर्राष्ट्रीय धर्म जैसे कॅथोलिक किसी विशेष राज्य की सीमाओं में बड़ा होने का शक्यता है। मध्यकालीन धार्य तो यह था कि राज्य धार कर्म का एक-दूसरे के प्रति अनिच्छा सम्बन्ध है। दूसरी धार धार्मिक व्यक्तित्व प्रकार का धर्म जैसे मित्र-समाज अपने धारको राज्य से एकत्र रूप रक्षता है। इस प्रकार राज्य को प्रकृत धर्म इन दो विपरीत प्रकृतियों के बीच विकसित है। उद्ये चाहिए कि यह विभिन्न मतों के धार सहायुक्ति रक्ष विद्ये वे उद्ये धारों में किसी प्रकार की धार न डालें। धार राज्य उद्ये धार्मिक नियन्त्रण करने की धार करता है तो धर्म की स्थिति एक न्यायाधीश के रूप में धार जाती है। गिब्सन^१ के अनुसार रोम में प्रकृतित प्रकृत की विभिन्न प्रकृतियों को वहाँ के लोग उद्ये प्रकार पूर्ण धार्य समकृत वे उद्ये धार्मिक लोच उद्ये धार्य धार न्यायाधीश उद्ये सामवायक धारते वे। परन्तु न्यायाधीश लोच उद्ये उद्ये नही होते वे तो सामान्य धार की धारका सब को धार स्वतन्त्र धार को धारका परम्परागत धारों को धार्मिकता धारते हैं। परन्तु यह समस्या तो हमें धार्मिक उद्येधुता के सामान्य धार की धार में जाती है यद्यपि धार पर धार से ही प्रकृत धारका धारका रक्षता है।

धार्मिक-उद्येधुता विद्येधुता धार उद्ये धार्मिक धार्मिक सामान्य समस्या का ही एक धार है इसका उद्येधुता हम पहले ही धार चुके हैं परन्तु इस सम्बन्ध में ही कुछ विशेष कठिनाईयें हैं उद्ये धार्मिक उद्येधुता पर प्रकृत धारका धारका है। धर्म के सम्बन्ध में मध्यधेधुता का धारधुता धार यह उद्येधुता पर धार्मिक है धार के धर्म के सम्बन्ध में ही है उद्येधुता धार्मिक धार संगठन के सम्बन्ध में नहीं तो उद्येधुता धारका धार्मिक धार धार पूर्ण उद्येधुता

१. धार उद्ये धार के धार्मिक है। धी मोतार्मिका' धार "विद्येधुता धारका में धार धार प्रकृत धार है।

२. 'विद्येधुता धार धार धार २।

के प्रति विमता से है। इस तरह के मतभेद केबल विचार-सम्बन्धी ही नहीं व्यावहारिक भी होते हैं और उनसे सम्बन्धी सबकुछ उत्पन्न हो जाते हैं। जनते अन्तर्जातीय और गृह-मुद्द भी हो सकते हैं। और यदि इन मतभेदों से वास्तविक संघर्ष नहीं होता तो वे नृणा तथा विरोध उत्पन्न करते हैं। परन्तु जिस संस्था का उद्देश्य सामान्य जनता का हित हो वह अपनी इच्छा से ऐम मतभेद नहीं रख सकती। और मतभेद प्रकटा विमता के प्रति यदि जोड़ा नौ जाए तो मतभेद समाप्त हो जाते हैं। इस बात को इस प्रकार निरटारा का सकता है कि हम उन कारणों पर विचार करें कि किनसे मतभेद पैदा होते हैं और किनसे नहीं। उदाहरण के लिए अनुष्ठानात्मक प्रकटा वर्ष सरकार सम्बन्धी मतभेद यदि प्रापारभूत प्रकटर से ही सम्बन्धित है तो वे महत्वपूर्ण नहीं होते। राज्य के दृष्टिकोण से यदि संवैधानिक मतभेद ही हों तो विघ्न-कठिनाई नहीं होती। कुछ कार्यों के करने के ढंग के प्रकट प्रकटा उही होने के प्रकटर से भी कई गंभीर समस्या पैदा नहीं होती। उदाहरण के लिए नमु-बाध के प्रयोग औरकाइ नृत्य प्रादि देखना ऐल प्रकटा रंगमंच प्रियाई प्रकटा-इहण पर के अनुसार विरोधता घाटीरिक् प्रकटा प्रम्य दर्शों का प्रयोग माता पिता तथा बच्चों के पारस्परिक कर्त्तव्य सैङ्गिक-साम्य प्रकटा शैवम्ब प्रादि के भेद। यद्यपि ये सब बातें एक सैठी मानसिक दशा वालों के लिए सम्बन्धी भेद भी पैदा करती हैं परन्तु सैठीपूर्ण संघर्ष के लिए यह भेद आवश्यक भी होते हैं सैठ से सहिष्णुता के मार्ग में कोई गंभीर समस्या नौ खड़ी नहीं करते। इस प्रसंग में यह मान लेना सरल हो जाता है कि एक मनुष्य के लिए नौ कुछ उही है वह इधरे के लिए उही नहीं हो सकता यद्यपि व्यावहारिक रूप से यह बात माग्य नहीं हो सकती। वास्तविक समस्या प्रमुख रूप से तब उत्पन्न होती है जब अधिकारों का बाधा प्रिया जाता है प्रकटा एक व्यक्ति के कर्त्तव्य कृत्यों के अधिकारों और प्राबन्धों में बाधक होते हैं प्रकटा वे राज्य की स्वतन्त्र-जता में हस्तक्षेप सिद्ध होते हैं। इस प्रकार की विमताओं प्रकटा मतभेदों पर बहुत बराब न प्रिया जाए तो समस्याएँ उड-पड़ी होती हैं। इन कठिनाइयों से मुक्ति तभी मिल सकती है जब यह मान लिया जाता है कि विभिन्न प्रकार के शीघ्र प्रकटे विभिन्न प्राकरण के लिए स्वतन्त्र हैं। किसी राज्य के लिए प्रकटा कठिनाइयाँ नौ ही हो सकती हैं—एक प्रकटिष्णुता और दूसरी प्रकटे प्राधिपत्य प्रकटा प्रकीरता को स्वीकार न करना। और बर्मे से उत्पन्न कठिनाइयों में इन में से एक प्रकटा होगी बाई रहती हैं।

यह स्पष्ट है कि कोई भी राज्य प्रकटिष्णुता को सहन नहीं कर सकता और न ही वह किसी के हस्तक्षेप का विरोध प्रिये बिना रह सकता है। यदि

हम यह चाहते हैं कि दूसरे लोग हमारे अधिकारों का धारण करें, तो उस अधिकार के साथ यह कर्तव्य भी जुड़ा रहता है कि हम भी दूसरों के अधिकारों और अधिकारों का धारण करें। अपनी परम्पराओं में किसी का अधिकार ही कुछ विद्वानों को न हो, परन्तु उनमें सहिष्णुता का ही नहीं अभाव क्योंकि परम्पराओं को दृढ़ करने वाली सभी जियाएँ दूसरों के अधिकारों का सम्मान करती हैं। इसी तरह ऐसे किसी भी विद्वानों को सहा नहीं जा सकता जो दूसरों पर अवरुद्धता बोधा जाता है। ऐसा सभी संभव हो सकता है जब उस अधिकार को बहुत ही परिष्कृत बनाया जाए और कार्यक्षेत्र में सुरक्षित परिणत न किया जा सके। ऐसी अवस्था में भी वे विद्वानों सभी सहा हो सकते हैं जब किसी राज्य के अधिकारियों को प्राप्त किया जाए कि इन विद्वानों को सभी की कार्यक्षेत्र में परिणत नहीं किया जा सकता अथवा उन्हें यह विद्वानों ही जाए कि यदि वे कार्यक्षेत्र में परिणत हो भी जाएँ तो उन्हें सम्मत्ता से रोका भी जा सकेगा।

इसी तरह से राज्य की असीमता स्वीकार न करने वालों को भी सहन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह तो उस सत्ता के प्रति अस्वीकृति है जिस पर राज्य का अस्तित्व आधारित होता है। राज्य की सीमाओं में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को राज्य-सत्ता मान्य होनी ही चाहिए। फिर ऐसी अवस्था में भी स्वतंत्रता की कुछ सीमा होती है परन्तु जहाँ तक यह सहा हो। यदि कुछ नागरिक किसी विशेष कानून अथवा किसी नियम को अनुचित समझते हैं तो सभी उन्हें अन्याय अस्वीकार करने की अनुमति भी दी जा सकती है। पर यह इस अर्थ पर ही संभव हो सकता है कि वे अन्य सभी कानूनों का पालन करने वाले हों और उनके इस एक कानून से अस्वीकार से हड़ताल पर कोई प्रभाव न पड़े। उदाहरण के लिए युद्ध-काल में यदि कोई राज्य सेना में प्रति कार्य-धर्म का नियम तोड़ता है तो और कुछ नागरिक इस तरह की अस्वीकार के लिए इन्कार करते हों और यह इसलिए कि वे लोग किसी विशेष युद्ध को अनुचित समझते हों अथवा उनका यह विद्वानों हो कि सभी युद्ध अनुचित होते हैं तो उन्हें ऐसी सेवाओं से मुक्त किया जा सकता है। परन्तु यदि ऐसे लोगों की संख्या इतनी अधिक हो कि उनकी मुक्ति युद्ध की सफलता में बाधक हो अथवा उनकी स्वतंत्रता राज्य की अस्वीकार-सत्ता के प्रति अपमान का विषय बनती हो तो उन्हें दूर रखा जाना होता है। इसी तरह यह अधिकार किसी विशेष प्रकार के अर्थ की अस्वीकृति में भी लागू किया जा सकता है कि उसे लगाने का ध्येय अस्वीकारणीय है परन्तु यह तो स्पष्ट है कि इस तरह की दूर-रचना इस आधार पर सभी स्वीकार नहीं की जा सकती कि दावा करने वाले लोग अस्वीकार से असह्य हैं और उनके अधिकारों को दबा

दिखा गया है। यह पूरा इस आधार पर विमल सचती है कि जलस किमी
 धार्मिक सिद्धान्त का उल्लंघन हो जाता हो अर्थात् इन प्रकार के यह भूम में एक
 धार्मिक बात ही होती है। यमस्या से सम्बन्धित कठिनाइयों को प्रभाव में
 लाने और उन्हें दूर करने के सम्बन्ध में कुछ सामान्य विचार रचना धीरे इतना
 हो कहना पर्याप्त होगा क्योंकि यहाँ धार्मिक विस्तार से निपटना तो इस विषय
 से दूर जाना है।

पूर्वोक्त विरसेवण से यह स्पष्ट है कि धार्मिक भावना इस किछी विवेक
 राज्य की सीमाओं से भी परे से आती है। अधिकतर पुराने बर्म मूलतः बर्हिमि
 बाल बर्हि से सम्बन्धित होते हैं। उनसे पूजा का सम्बन्ध
 ८ अन्तर्राष्ट्रीय बर्म उच्च शक्ति से जोड़ा जाता है जो भारत-बाह्य के लोगों
 के विरुद्ध राष्ट्रीय जीवन का समर्थन और रक्षण करती
 है। धार्मिक प्रथिमा में इसी विचारधारा की एक धार्मिक पुनर्जाति रिचाई होती है।
 सभी महान् बर्मों का उद्भव भी इसी प्रकार से हुआ है। ईसाई बर्म में तो यह
 एक मुख्य तत्व रहा है जिसने मूढ़ी और ग्रीक लोगों के बीच की खाई को गाय
 किया। स्टोइक लोगों में निरक्षर ही एक बड़ धार्मिक भावना की उद्देश्य भी अपनी
 विस्म-अभ्युत्थ की भावना द्वारा ग्रीक और रोम के प्रति इसी तत्व की सेवाएँ
 की हैं। उनके पूर्व मुकुरात और प्लेटो ने भी ईवी धर्मधारणा की नैतिक स्वरूप
 देकर नगर राज्यों को निकट साने तथा एसेन्स और स्पार्टा के विरोधी धारणों
 के सम्बन्ध का कार्य किया था। नैतिकता का सर्वोच्च विरहभ्यापी धर्म बनने
 का था, परन्तु सारे संसार पर साम्राज्य स्थापित करने की भावना के साथ
 मिलकर यह अपने धार्मिक धर्म को जो मेटा। यह ईश्वर और हीनर दोनों
 की एक साथ सेवाएँ कैसे कर सकता था? फिर यह स्पष्ट है कि कोई संवदन
 धार्मिक रूप से विस्मभ्यापी बनना चाहता है तो उसे सामान्य हित की पूर्ति के
 लिए सफल की भावना से अनुप्राणित होना चाहिए और ऐसी भावना अपने
 भूम रूप में धार्मिक ही होगी। केवल धार्मिक भावनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का
 अन्त नहीं कर सकती। अतः पूर्व और पश्चिम को एक साथ जोड़ने के लिए और
 उनके मिला से एक नैतिक विरहभ्यापी धर्म के विकास के धनेकों प्रयास किये
 गए। ऐसे प्रयासों से एक नया अंतरा भी पैदा हुआ जाता है कि कहीं ने पहले के सम्म
 धर्मों की मेली में एक नया सम्प्रदाय न खड़ा कर दें। इस पूर्व-अन्तित उद्देश्य को
 बनवाने बर्मों के क्रमिक-विकास द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इन बर्मों
 में से प्रत्येक बर्म का उद्देश्य अपने सिद्धांतों में से परम्परागत तत्व का अनुसंधान
 करना ही होना चाहिए और उन मूल तत्वों को साम्यता की आनी चाहिए जो
 सब धर्म और सुन्दर की भाँति साक्षर होते हैं।

९. इन्दुनाथजीव 'हिन्दुधर्म' "दि नर्थे अपरिचित। जोधितो इतिमोरी "दि
 निन्धीवस्तु अपर भारत एन्डर"।

पहले जो कुछ कहा गया है उससे यह प्रत्यक्ष मान्य होता है कि सभी धर्मों में शोष होते हैं। सभी धर्मों की अपनी सीमाएँ होती हैं। मैं सोचता हूँ कि सावधानी से उनका अध्ययन करने वाले पाठक इन धर्मों में शोष इन तत्वों से सुपरिचित होंगे। उनमें से किसी के भी विशेष शोषों को यहाँ प्रदर्शित करना उचित नहीं है परन्तु सभी धर्मों के शोषों को गिना बेना उपयुक्त होगा।

(१) धर्म-विश्वास—अधिकीय धर्मों में धर्म-विश्वास के कुछ तत्व भिन्न होते हैं। अर्थात् उनमें ऐसे सिद्धान्त प्रकटा प्रचलित होती हैं जिन पर सावधानी पूर्वक चिन्तन करने पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता और उन्हें उचित नहीं बताया जा सकता।

(२) मूर्तिपूजा—अधिकीय धर्म प्रत्यक्ष रूप से सत्य और सुन्दर में पूर्ण निष्ठा न रखकर उन्हें कुछ प्रतीकों के पूजन के साथ जोड़ देते हैं जैसे अन्धकार प्रकटा हित के प्रतीक प्रकटा कुछ अस्पष्टता के प्रतिपादक रूप को राज्य जैसे प्रतीकों के साथ जोड़ देना। परन्तु वे प्रतीक पूर्ण समर्पण के योग्य नहीं होते।^१

(३) सिद्धान्तवाद—अधिकीय धर्मों में कुछ ऐसे सिद्धान्त होते हैं जो बौद्धिक चिन्तन के सामने टिक नहीं सकते परन्तु उन्हें धर्माधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त होती है और उनका धीरस्य भी इन्हीं के कथनों पर आधारित होता है।

(४) सम्प्रदायवाद-अधिकीय धर्म कुछ लोगों तक सीमित रहते हैं। वे या तो धर्म शोषों की प्रचलित प्रथाओं का मूल्यांकन करने में असमर्थ होते हैं या इस तरह के शोषों के लिए स्वयं के इन धार्मिक दायों को प्रयुक्त किया जा सकता है जिन शोषों का एक दूसरे के प्रति गुना करने का ही धर्म होता है वे एक दूसरे के साथ प्रेम करना क्या धर्म !

(५) धार्मिक कट्टरता—जब कुछ लोगों के सीमित दृष्टिकोण को ही निष्ठा प्रकटा भक्ति के योग्य ही समझ लिया जाता है, अर्थात् धर्मों की प्रकटा जब उसे स्पष्ट भी मान लिया जाता है, तब उसे धार्मिक कट्टरता कहा जा सकता है।

(६) धर्म प्रकटा मिथ्याचार—मूलतः सीमित और अपूर्ण धर्म के प्रति निरान्त सम्पत्ति अहित कठिन ही होती है। इस धर्म में विश्वास न होने पर भी धर्मों को दिखाने के लिए कुछ शोष भक्ति करते हुए नजर आते हैं। उनका इस तरह का कट्टरता सरलता से ही धर्म में अन्तर्हित हो जाता है। दिखाने के लिए किया गया विश्वास बहाना बनाने के विश्वास से कम नहीं है।

१. मूर्तिपूजा मूलतः प्रतीकवाद है। जब वह रूप को पूर्णतः समझ लिया जाता है तो फिर उसमें कोई अर्थान नहीं। अरेबनाथ यैत्र ने अपनी पुस्तक, अन्धकार अन्धकार दिया जा चुका है मैं अन्धकारों प्रकटा की है १ सं १२-७।

(७) व्यष्टिवाद—बुद्ध लोग धार्मी परम्परागत सीमाओं अथवा शोषों से बचाव के लिए अपने व्यक्तिगत धर्म का प्रतिपादन करते हैं। यदि ऐसे लोग महान् मेधावी अथवा विमताल धार्मिक प्रवृत्ति वाले नहीं होते तो उनका वह कार्य परम्पराओं से भी अधिक सीमित रह जाता है।

(८) रहस्यवाद—व्यक्तिगत धर्म रहस्यवादी स्वरूप ग्रहण कर लेता है अर्थात् उसमें कुछ धीरे-धीरे समग्र बहुसुधों पर बहुत अधिक बल दिया जाता है और इस तरह से बहुमानवता के धामे बढ़ने के संघर्ष को रोक देता है^१।

(९) कठिनाई—जब लोग वर्तमान धर्मों में शोक देगने लगते हैं और उन शोषों को दूर करने में असफल रहने हैं तो वे किसी एक धर्म को स्वीकार करने के लिए विद्यमान होते हैं। उनमें मिथ्या की कोई बात नहीं होती फिर भी उनकी परम्परा ऐसी होती है कि उसे एक धोर नहीं किया जा सकता। वह अथवा कुछ धर्म से दूर नहीं होती। यह ठीक ही कहा गया है कि जब मनुष्य धर्म छोड़ देता है तो वह फिर आधर जाता शुरू करता है।

(१०) धर्म—यदि धर्म का धर्म सर्वोत्थ के प्रति मिथ्या या अंधि है तो धर्म का धर्म उक्त प्रकृति से है जो पूर्ण मिथ्या से हीन हो। यह प्रकृति एक ऐत विस्थाप के प्रति होती है जिसका धर्म होता है कि न कुछ नमा है और न कुछ सत्य इसके कुछ फर्क नहीं पड़ता।

सामान्य निष्कर्ष स्वरूप अभी कहा जा सकता है कि हम किसी धर्म को पूर्ण नहीं कह सकते अथवा उसे विरल-स्वापक होने योग्य नहीं कहा जा सकता।

परन्तु विभिन्न धार्मिक अथवा धार्मिक प्रकृतियों में १० धर्म में प्रयति अर्थात् रूप से सुधार लाना जा सकता है। यदि हमारा सामान्य-रूपन नहीं है तो धर्म के निष्कर्ष पर इतना कहा जा सकता है कि सभी मौलिक धर्मों का मूलन रूप का अधिक वैतनरूप से अथार्थ और परम-तत्त्व को जानना और उसका साधनस्कार करना है उन। धर्मों में कुछ धर्म ही ऐसे होते हैं जो अथार्थ तत्त्व के किन्हीं भी मूर्त्यों से मुक्त नहीं होते। अतः अथार्थ धार्मिक भावना वाले सभी धर्म प्रयति करने वाले होते हैं^२ और वे धर्म धार्मी सीमित अर्थात् प्रकृति को दूर करना सीखते रहते हैं। वे अपना ध्यान विभिन्न धार्मिकों की ओर केन्द्रित करते हैं—बेटे की भाषा में उक्त विद्याम अथार्थ की ओर बिना के धार्मिकता से मुक्त होकर धर्म और मूर्त्यों के पूर्वत्व में इच्छा से निवाह करते हैं।

१. कुछ धार्मिक धर्मों के धर्मों में वह वह सामान्य शोष है। परन्तु मैं सोचना है कि अथार्थत्व के धर्म में वह दिखा दिया है कि वह निरल लोगों के अथार्थ मान लिया है अथवा संधीर नहीं है।

२. धर्मों के धर्मों में "वि अथार्थत्व का अर्थ अथार्थत्व और "वि अथार्थत्व अथार्थ विवेकाधीन एक ही धार्मिक धार्मिकता है।

तृतीय अध्याय संस्कृति का स्थान

सम्पूर्ण पुस्तक में हमारा यह दिखाने का नयन रहा है कि समाज कीई
 अप्राकृतिक रचना नहीं है अपितु वह मानव की वास्तविक प्रकृति पर घा-
 रित है। उक्तका नयन इस प्रकृति को पूर्णता पर
 १ संस्कृति का धर्म पहुँचाना है। यद्यपि हमें फिर व्यक्ति पर ही लौट कर
 माना पड़ता है। समाज मनुष्य के लिए बना है
 ननुष्य समाज के लिए नहीं बना। कभी-कभी कुछ प्रायुत्साही लोग किसी विशेष
 सामाजिक इति के लिए विशेषता धर्म घबरा राज्य जैसे विद्यालय सपठनों के
 लिए समाज की धुला देते हैं। परन्तु प्लेटो तथा धरस्तू ने उनको नहीं बुलाया
 और न उसको जेसा की, यद्यपि कभी-कभी ऐसा समझा जाता है। प्लेटो
 ने अपने धार्य समाज के विवरण को पूरा कर सैने पर यह सोचा कि उसे
 राज्य नहीं कहा जा सकता जिसका अस्तित्व बरती पर नहीं अपितु वह तो
 एक स्वयं की वस्तु होती। "बुधरे धर्मों में धार्य से ही भेष्ट व्यक्तियों को
 अरसा मिली है। बीरे बीरे से उनके बिना भी प्रेरणा प्राप्त करते हैं जैसे जम्होनि
 बहुमे-बहुत इसके प्रसंगी राज्य को अपने धार्य से पहुँचाना। इसी के अनुसार
 रिपब्लिक' के अन्तिम भाग में धार्य राज्य को खान नहीं बिना गया, अपितु
 प्राला के उत्तरांतर विकास को कुछ धार्यकारिक रंग से प्रस्तुत किया गया
 है।^१ ठीक इसी प्रकार से धरस्तू ने नागरिक दुष्टों के विवरण को प्रस्तुत करने
 के उपरान्त यह प्रतिपादित किया कि मानव-जीवन की उच्चतम उत्तमि-
 त्विते वह "सैद्धांतिक-जीवन" कइता है^२ जहाँ में प्राप्त होती है। और फिर
 उसके धार्य के रूप में, जीवन के व्यवहार में धार्य वाली सामाजिक क्रिया
 आवश्यक होती है। यह विचार इस विचार के विरुद्ध भी नहीं पड़ता कि
 मनुष्यों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला हित एक सामान्य हित होता है क्योंकि

१ यह विषयक कुछ टिप्पणियाँ आगे परिशिष्ट में दिवेंगी।

२ "रिपब्लिक" अध्याय २०

वह विपुल रूप से निजी व्यक्तित्व का निर्माण करता है जिससे हम स्वार्थों की परिधि से बच जाते हैं और एक ऐसे ध्यानत्व को प्राप्त करते हैं जिसमें सभी मोक्ष माय भेदों हैं। इस प्रकार की उपमर्श को संस्कृति उद्यम से व्यक्त किया जाता है जिससे सामान्यतया शिक्षा का उसके उन व्यापक घर्षों में जिसमें वह जीवन के लिए तैयारी की अपेक्षा जीवन का उद्देश्य होती है प्रशिक्षित किया जाता है।

शिक्षा के सीमित और व्यापक घर्षों के अन्तर को हम पहले देख चुके हैं। सीमित घर्ष में मुख्यतः इसको सामुदायिक-जीवन में मूलपाठ करने की एक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। व्यापक घर्ष में यह मानव की साम्यात्मिक प्रकृति का विकास है जिसका एक साधन सामुदायिक जीवन भी है। पहला घर्ष दूसरे घर्ष की एक पूर्ववस्था है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी एक विशेष स्थिति और विशेष कर्तव्य के साथ निरन्तर नागरिक बनने से पहले किसी विशेष समाज का नागरिक बनना पड़ता है परन्तु जब किसी की शिक्षा पहली प्रक्रिया तक ही पूरी की जाती है तब उसके लिए यह एक बहुत भयंकर सतह की बात होती है। प्राकृतिक काल में बेटे इसके एक उत्तम उदाहरण हैं। उसने अपनी शिक्षा कभी पूरी नहीं की बल्कि वह सर्वत्र एक बहुत व्यापक संस्कृति के अनुष्ठीयन में अपने जीवन के उच्चतम शिक्षारों को बर्बादम्भ उच्च बनाने में मने रहे। यदि ऐसे प्रयास सामाजिक उद्देश्य की धर्मधारणा से उचित होते हैं तो वे विपुल स्वार्थ के कुछ ही अन्तर हो सकते हैं। बेटे पर यह बोधा रोपण किया जाता है कि उसमें मुख्य रूप से अपने देश के राजनैतिक विकास में स्पष्टतः रक्षि लेने का वितास्त धन्यत्व या और इसके साथ ही व्यक्तियों को विशेष प्रकारों और द्रव्यों में प्रस्तुत करने की अपेक्षा स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत करने की एक प्रवृत्ति थी। परन्तु यदि यह बोधारोपण सही है तो वह अपनी धारम-संस्कृति को सीमित करने की ओर संकेत है। ऐकतपीयर प्रवृत्ति जेठो की तनुद मानकता अपने पूर्ण घर्ष में संस्कृति का एक सुन्दर उदाहरण हो सकती है। ऐसी सम्पूर्णता निस्सम्बेह हममें से अधिक लोगों के लिए असम्भव होती है। निस्व-आश्रय कुछ ही चुने हुए लोगों के लिए सुशिक्षित होता है परन्तु मूर्ख के साथे उसे सभी लोगों को स्थान मिलता है। लोगों की यह प्रवृत्ति रही है कि वे संस्कृति को विधेवाधिकार के रूप में प्रवृत्त करते हैं। इसे कई बार एक "सुन्दर-मुण के रूप में व्यक्त किया है।" और धायव विद्वान् और मत्र

१ इस तुलना का सर्वोत्तम प्रयोग डैनिसन के ललितकर्म के इस बचन में मिलता है "एक पुष्प की तरह ज्ञान के बार को उद्यम रूप में पहल करती हुए।" (Beating all that weight, of learning lightly like a flower.)

पुरुष' के रूप में वर्णित किए जाने वाले किसी व्यक्ति के विशेषाधिकार के रूप में समझा जाता है। इसके विरुद्ध श्री टी० एच० ग्रीन ने मूसा की धर्मशाखा कि मयबान् के सभी लोग सिद्ध पुरुष होने चाहिए का उल्लेख करते हुए यह धारणा व्यक्त की है कि एक समय थाएया जब प्रत्येक धर्म धरने-धारणको सही धर्मों में एक 'महपुरुष' के रूप में पहचानेया और अन्य व्यक्ति भी उसे ऐसा ही समझेंगे। पर थायह यह उल्लेख अपने अप्रतिष्ठित धर्म में इतना प्रचलित हो गया है कि इस धर्म में विशेष प्रकटा प्राप्त बर्ग ही थाता है। जर्मनी के 'कस्टर' शब्द के प्रयोग में यह गमती नहीं की गई परन्तु उसमें हमके विपरीत धर्म का बोध है। वह किसी विशेष सम्मता के सामान्य धारार के रूप में प्रयुक्त किया गया है और इसमें व्यक्ति-विशेष के निर्माण पर कोई विषय बस नहीं दिया गया। यदि हमारा 'संस्कृति' का प्रयोग बायबानी में समाहित होता है, तो जर्मनी के प्रयोग में कृषि का भाव छिपा हुआ है, ऐसा बोधारोपण किया जा सकता है। भातब के व्यक्तित्व निर्माण को तुलना उचित रूप से पुनः धरवा जमीन के मुबार के साथ नहीं की जा सकती। इससे तो अधिक सुन्दर तुलना एक फल की वृद्धि के साथ की जा सकती है जो फल एक पेड़ में भगा होता है परन्तु धरने एक स्वतन्त्र बीजन का विकास भी करता है। मैथ्यू मानरड ने (स्विस् का अनुसरण करते हुए) संस्कृति के तत्व को एक प्रकार के 'माधुर्य' और 'प्रकाश' से बना बताया है। उनके वाक्य में कुछ महा धर तो धरबन धा गया है, परन्तु वह रूप-से-रूप उसके दोनों सामाजिक तथा वैयक्तिक पहलुओं पर प्रकाश डालता है। यदि हम इसके विशेष विषय और सम्बन्धों पर विचार करें तो हम उसकी प्रकृति को भासानी से समझ सकते हैं।

संस्कृति का पाण्डित्य प्रदर्शन से धन्तर दिखाने से उसने महत्त्व पर अधिक प्रकाश पड़ेगा। पण्डित यह कहताता है जिसने कुछ विशेष वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त किया है परन्तु जो उसका मूल्य नहीं पाक २ संस्कृति और वाण्डित्य सकता तथा जो महत्त्वपूर्ण धी महत्त्वहीन में भेद नहीं प्रदर्शन कर सकता। यह सका की बात है कि वाण्डित्य का वैधा करण स्वरूप कुछ पण्डित का-का वा यद्यपि उसे हम बोधाओपण से मुक्त किया जा सकता है क्योंकि उसने अपने मुख्य विषय के महत्त्व पूर्ण विरसेपण को ध्यान में रखते हुए छोटी-छोटी बातों का वर्णन भी किया है ३पर यह निर्णय करना कि 'जीना नहीं जानना' कठरे में भर हुआ है। विशेष

२. 'संस्कृति' के लिए प्रयुक्त होने वाला जर्मन 'विश्व' शब्द इसके ठीक अनुकूल है।

योग्यता पाण्डित्य प्रदान की ओर प्रेरित करती है^१। यह बात विद्वानों तक ही सीमित नहीं है। सम्यक् व्यक्तियों में विद्या की बातें होती हैं वे भी पण्डितान्तक कहलाती हैं। पाण्डित्य प्रदर्शन सम्बन्धी तर्कों से अज्ञान व्येय का सम्बन्ध है उसे यदि बुझान के रूप में विद्विन किया जाए तो कोई बुरी बात नहीं होगी। किसी व्यक्ति की बुझान बेवकूफ दिखावे की हो सकती है। यद्यपि वह एक सामान्य सूचना प्रारंभ के लिए हो या ज्ञानकारी के किसी एक विशेष विभाग से सम्बन्धित हो सकती है वह एक 'बुझान' ही होती है। यदि उसके उचित अनुपातों और सम्बन्धों पर ध्यान नहीं दिया जाता तो उसे ठीक तरह से हृदयंगम नहीं किया जा सकता। सुसंस्कृत तथा हुष्य व्यक्ति वह होता है जिसे कुछ उपयोगी ज्ञान होता है और जिसका वह सही मूल्यांकन करना भी जानता है तथा जिसे उचित स्थान पर नोटोकर रखता है। किसी एक संकीर्ण को पण्डित कहा जा सकता है यदि वह अपनी विषय कक्षा के अतिरिक्त सम्यक् किसी विषय पर विचार नहीं करता। मिस्टम के कम-से-कम ठीक पहचाना है कि—

‘वह व्यक्ति जो इन धारणों का ठीक निर्णय कर सकता है

किर उनके बारे में प्रायः आन्तरिक विवेचन भी करता है यद्यपि नहीं।^२

पर संस्कृति का परिष्कार भी जब अपनी स्वच्छता को छोड़ देता है और एक दिखावा-भाव रह जाता है। तब वह तत्काल पण्डितान्तक कहला सकता है। एक सौम्य-साहसी भी ठीक उसी तरह से पण्डित कहला सकता है, जिस तरह से एक भावा-धारणी। कभी कभी तो बर्न को किसी मत के कठोर कटकरों में बन्द कर दिया जाता है। तो वह भी ऐसा ही बन जाता है। सही सुसंस्कृत व्यक्ति एक विषय की परीक्षा व्यवस्था की यद्यपि भी काम करने वाला होता है। इतिहास की विविध वस्तुओं का निर्माण महान प्रेरितों तथा वैज्ञानिक और कलाकारों ने किया है। किसी व्यक्ति के प्रेम का कारण उद्धार सिद्ध हो सकती है परन्तु उद्धार सिद्धा भी तब तक कुछ नहीं देती जब तक कोई व्यक्ति उसके सही तरह प्रेम नहीं करता। जैसे बर्न-वर्न ने प्रकृति से प्रेम किया था। पर सायब इस विषय की ओर ध्यान बढ़ाना भी एक पाण्डित्य-वर्तन की ही बात होगी।^३

१. इस विषय में कैम्ब्रिज की कबी-कबी विरोधक क्ले से डॉक्टरों के साथ तुलना की जाती है। उसके साथ साथ क्ले का किया गया है उसका निर्णय देने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ, (मैं कुछ लोगों के साथ ऐसा सोचता हूँ)। परन्तु कम-से-कम मैं इसकी उत्तिपूर्ति तो करनी ही चाहूँ। प्रायः बर्न सभी बर्नों के साथ साथ बाधना है। और संस्कृति के प्रत्येक रूप की संभावना व विद्या में विद्या की होती है।

२. He who of these delights can judge, yet spare
To interpose them oft, is not unwise

३. मोडरेन का पाण्डित्य वर्तन सम्बन्धी विचार “एन एन वेबस्टी” १, २४

विज्ञान को कभी-कभी संस्कृति के विरुद्ध भी समझा जाता है और वह तो स्वीकार करने की बात है कि इसके अनुष्ठीयता के लिए अपनाये गए तरीकों को मुश्किल से ही सांस्कृतिक कहा जा सकता है। यही

१ विज्ञान का स्थान बात साहित्य के अध्ययन के बारे में है पर वैज्ञानिक अध्ययन को इसके श्रेष्ठ ध्येय से पृथक् करना सरल नहीं। यही बात मूल रूप से इसकी विषय-वस्तु के बारे में भी कही जा सकती है जब कि वे केवल तथ्यों के संग्रह तथा तथ्यहीन ज्ञान के समाबोजन के रूप में व्यवहृत होते हैं। परन्तु विज्ञान के सांस्कृतिक महत्त्व को न समझे जाने का मुख्य कारण इस धर्म का संकुचित धर्म में प्रयुक्त होना ही है। किसी एक विद्या में सही और व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने को ही वैज्ञानिक अध्ययन कहा जाता है। गणित सम्बन्धी विज्ञान इस विषय में भ्रांत्यधिक सही व परंपरागत-से है। परन्तु यह धर्म मुख्यतः प्राकृतिक और भौतिक विज्ञानों के लिए प्रयुक्त होता है। विज्ञान के धर्म में जर्मन धर्म्य 'विश्लेष काण्ट' का प्रयोग कुछ अधिक व्यापक धर्म में हुआ है। मानव प्रकृति मानव-समान, मानव-संस्थाएँ, मानव इतिहास और मानवीय भाषाएँ हीक सही तरह से वैज्ञानिक अध्ययन के विषय हैं जिस तरह से निर्जीव प्रकृति की सन्ततियाँ अथवा विभिन्न प्राणियों के जीवन। यदि यह सत्य मान लिया जाए (यद्यपि मैं सोचता हूँ कि वह पूर्णतः सही नहीं है) कि मानव-जाति का उत्तम अध्ययन मानव ही है तो फिर यह कहना भी उचित ही होगा कि उस अध्ययन का अनुष्ठीयता वैज्ञानिक विधि-से होना चाहिए। मानव-विज्ञान को सामान्यतया इतना सही नहीं कहा जा सकता, बिना सही विभिन्न प्राणियों के विज्ञान अथवा वनस्पति या अध्यात्म विज्ञान होते हैं। परन्तु प्राकृतिक विज्ञानों में भी सही होने का एक कम होता है और वैसे कि भारत में कहा है कि संस्कृति में बहुतेकपूर्ण तन्त्र यह है कि उसमें किसी विषय विशेष के अनुसार जितने वाचास्पद की आवश्यकता होती है, उतने अधिक (वाचास्पद) की माँगा नहीं की जा सकती। मौलिक वैज्ञानिक अध्ययनों के साथ मिलते सम्बन्धी उद्घापोह और कास्मिक अनुमान लवाचार चलते हैं। हमारे ज्ञान और अनुमान के बीच के अन्तर को जानना जीवन का एक बहुत मुख्यवान पाठ है और विज्ञान के मुख्य विषयों (इतिहास सहित) के अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट और

अन्तर्द्वयी है। परन्तु उन्होंने ज्ञान के सही और सतत प्रयोग के साथ अन्तर नहीं दिखाया। इसके साथ ही वे यह ज्ञान देने में भी सक्षम नहीं हुए कि अध्ययन के साथ-साथ धर्म्य वस्तुओं का भी उही तरह से मूल्यता से अनुष्ठीयता दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए वह उही हो सकता है कि जर्मन जाया की संस्कृति का विनाश परिदृश्य के रूप में होने के कारण हुआ पर इसके साथ ही उन लोगों में बन अथवा केवल या सैन्ध-सैन्ध के अनुष्ठीय प्रयोग तथा परम-धर्मों के प्रति अपना कद से जगाहर भी उनके गारा के रूप कारण से।

हृदयमय हो जाती है। परन्तु वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा प्राप्त होने वाले पूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तनों को ग्रहण करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न विभागों के अन्तर्गत जो समझा जाए। सम्भवतः यह सत्य है कि प्रारम्भिक विद्या में किसी विशेष विज्ञान या विशेष अध्ययन अन्तर्गत नहीं होता, परन्तु उनके स्थान पर अपने-आपें घोर विघ्ने हुए पदार्थों का सामान्य अध्ययन अत्यन्त किया जाता चाहिए। शायद यह भी उमड़े कम सत्य नहीं है कि कुछ विभिन्न विभागों के अध्ययन के बाद उनके सामान्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार किया जाए और उनकी साधारणतः प्रवृत्तियों को पृथक् करके देखने की चेष्टा की जाए। ऐसा करने से स्वभावतः एक और अत्यात्म विज्ञान के अध्ययन की प्रवृत्ति होती है। यह मानना कठिन है कि अध्ययन का यह नम स्कूल कालों के बाद नम से से तोप अन्तर्गत रूप से पूरा हो सकता है।^१ मौखिक अनुसंधान को छोड़कर भी वैज्ञानिक अध्ययन जीवन भर का कार्य हो सकता है और मानव प्रवृत्ति तथा इस विश्व जिसमें हम रहते हैं के निर्माण के स्पष्ट ज्ञान की प्राप्ति ही सभी अर्थों में मानव-जीवन का परम लक्ष्य कहा जा सकता है। यह विमुक्त बौद्धिक सत्य है यद्यपि कुछ धार्मिक लेखकों ने उचित ही यह प्रतिपादित किया है कि बौद्धिक लक्ष्य ही जीवन का केवल मान लक्ष्य नहीं परन्तु वह तो जीवन के लक्ष्यों में से एक है। बुद्धिजीवी होने के नाते हम इसके प्रतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहते कि हम अन्तर्गत और अधिक प्रकाश अथवा ज्ञान की खोज करते रहें। धार्मिक प्रवृत्ति (व्यापक रूप से उपयोगितावादियों के कारण) यह है कि बौद्धिकता को बुरा माना जाता है और 'विद्वेकवाद' और स्वतन्त्र विचार आदि अर्थों का प्रयोग किया जाए, परन्तु यह प्रवृत्ति सीधेनीय है। ज्ञान के समान कुछ अन्य वस्तुएँ भी हैं जिनका अर्थना महत्त्व होता है। परन्तु जब हम ज्ञान से सम्बन्धित होते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम पूरी तनदेही से मैदान में उतरें और आगे बढ़ते जाएँ—पैदों के सर्वों में अहाँ तक उर्क हमें से जाए। विज्ञान करने की अर्थना किसी बात की खोज करना अर्थना है।

विज्ञान की अर्थना कसा अधिक वैयक्तिक और अधिक स्वनात्मक होती है। जब विज्ञान मुख्य रूप से विस्तेरणात्मक है तो कसा मुख्यतः सामान्यतात्मक।

कसा में किसी एक वस्तु, जिसका अर्थना होता है, का
 ५ कसा का स्थान वैयक्तिक सामान्यतात्मक होता है इसके साथ ही कसा अपने-आप-में दूसरों को प्रभावित करने वाली तथा 'साधारण-सामान्य' देने वाली स्वनात्मक अर्थना है। सभी में जैसा कि हाठनिग ने कहा है कि 'ये अर्थनिग एक हीसरी अर्थनि में न होकर एक अर्थनि में' परिचित होती है। कसा के कुछ सरल अर्थों में तथा कुछ महान् व पुरुषार्थ में भी
 १ श्री. वर्ने "द्वारक एवमेवान एव वार"

कलात्मक व्याख्या इतनी स्पष्ट और अपरिहाय होती है कि वह सगम्य सभी की समझ में आ पाती है। इसके शब्दों में उसके परिछामोंके उचित मूल्यांकन के लिए विशेष व्याख्या आवश्यक होती है। परन्तु सभी स्थातों पर किसी के मस्तिष्क की एक कलात्मक व्याख्या ही दूसरों के हृदयों में प्रभाव उत्पन्न करती है।

बैसे विज्ञान का अर्थ 'सत्य होता है उसी तरह बैसे कला का अर्थ 'सौन्दर्य'। कला जिन वपार्यों को अपने उपयोग में लाती है वे अपने स्वरूप में सहे हो सकते हैं। और जिसे वपार्यवादी कला कहा जाता है उसमें वे प्रायः टीक सही रूप में होने हैं। परन्तु एक कलात्मक रचना द्वारा उन्हें सौन्दर्यपूर्ण बना दिया जाता है। और वहाँ तक कहा जा सकता है कि केवल इती प्रविष्टा से सौन्दर्य का कोई श्रेष्ठ रूप सर्वत्र प्रचलित का पाव होता है। कुछ रंगों और ध्वनियों के सौन्दर्य तथा दृश्य रूप निस्सन्देह इतने आकर्षक होते हैं कि उनकी उपमा नहीं की जा सकती। अतः संवीत व चित्रकला के सरस रूप अत्यन्त व्यक्त को भी तुरन्त प्रभावित कर सकते हैं। सौन्दर्य के प्रायः कठिन होते हैं और उनको समझने के लिए जीवन की अनुभूति तथा कलात्मक रसा स्वादन की प्रवृत्ति अत्यावश्यक होती है। प्रकृति में जिस तरह के सौन्दर्य को मात्र पहचानना हम सीख गए हैं वैसे भाविकासी लोभ नहीं कर सकते हैं। और कुछ घंटों में उन विकसित मस्तिष्क वाले लोगों के लिए भी समझना कठिन होता है जिन्होंने किसी विशेष विद्या में सोचना नहीं सीखा। कला को एक कलाकार की भाँव से देखना पड़ता है चाहे वह एक श्राद्धिक वरदान हो अथवा वह कलात्मक अधिष्ठापित का प्रभाव हो। यदि वह स्वीकार कर लिया जाए कि सौन्दर्यानुशीलन मानव जीवन के मुख्य कार्यों में से एक है तो संस्कृति का वह रूप कुछ घंटों में अनिवार्य ही समझ जाना चाहिए। इसमें एक भाव छिपा है जिसमें पीक लोगों का वह कहना सत्य है कि सौन्दर्य सभी लक्षों का परम लक्ष्य है। हम कीदम की यह बात मानते हैं कि सत्य ही सौन्दर्य है परन्तु सत्य यदि सौन्दर्यान्वित नहीं तो वह पूर्ण तुष्टि प्रदान नहीं कर सकता। बुद्धियानु बन्ना अज्ञान को वरदान समझ जाने पर भी मूर्खता नहीं कहसाएगा। यदि ऐसा हो तो भी बुद्धिमत्ता को केवल अधिष्ठित ही बात नहीं कहा जा सकता यदि उसके द्वारा हम केवल यह कहने में ही समर्थ हों कि अब कुछ निःकार तथा आत्मा को स्तेय देना है। हम सत्य का अनुशीलन इस पाषा से करते हैं कि विश्व में व्यवस्था हो तथा सौन्दर्य को अधिष्ठापित अनुसन्धान का परम अन्त स्वीकार करें।

1. देवैर तथा ब्रह्म जन्म महादुःख रहसे अतःसम प्रतीत होते हैं परन्तु मैं सोचना है कि जब सौन्दर्य को कुछ सीमित मात्र में लिखा जाता है तब सबसे अतीव्यर किया जा सकता है। इसी विषय पर श्री भार० श्व० वैदिक महोदय की पुस्तक 'द्वैत का स्वीकृत देव'।

काव्यात्मक साहित्य को कला की धेड़ो में कहा जा सकता है और गद्यात्मक साहित्य भी जब वास्तव में साहित्य की परिधि में आ जाता है, तो उसे भी कलात्मक विशेषताओं से युक्त समाना जा सकता है।

२. साहित्य का स्थान काल्पनिक के यह प्रतिपादित किया है कि कविता का विपरीत स्वरूप गद्य नहीं बनूँ विज्ञान है। केने मूलतः इसी विशेषी भावना को प्रकट करता है। परन्तु बहुत से साहित्य में कला और विज्ञान दोनों की विशेषताएँ सम्मिश्रित होती हैं। यह हमें यह बताया है कि सौम्य रूप का है परन्तु यह जब गूढ कला की तरह अभिव्यक्त नहीं करता यद्यपि कुछ अर्थों में उसकी व्याख्या और विस्लेषण भी करता है। अधिकतर साहित्य के बारे में यह भी सत्य है कि यह एक काव्यात्मक-रूप में होता है परन्तु जैसे पद्य की परिभाषा रचनाएँ अर्थ की बहुत-सी कविता तथा कुछ भिन्न रूप में वाचनिक की विद्यात्मक तथा ठाँकुर रचनाएँ काव्य के रूप में आती हैं। ऐसी कविता को गूढ कला नहीं कहा जा सकता। साहित्य का धीमा सम्बन्ध अन्तर्द्वारे के साथ है। इसका विपरीत विज्ञान और कला से यह अन्तर है कि विज्ञान सर्व से और कला कुम्हार से सम्बन्धित होती है। अतः कारणों में यह सत्यता के सभी आयतों के साथ पूर्णतः माननीय है अतः इसका बर्तन मानवता के रूप में किया जाना उचित है। यह उस मूल्य की व्याख्या करता है जिसे कला अभिव्यक्त करती है और उस सत्य को अभिव्यक्ति प्रदान करता है जिसे विज्ञान मौनता है।

व्यापक अर्थों में एक भाषा बोलों का साहित्य ही लोगों में एक जैसी मानसिक स्थिति पैदा करने में सहायक होता है। कभी-कभी निःसन्देह एक जैसी मानसिक रसा होना लोगों के लिए तुच्छतापूर्ण बात होती है। देश के विद्यालय मान में विस्तार होने वाले प्रातःकालीन वैदिक अथवा आर्यकालीन साप्ताहिक रत्न-परिभाषाओं के समाचार और लेख अनेकों महत्त्वपूर्ण अर्थों के बारे में जनता के एक विद्यालय समुदाय को अत्यन्त छिछोरे व भड़े विचार प्रदान करते हैं और इसी कारण उस समय की लोकप्रिय पुस्तकों की अधिक गूढ नहीं होती। अतः उचित रूप से लेखकों को भी बढ़ते हुए सस्ते साहित्य की खोज दिना करनी पड़ी। परन्तु कम-से-कम ऐसा साहित्य भी सामान्यतः एक पाठ की मर्यादा से तो कुछ मोड़-बहुत अन्तर्द्वारे ही होता है तथा कुछ अर्थों में लोगों को यह ज्ञान कराने में उत्कर्ष होता है कि वे एक विद्यालय समुदाय के नागरिक हैं। इस प्रकार का ज्ञान लोगों में अपने सामुदायिक-जीवन के बारे में एक पूर्ण जानकारी वाले के लिए तथा आत्मोन्नतिकात्मक रूप से उसके पुस्तकों की अर्थों के लिए एक प्रतिपादित इच्छा उत्पन्न करता है। इस तरह से यह लोगों को विज्ञान तथा कला के अध्ययन के लिए तैयार करता है जिसके लिए वे कठिनाई से ही तैयार हो पाते हैं। टारस्टॉव का उच्च कला के प्रति अंतर्गत आयत इसी

तब तब प्रत्यक्षरूपी रूमे जब तक विमान बना आलोचना तथा दर्शन उमकी स्पष्टता नहीं करते । व भी तब तक प्रत्यक्षरूप तथा निर्जीव ही रहेंगे जब तक उ-हे वैयक्तिक प्रज्ञा द्वारा हृदयवचन नहीं कर लिया जाता और फिर उन्हें अपनी प्रयत्न अनुभूति का एक रूप नहीं दे दिया जाता । संस्कृति के बिना जीवन घनस्फुटन है और जीवन के बिना संस्कृति एक पाण्डित्य-मात्र है । विद्या का अधिकतम भाग यदि इन अभिव्यक्ति-कारण से हीन रहता है तो वह व्यर्थ होता है और यह जान केवल स्फुटन व कर्मियों में ही जाने वाली विद्या के लिए ही नहीं मायु होती बरन् प्राचीन प्राण्ड हाते रहने वाली इशारी अपनी विद्या पर भी मायु होती है ।

संस्कृति प्राथमिक रूप से एक वैयक्तिक निधि है और वह कुछ लोगों की ही निधि हो सकती है । पर यह स्पष्ट है कि जिस धुम की ओर इसका संय

८ संस्कृति का सामाजिक महत्त्व
 धनमात्र प्राप्ति के लिए ही नहीं है बल्कि उन कुछ एक लोगों में प्रतिबोधिता होती है तथा अन्त में उन्हें कुछ एक विशेष सामाजिक लाभ ही प्राप्त करने के लिए बिजली हो सकते हैं पर उनकी ध्येयता यह प्राथमिक मानवीय है और प्रमुख रूप से सभी लोग उसमें भाग ले सकते हैं । यह संयम की ओर प्रवृत्त नहीं करती जिस अर्थ में नैतिकता को दिया जाता है उन अर्थों में भी इससे संघर्ष नहीं होता । जिस अर्थों में धर्म से संघर्ष होते हैं उनमें संस्कृति संयम का कारण नहीं होती । यह स्वभावतः मानों को एक दूसरे की भर्त्सना के लिए भी प्रवृत्त नहीं करती । कोर् भी मनुष्य धरना कोई भी राष्ट्र अपने संवर्द्धनार्थ और प्रयोग प्रालाभों में लगे के लिए पुस्तकों व बाह्य-वर्तों के लिए संघर्ष नहीं करते जैसे कि वे अपने भोजन व वस्त्र को लगे व लोहे के लिए संघर्ष करते हैं जब कि कुछ लोगों के लिए दूसरे प्रकार की वस्तुओं की ध्येयता पहले प्रकार की वस्तुओं की संयमता से प्राप्त नहीं होती । निरसन्नेह कुछ विद्वानों व भाषाओं के अधिकारण तथा और दर्शन में तो प्राथमिक स्पष्ट रूप से कुछ विशेष विचारधारण हैं परन्तु अनेक संघर्ष सामाजिक रक्तहीन और बहुदूरदर्शित होने हैं । इसके प्रति रिक्त ऐसा तब भी नहीं होता जब संस्कृति के विभिन्न विभागों के विचारों याचनाओं और अभिव्यक्तियों में सम्पर्क स्थापित किया जाता है प्रायः वेसा नैतिकता और धर्म की विभिन्नता के कारण होता है । संस्कृति का सामाजिक रूप मूलतः इसके प्राथमिक स्तरों में ही प्राप्त होता है । धर्म कमाकार, धार्मिक और-नाथ्य प्राचीन-मीत और नृत्य मूलतः एक सामाजिक तत्त्व से मुक्त होने हैं । प्राकृतिक पदार्थों का प्रथम प्राथमिक अध्ययन और व्यक्तियों तथा जनता के कार्यों का इतिहास सामाजिक पृथक-पृथक् व्यक्तियों की ध्येयता समूहों

द्वारा निर्मित हुआ है और अध्ययन के रूप में उनका मूल्यांकन भी उनके समूह को ही पौरव प्रदान करता है। इसके उपरान्त संस्कृति का रूप विद्युत् वैद्युतिक बनता गया जबका कम-से-कम कुछ चुन हुए लोगों की परिधि में सीमित होना पड़ा। विज्ञान के प्रतिम वर्षों का बोध और मूल्यांकन मन्त्रे समय तक अध्ययन के बाह्र धारा है। यही बात कला साहित्य और दर्शन के प्राथमिक कठिन कर्मों के बारे में भी लागू होती है—और विशेषतः जब उसे सुदूर युगों जबका विदेशों से लाया जाता है। हेनल महोदय ने यह कहा करता है कि केवल एक घाबरी ने उनके दर्शन को समझा परन्तु उसे भी कुछ समय में नहीं था। इस कठिनाई से सरलता की धार जाने के भी कुछ मोड़ आए। रोसपीयर और मिस्टर के कुछ विस्तृत सामन्तस्युक्त कठिन कर्मों का भार बने स और कई वर्षों के सरसतम कर्मों के धामन का युग भी धारा है। विज्ञान की मूल धारधारणों को समझने के बाद उसके परिणामों को भी प्राथमिक सरल और सबे कम सुलभ बनाया गया। साहित्य और दर्शन भी कुछ कठिन तथा घस्याट भाषा से बनता की भरल और प्रवाहपूर्ण भाषा की धोर लोटे। टामस्टाय ने लोकसत्त को भी धामान्त करने वाली अपनी क्षमि में हामर और रोसपीयर से बहुत धाने निकल जाने पर यह प्रतिपादित किया कि 'मौलिक कला लोकप्रिय होनी चाहिए'। यह कुछ उसी विचार के समान है जिसके अनुसार स्वर्ग का साम्राज्य केवल बच्चों के प्रवेश के लिए है और उन बच्चों के लिए मानव के सुन्दरतम प्रवासों को बहूत कुछ धर्मों में सुलभ बनाया जा सकता है। परन्तु इसके लिए पहले कई वर्षों तक प्राथमिक परिधम की आवश्यकता है। यही तक कि वे भीतिक पत्रों की धार लयमन सर्वसाधारण के जीवन के लिए सुलभ हैं जिनके लिए पुराने समय में टात्रा लोव भी स्वर्ष तदुपा करठे थे और यही बात कुछ धर्मों में धाम्यात्मिक पत्रों के लिए भी सत्य है। पर जब इस बात के लिए धारह करना उचित होता कि भविष्य की धाराएँ संस्कृति को धमि-प्राप्त एकाधिकार से धाराने में ही है। पिछले दिनों महाकाम्य संज्ञात्मिक धारल तथा विज्ञान का कला धार्य पुराने धाहीमहक धारि पुराने युगों की धर्मो गाथाओं का बखान करते हैं। पर यह लम्बेहास्य है कि क्या वे भविष्य में संस्कृति के समूह होने धरका उन्हें होना चाहिए या नहीं? भविष्य ने कुछ धर्म-मन्त्रिरी धिरकों की धरजा धरका उनके लाल-लाल हन एक बड़ी धर्या में सुन्दर तथा सुन्दर धारधर्मों को देखने की धारा कर सकते हैं। देव लदुध लालकों धाने महाकाम्यो धरका धाही साधर्मों के हर्ष और लोक की धरजा धरका उनके लाल-लाल हन धिरय के धराने को सुन्दरों के एक-दुध के बीच सुन्दर देखने की धारा भी करठे हैं। पूर्ण मानव-धारि की सुन्दरतम उपलब्धियों के धर

में हमारे पास जो यांत्रिक साधन हैं उनके द्वारा धात्र का हमारा कोई मजदूर घपका किसी परिवार की कोई ध्यस्त माता कमा धीर विधान के लिए थोड़ा-सा समय निकालकर सही धर्षों में सुसंरुत धीर ध्यम क्यों नहीं बढ़ना सकते ?

धब हम इस सकते हैं कि किस धर्ष में विद्या को जीवन के लिए एक तैयारी को घरेसा एक लक्ष्य के रूप में बरिणत किया जा सकता है। धरि हमारा यह विचार सही है कि मानव का हिन १ मानव जीवन के लहव प्रानी प्रकृति के उध्धतर लक्ष्यों की पूर्णता में लषा के रूप में संरुति उगहीं साधनों के सहारे धपने निम्नतर-लक्ष के निष्पन्न में है। ली यह स्पष्ट है कि संरुति के विविध रूपों में हम उसके क्रमिक साधारण को प्राप्त कर सकते हैं। सही धर्षों में एक सुसंरुत ध्यक्ति मानव प्रकृति द्वारा प्राप्त करने योग्य परनहित को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि हम यह प्रस्तुत कर चुके हैं कि किसी विशेष प्रकार के ज्ञान घपका सीधर्म के प्रतीक रखने वाले ध्यक्ति को सही धर्षों में सुसंरुत ध्यक्ति नहीं कहा जा सकता। एक सुसंरुत ध्यक्ति ली यह होता है जिसने ऐसे पदार्थों के प्रति किसी प्रवृत्ति का विकास किया है लषा जो भूलता एक प्रेमी या धनुरामी होता है धीर यह प्रकृति व मानव-प्रकृति के सुध्धतरतय रूपों की सदा-हना धीर लक्ष प्रकार की सदाहना करता है जिसे यह फिर स्वर्ष घपमाता है। यहाँ तक कि यह धपने पास कुछ भी नहीं रखता फिर भी लषके पास प्रत्येक वस्तु होती है। धरि यह धसकम भी रहता है ली भी लषे प्रधंसमीय विषय प्राप्त होती है। लैसा कि बार्डनिम करते हैं—

प्रेष में लषकता है धबधर्ममाधी

एक प्रार्थि है, धन नहीं कुछ भी क्यों न दुर्बाली करनी पड़े ?

धीर कुछ धुरस्कार क्यों न हो लराहनीम बार्डिनीम के रूप में एक पार्तिनीम ही है यह !

२. In love success is sure

Attainment—no delusion, 'Whate'er

The prize be : apprehended as a prize

A prize it is'

—Browning

उपसंहार सामान्य-परिणाम

हम अपने मानवता-सम्बन्धी सामाजिक-जीवन के सर्वोत्तम को पुष्ट कर चुके हैं। पन्थ में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समाज का सामान्य ढाँचा किसी स्वातन्त्रियेय या बाध को छोड़ सर्वत्र मानव की सामाजिक प्रकृति पर आधारित होता है। उसका सामाजिक आधार मानव की सभी धर्मवादात्मिक प्रकृति पर स्थित होता है और उसकी प्राथमिक भावों द्वारा पुष्ट होती रहती है। पर समाज की उन्नति अन्ततः अपने मानव की शक्ति करने की निर्यातक शक्ति द्वारा ही प्राप्त होता है और वही उसके निर्माण का एक मूल-तत्त्व है। इस प्रकार वे निमित्त समाज को स्थिर रखता अपरिचरितगामीन संपन्न के रूप में अस्तित्व नहीं किया जा सकता अतः वह जो अविनाशित विकासशील होता है। हमारी वर्तमानपरक प्रकृति सभी धारक्यकताओं और परात्मिक इच्छाओं पर बहुत धीरे-धीरे आधारित प्राप्त कर पाती है, पर हमारी वह विवेक-शक्ति भी स्वयं इस प्रकार की अस्तित्व है जो निरन्तर सबको प्राप्ति में प्रयत्नशील रहती है पर उन सबको भी धीमे ही प्राप्त नहीं किया जा सकता। हमारे सब का कोई स्पष्ट और प्रत्यक्ष विश्व नहीं माना जा सकता। परन्तु वह एक ऐसा धारक्य होता है जो हमारे सामान्य-विज्ञानों में स्थित और निश्चित रहता है, फिर भी उसके किसी विद्येय पक्ष में परिचरित भी हो सकता है। मानव-जीवन के अर्थ पक्षुधर्मों की तरह इस पक्षु के सम्बन्ध में भी वह सर्वत्र द्वारा किया गया विश्लेषण प्रबन्ध भी रही है।¹

१. "Our destiny our being a heart and home
Is with infinitude and only there—
With hope it is, hope that can never die
Efforts and expectations, and desire,
And something evermore about to be." —Wordsworth

घटना धार्य घटना हृदय व धर
 यह घटना है केवल यह है यह
 बरा है यह उन प्राधान्यों से जो मर नहीं सकते कभी
 प्रयास प्राधान्यों से घोर इच्छाएं,
 घोर भी अपेक्षा बढ़ती हैं निरन्तर ।

घन हम घन किसी विशेष पथ पर अभी माने के लिए पथ-अवरोधन की
 प्राप्ति नहीं कर सकते बल्कि जिस दिशा की धार यह स्वयं ही बढ़ता है उसके
 सम्बन्ध में कुछ सामान्य गुणधर्म ही प्राप्त होने हैं ।

धर्म जो कुछ कहा गया है उसे ध्यान में रखते हुए यह स्वीकार किया जा
 सकता है कि सामाज्य-वर्धन से भी सामाज्य-वर्धन प्राप्त की तरह प्रयत्न रूप से
 कोई भी व्यावहारिक परिणाम नहीं निकलते । समाज

१ सामाज्य-वर्धन का धर्म हमें गीटियां पकाना नहीं बताता" उसने हमें यह
 व्यावहारिक सूत्र भी नहीं पता चलता कि हम काम के लिए क्या किया
 जाए । परन्तु यह स्वीकार कर लेने का मतलब यह
 नहीं होता कि उसका कोई व्यावहारिक सूत्र ही नहीं । यह हमें बतलाने ही उन
 महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को समझने में सहायता देता है जिस सिद्धान्तों द्वारा हमारा
 कार्य निर्धारित होता है । इस पर बल देना आवश्यक है क्योंकि वर्धन-साधन
 के कुछ विधान इस बात को मानने को तैयार नहीं । यह एक तथ्य है कि वर्धन
 निकल आने का समय केवल जो कुछ है उसे जानना घबरा उससे मुक्ति करना
 है और कुछ लोग इसी विचार से मानव-जीवन के अध्ययन की घोर प्रवृत्त हुए ।
 परन्तु यह विचार उस कथन के एकदम विपरीत है जिसके अनुसार यह कहा
 जाता है कि मानव-जीवन वैज्ञानिक अध्ययन का विषय किसी भी रूप में नहीं
 बन सकता क्योंकि यह परिवर्तनशील है । यह परिवर्तनशील है परन्तु परिवर्तन
 शील इसलिए होता है कि उसका घनता एक धारण है और उसका ध्यान
 निरन्तर उस धारण की घोर रहता है । हम कह सकते हैं कि उस धारण का
 अध्ययन करने से क्या है का अध्ययन होता रहता है परन्तु उस क्या है
 का धर्म वर्तमान धर्मत्व से तो नहीं लिया जा सकता बल्कि उसका धर्म यह
 है कि उसमें क्या है जो स्वयं प्रकट करेगा ।

सांवाहिक जीवन अत्यधिक अतिथि है इसलिए उसमें व्यर्थकार निश्चित
 सिद्धान्त प्रयुक्त नहीं किये जा सकते । इस विषय के कुछ प्राचीन विद्वानों
 ने इस बात की उद्देश्य करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने सोचा कि मानव की
 विचारशील प्राणी के रूप में ही बहिष्कृत कर देना और धार ही फिर उसके पथ
 प्रवर्धन के लिए कुछ धर्म-सिद्धान्त स्थापित कर देना ही काफी होगा । इसलिए
 इन धर्म में विवेकवार प्रयत्न बौद्धिकता के सम्बन्ध में की गई प्राप्तिनाओं

(अथपि प्रायः भ्रष्ट उग्र) को कुछ उचित समझा जा सकता है। चिरम-शेष निर्माणाधीन रहते वेने गाडबिन और उद्योगितावादी मोर्चों को इसके लिए बोधी ठहराया जा सकता है और सम्भवतः कुछ मित्त प्रकार संकाट और हनेस को भी। इस विषय में बर्क का विरोध कुछ मूल्य रखता है। अथपि वह कुछ पक्षपातपूर्ण है। उसका कहना है। हमें यह कहते हुए मय अनुभव होता है कि हम व्यक्तियों को यह राय दें कि वे अपने व्यक्तिगत (निजी) विवेक के प्रसार पर निर्भर रहे। इससे प्रकटा तो यह रहेगा कि लोग अपने रायों और मुर्षों से अहित निधि से साम जठाएँ। हम यह सबैव स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य पशु और मगधान् के बीच की जीव है और वह पुरुषत इन दोनों में से कोई भी नहीं है। इस बात को ध्यान में रखते हुए मानव-जीवन व सभी पहलुओं का एक कल्पनात्मक मूळ और वैज्ञानिक यथार्थता व साथ अध्ययन किया जाना चाहिए। जीवन की अनुभूति और कल्पनात्मक विचारों व कलितियों को एकत्रित किया जाना चाहिए। कवियों सिद्धों और उनके साथ ही चिन्तकों से सहायता भी प्राणी चाहिए।

यह सावधानियाँ बरतते हुए हम अपने सामने सुरन्त उपस्थित होने वाली कुछ व्यावहारिक समस्याओं के प्रति कुछ सामान्य विचारों को प्रयुक्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

हम को प्रपत्ति करना चाहते हैं उसके लिए उतावलापन नहीं चाहिए। वेकन के कहने के अनुसार हमें पुराने मार्ग पर बृद्ध रहना चाहिए तथा नये की प्रतीक्षा करनी चाहिए। एक सजीव वस्तु लक्ष्य

१ प्रपत्ति की प्रयुक्त प्रत्यक्ष रूप में बढ़ती रहती है। वेकन कभी-कभी विद्याएँ ही उसके जीवन को किसी तरह का नुकसान पहुँचाए बिना उसकी नाट-छाट करनी चाहिए या उसमें कलमें

मगानी चाहिए। दूसरी तरफ़ को निष्पत्ता हो चुका है। उस पुनर्जीवित करना एकदम व्यर्थ होया। अथवा एक दूसरे रूप के अनुसार एक सड़ी बोतल में ताबा घराब को भरना होगा। हम को विरोधी सतर्कों के मध्य से हमें अपना मार्ग निकालने के लिए यथासक्ति प्रयास करना होगा। जीवन भर के लिए हमारा प्रथम लक्ष्य हमारी प्रकृति के निम्नतर स्वल्प वा नियन्त्रण और उच्च उच्चतम से विक्रियित करना होता चाहिए। इस तरह के नियन्त्रण के तीन प्रमुख रूप हो सकते हैं जिन्हें प्राप्त करना पर्यावश्यक है—(क) मानवीय प्रयासों द्वारा प्राकृतिक सत्त्वों का नियन्त्रण (ख) साम्प्रदायिक-भावना द्वारा व्यक्तियों का नियन्त्रण (ग) आत्म-नियन्त्रण। इनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में संलिप्त विवरण आवश्यक होया।

(क) प्रकृति पर विजय— प्रकृति की शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त करने के महत्त्व पर बल देने की आवश्यकता नहीं। विद्युत् की शक्ती से पूरी पाश्चात्य सभ्यता किसी छोटे बाल की घबेरा दही काम को पूरा करने में लगी हुई है और पूर्व में भी इसी विधा में प्रयत्न धारण कर दिया है। परन्तु यह सारा कार्य कुछ प्रत्यक्षतः तथा घण्टा दृष्टिकोण में किया गया है। हम स्वर्ग जाने उपकरणों के ही बुझाव बन गये हैं। एमर्सन के शब्दों में—

यह भीतिहारी युग है

बाल बनाये जाते हैं और ध्यान पीसे जाते हैं

बसुएँ तयार हैं अपनी पूर्ण सज्जा में

और मानव जाति तैयार है उनके उपभोग को।

धार्मिक समय में हमारी अधिकता शक्ति विनाशक शक्तियों को तैयार करने में व्यय होती है और मेघ शक्ति का अधिकतम भाग धर्म के उत्साहों और हानियर विनाश के साधनों में लगे दिया जा रहा है।^१ अब हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मानवीय आवश्यकताओं की सही जानकारी प्राप्त करें और उन आवश्यकताओं की पूर्ति का सही साधन ढूँढें। अपने प्राचीन बड़ा मध्य मानव वाले देशों में भी अनेक लोगों को पर्याप्त जीवन-शक्ति पर्याप्त रूप से देना करने वाले बरुन तथा जीवन के सही ढंग के लिए तथा निवास-योग्य स्थान जाने में कठिनाई होती है। हम केवल शरीर रहित घातमाएँ ही नहीं हैं। जीवन की बाह्य परिस्थितियों भी हमारा ध्यान घातक करती हैं। हेबेल द्वारा प्रसिद्ध कहावत की विकृति विकृत्य ही नहीं थी— 'तबसे पहिले जीवन और बरुन बुटापो और स्वर्ग का साम्राज्य स्वयं ही तुम्हारे निवृत्त घातमाएँ।' विश्व के उत्पन्न भागों में जो स्पष्ट ही मानव-जाति के प्रथम निवास स्थान रहे हैं। इस तरह की आवश्यकताएँ सम्भक्त कम बाध्य करने वाली रही हैं और इसीलिए इस तरह के प्रदेशों में उत्पन्न महापुरणों ने अपने-आपके अपने उद्घाटनों में यह प्रकट किया कि 'जाने जाने कल की शक्ति भी विनाशक करो।'^२ परन्तु यह बात मिला प्रकार के जलवायु वाले प्रदेशों के लिए उपयुक्त नहीं। कई भागों में तो हमने अपने जीवन के घातकों को पूर्णतः बेठा

१ "This is the day of the chattel

Web to weave and corn to grind

Things are in the saddle

And ride mankind.

—Emerson

२ बोसके की पुस्तक "मिनिविजेतन घात किरीश्वरदय" में 'सर्कारी पक्ष रिपारन मैकर्ट' नियन्त्रण है।

३ एक सामान्य चर्च में जो वह शक्ति हमारे शिर भी बुझू-सबान् है केवल सम्भक्त ही बाधक है।

से इतनी वास्तवपूर्णक ग्रहण किया है और जनका परिष्ठापन यह निकला कि हमारे ध्येय और हमारी क्रिया में व्यवहार में सुभंग्यपूर्ण अंतर था गया है। वहाँ तक कि मिस्टर ने यह सिद्धावत की है कि और जनबाधु ने उसके रूप महत्त्व कार्यों में स्कावट बानी है परन्तु बहुत-से लोग मिस्टर की बात की अपेक्षा और से अधिक पीड़ित है। कुछ लोग जीवन की सुविधा और विभासपूर्ण वस्तुओं को महत्त्व प्रदान करने में अनासक्ति दिखाते हैं परन्तु वे हमारी अष्ट अतिथियों के विकास के लिए आवश्यक भौतिक वस्तुओं के प्रति अंध मूर्खता जैसे बड़े रह सकते हैं? प्रमुख रूप से यह आवश्यक ही जाता है कि जीवन-सम्बन्धी इन बातों को व्यक्तिगत की अपेक्षा सामाज्य-हित (Common-Good) के रूप में स्वीकार किया जाए। निश्चय ही ब्रिटेन के अधिकांस लोगों का भौतिक-स्तर अन्त्यात्मक नहीं है और वे दूसरे अनेक देशों के लोगों से अच्छी स्थिति में हैं। हमारे जन अधिक भोज वाले और भूरे हैं। रस्किन की यह बात गमन नहीं है कि जन मनरों का अधिकांस भाग साफ़कर दिया जाना चाहिए। जन और प्रार्थों में अधिक समानता जानी चाहिए। बड़ी जमीदारियों को छोटा करके सुन्दर मकानों का निर्माण किया जाना चाहिए। अधोभिक-वस्तु को सही ढंग से संगठित करना चाहिए ताकि अर्थ की प्रतिबोधिता के बिना ही जीवन की आवश्यकताएँ आसानी से प्राप्त की जा सकें। परन्तु इससे हम स्वतः ही नियन्त्रण के दूसरे रूप पर पहुँच जाते हैं।

(ख) सामाजिक-नियन्त्रण—वहाँ सामाजिक संगठन के महत्त्व पर बात देने की आवश्यकता नहीं है। हम इसका महत्त्व पहले ही सिद्धा राज्य और अन्तर्द्वीप सम्बन्धों में देख चुके हैं। इस तरह के संगठनों को किसी विशेष दिशा में सामाजिक रूप से विस्तृत करने के बारे में भी एक निश्चित अभिप्राय वाली नहीं की जा सकती। विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि इस समय सिद्धा अभ्यवस्थित स्थिति में जन रही है और राष्ट्रीय क्षमता के लिए इससे अधिक वातक वस्तु कुछ भी नहीं हो सकती। फिर यह भी स्वीकार करना चाहिए कि हमारे औद्योगिक-संगठन में इतना सञ्जीवनापन आना अत्यन्त निकरकठिन है जिससे वह वैयक्तिक आवश्यकताओं और योग्यताओं के अनुसार अथवायी जा सके। पर निश्चय ही यह आशा करनी चाहिए कि ऐतिहासिक सोपान के उच्चतम सक्षम तक पहुँचने पर हमें शोध-कार्य के लिए अति प्राधान्य प्राप्त होंगे और सिद्धा के निम्नतम सक्षम के अनुसार भीड़ मड़कका काम कर सकेंगे और स्वतन्त्र विचार एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए अनुचितत करम उठा सकेंगे। औद्योगिक जीवन में अर्थ की प्रतिबोधिता को साधनायी से रोक दिया जाना चाहिए, जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ सभी के लिए मुहैया की जानी चाहिए तथा इस क्षेत्र में वैज्ञानिक विधियों का

प्रयोग भी अधिक पूर्णता से किया जाना चाहिए। राज्य-सम्बन्धी जीवन में इन बातों से बचने के प्रयास किए जाने चाहिए कि राज्य कुछ घातम-गुल घोर स्वार्थी धनी लोगों के राज्य बनवा बनिष्क उद्यम में न बलम जाए बनवा बहु एक प्रथम-मिथिल भोक्तृत्व का रूप बाराग न कर ले। बनिष्क उद्यम स्पष्ट केवल कुछ लोगों के प्रयत्न लिए ही कार्य करता है और दूसरे प्रकार का राज्य स्पष्ट रूप से यह नहीं देना पाता कि सब लोगों का हित किस बात में है। इन लोगों में कोई-सा भी सामान्यतः बनिष्क के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप में नहीं देना पाता। परन्तु सही रूप में परामर्शदात्री समिति सम्मन्वित वास्तविक रूप में सहयोग देना बानी होनी है। इसके लिए एक प्रथम-मिथिल तैयार करना एक कठिन कार्य है। परन्तु घातम-गुल और राज्य के विनाश की बजाय कठिनाई का सामना करना उचित है। राष्ट्रीय जीवन में बला को प्रोत्साहन देने की कमी है। कला को बिलास की बलु नहीं समझना चाहिए। परन्तु प्रत्येक के जीवन के लिए एक प्राथमिक बलु समझना चाहिए। यह बड़ मर की बात है कि हमारे पास धनी तक भी एक राष्ट्रीय रंग मंच नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के बिकास में हम पहले जो कुछ कह चुके हैं उससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

(३) धर्म-नियन्त्रण—धर्म-नियन्त्रण हमें फिर धिटा की घोर ही साता है। हमें यह समझ रखना चाहिए कि एक मौलिक धिटा जीवन की तैयारी और उसके परम-अवयव के रूप में दोनों कार्य करनी है। हमें धिटा के सम्बन्ध में बानी वर्तन में ब्राम को धरने और बलाउद्गीत के पात्र के विधान बानी पुरानी बनबाराणा से छुटारा पाता होगा बरन् उस बुद्धिमत्ता बपी कोष के रूप में समझना चाहिए जिससे हमें धार्मिक समाज बनाने में सहायता मिले। हमें इस बरिष्क को हड़ बनाने निम्न आवश्यकताओं का नियमन पाश्चिमिक प्रवृत्ति पर नियन्त्रण और उच्च धार्मिकताओं को सही मार्ग दिखान बाला समझना चाहिए। धरने मिथिल बंग की प्रवृत्ति के निम्नतर-तत्त्वा का एकदम उन्मूलन बर्ष होना परन्तु हम उन्हें एक नवीन धिटा की घोर मोड़ सकते हैं। इस तरह उन्हें धरना सैबक बना सकते हैं। उदाहरण के लिए मुड़ की मौलिक समता को एक बेल में रचनात्मक-कला में बिलास सम्बन्धी साहित्यिक बाबों में और मानव प्रवृत्ति के प्रति हड़-निष्ठा में बरना या सकता है। मुड़ का वास्तविक मूल्ह इस बात में है कि वह सोर्ष का समर्थित करता है और उस समय में धरने सभी धरने विधेय स्वार्थों को बलमय पूटी तरह से ब्रुल बाते हैं। उस समय एक छोटे से छोटा ब्यक्ति भी धरने स्वार्थ को सर्वसाधारण के हित के प्रति बलिदान कर देता है। उसमें एक औरता-गुल धर्म-बलिदान की बाबना या बानी है और भय डर हो बाता है।

इस प्रकार मुझ सभी लोगों में कुछ कुछ पैदा करणा है। इन बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। जहाँ तक मुझ इस प्रकार के लोगों और भावनाओं को प्रोत्साहन देना है वहाँ तक तो इसमें कुछ भी खरेह नहीं किया जा सकता कि मुझात्मक क्रमाचारों को उत्तचित करने वाले राष्ट्र सर्वत्र विद्या छीन और प्रमुख बने रहते हैं।^१ पर इस प्रकार की भावनाओं को प्रोत्साहन तो सर्वत्र के स्थान पर प्रथम की भावनाओं के द्वारा दिया जाना चाहिए, जीवन के विनाश के स्थान पर सुसंस्कृत-जीवन के पुनर्निर्माण में योगदान दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के कार्य तो निश्चय ही मूढ़ की भावना को बदल सकते हैं। उसका स्थान ग्रहण कर सकते हैं और इसके साथ ही वे मानवता का विनाश कर देने वाली भावनाओं को भी परिवर्तित कर सकते हैं। पर यह सब कुछ अभी समय है जब उन्हें उनसे उच्च और अधिक प्रभावपूर्ण कार्यों में विलीन कर दिया जाए। दुर्भाग्य से सोम सर्व-साधारण की प्रसन्नता और समृद्धि के विचार की अपेक्षा वाले वाले सभ्य के मय के कारण अधिक उत्पन्नता के साथ मगठित हो जाते हैं। यहाँ तक कि पशुओं के भूख भी सामाज्यता-वतरे के समय इच्छते हो जाते हैं और सुरक्षा के समय वे भिन्न जाते हैं। 'सहानुभूति का धर्म सभ्य में समुदाय निर्मात्र है। किसी हित वाले कार्य के लिए व्यापक समुदाय बनाना प्राथमिक कठिन है। ऐसा हीजता है कि इस प्रकार का कार्य अभी समय हो सकता है जब इस प्रकार की भावना पैदा की जाए जिसे प्राथमिक भावना कहते हैं। परन्तु इस बात का कोई बदल खोजने के लिए हमें बड़ी करना पड़ना जैसा कि जर्मन लोगों ने किया था। विशेषतः ई. इररिय ने धर्म के बदल के सम्बन्ध में एक पुस्तक (Ersatz der Religion) लिखी है। यहाँ तक कि ब्रिटेन में गार्डिन का यह विचार था कि धर्म का स्थान विज्ञान और बृहत्त्व-सम्बन्धी प्रेम ही ले सकते हैं परन्तु यदि हम धर्म का धर्म जैसा हम पूर्व धर्मियों में बणित कर चुके हैं वंसा लेते हैं तो कोई भी चीज उसका सही बदल नहीं हो सकती। धर्म का बदल अपने पूर्ण धर्म में धर्म ही है। और जब मानव की महत्त्वाकांक्षाएँ भणित हो जाती हैं और उनके प्रयास निरुत्साहपूर्ण हो जाते हैं तब उनका स्वागत ही ग्रहण कर सकता है। हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि धर्म सम्बन्धी एक वास्तविक कठिनाई हमारे सामने यहाँ घाटी है। यदि धर्म का लक्ष्य पूर्वोक्त है तो यह ऐसा होना चाहिए जो बिना प्रतिबन्ध के मानव-मान को प्राकृतिक कर सके। इसे प्रतिमा-पूजन और धर्मविश्वास-जैसा कर्मकों से पुराण-निर्मल होना चाहिए। उसका सामञ्जस्य हमारे स्वयं तथा विश्व-सम्बन्धी ज्ञान के

१. कबट, जो राबट विरिस्वनी राष्ट्र के महान्-पधारकों में से इस लक्ष्य से पूर्ण परिचित थे।

साथ पूरी तरह से होना चाहिए। परन्तु यह तुल्य कार्य-रूप में परिणत हो सकना इसकी हम धारणा नहीं कर सकते और जो सोम एवं वात के प्रभाव को बहुत अनुभव करत हैं उन्हें कुछ धैर्य रखना पड़ता है। धर्म विरतता अधिक मात्रा में हितोत्तम होता है। उठता अधिक ही उसके शर्तों को सहन करना पसन्द हो जाता है। यह भी सही है कि उसका किसी सामंजसिक रूप में दोष घटाया उत्पन्न हो जावे है। और फिर कभी ऐसा समय भी आता है जब इस प्रकार के दोष विधेय रूप से स्पष्ट हो उठते हैं। कभी-कभी तो कुछ जीर्ण धीर्ण मन इनमें पुनरावृत्ति हो उठते हैं और रोमन धोकरा की तरह उनके पुनारी उपहास स्पष्ट बन जाते हैं। उस समय वास्तव में वे मुबारकों को सामने आना पड़ता है। परन्तु धर्म के विधेय विरोधी और उसके समर्थकों को भी सहनशील होना चाहिए। जब यह स्वीकार कर लिया गया है कि विभिन्न धर्म मानव-विकास के विभिन्न स्तरों के लिए उपयुक्त रहे हैं और किसी को कोई घण्टा घम दिए बिना उनका अपने धर्म से वक्त करना उसमें से दिन निकाल लेने के समान होता है। नीचे वाली प्रकृति निरवयवी ही प्रोत्साहन देने योग्य नहीं वह एक पावनपन ही है। सामान्यतः यह मान लेना पसन्दी है कि जीर्ण धीर्ण धर्मों को कुछ पुनारियों की पूर्णतापूर्वक बुद्धियों में जीवित रखा है। ऐसे धर्मों की तो जब धर्मों के विधेय मोक्षों को भावस्थकता भी और नहीं उन्हे बचाये हुए वे जबकि बुद्धि उन्हें मानने को तैयार न थी। यह सर्वत्र स्मरण रखना चाहिए कि पूर्णतः बुद्धि वालों की वैश्वमान धर्म के प्रत्येक कार्य में एक है। बुद्धि और बुद्धि को पूर्णतया धार्मिक शिक्षा के दोष-पूर्ण होने के कारण ही होती है और इस दोष का दूर करना धार्मिक संस्थाओं का ही कार्य है। इसका इन्कार नहीं किया जा सकता कि वैश्विक उन्नति में एकदम धर्मधर्मों ने बाधा है जिससे यह धारणा की जाती थी कि वे पूर्ण विकास के इच्छुक हैं। यह स्वीकार करने की बात है कि इस मामले में कोई सामंजस्य सम्भव नहीं हो सकेगा और न यह धारणा की जा सकती है कि कोई संवतन यह कहने कि यह ज्ञान धर्मों के पूर्णतः युक्त है। प्रतीकवाद बुद्ध्यात्म-कर्मधर्मों और मानव धार्मिक प्रकाश की सर्वत्र भावस्थकता रहती है। धर्म के सम्बन्ध में सबसे बड़ी भावस्थकता थीक सहिष्णुता और निरालम्बा की भावस्थकता है। मैं इस सम्बन्ध में विज्ञानिकों के धर्मों को धर्मित मानता हूँ—“धर्मोपदेशक ने कहा है कि एक समय होता है जब बोधना चाहिए और दूसरा ऐसा समय होता है जब धाम्य रहना चाहिए, परन्तु इस प्राचीन ज्ञान को धर्मों तक धमन में नहीं लाया गया। पर उस प्रकारक ने यह नहीं कहा कि एक समय धर्म बोधना चाहिए और दूसरे समय में धूम। और मैं यह सोचता हूँ कि धार्मिक धर्मधर्मों में इसी सोच भी इस दूसरी बात को नहीं मानने। जब

बर्ष का रूप इतना भ्रष्ट हो जाता है और उसमें ऐसी कोई बात नहीं रह जाती जिस पर विश्वास किया जा सके ऐसी घबराहट में हम यह कह सकते हैं—

“बो हाथों वाला इन्जन द्वार पर खड़ा है तैयार

टक्कर मारकर नाम करने को एक ही बार माघ करने को।”

एक उच्च स्तर की वस्तु का भ्रष्ट होना सम्ये काल तक घटन नहीं किया जा सकता।

इन सभी बातों पर चिन्तन के उपरान्त हम यह कह सकते हैं कि मानव जीवन को धामे बढ़ाने के लिए प्रयास करना काम नहीं है, और यहाँ हम मानव जीवन की प्रगति में धामे बाबी कठिनाइयों पर विचार करेंगे।

निश्चय ही एक धार्मिक-विश्व धर्मशास्त्र राम्य की स्थापना करना कार्य नहीं और उसके लिए कोई भी सुनिश्चित रात्र मार्ग भी नहीं^१ धर्मशास्त्र व्यवस्था या सौम्य स्वामन भी करना नहीं जैसा ब्लेक ने वेकसनम

५ प्रमुख खतरों

के महसूस के सम्बन्ध में बखित किया है, क्योंकि धर्मशास्त्र ने भी जब जाहू का महसूस खड़ा कर लिया तो एक दुष्ट

जाहू पर उस दूर देश में खड़ा से बना। और जब धर्मशास्त्र को वह महसूस फिर से मिला गया तो उसे महसूस में एक पथी का धर्मशास्त्र को खरी कर लिया गया जो समय उसका विनाश छिड़ हुआ। ऐसे दुष्ट जाहू पर और ऐसे ही विनाशकारी धर्मशास्त्र के हमारे साथ रहते हैं धर्मशास्त्रात्मिक धामा य हमारी बखना भी रात्रों में होती है परन्तु हमसे अनेक रूप धारण करता है परन्तु हम यह धामा नहीं कर सकते कि हम उसे सभी रूपों में पहचान सके या उसका पीछा कर सकेंगे। प्रगति से सम्बन्धित प्रमुख खतरों की ओर सकेट हम पहले भी कर चुके हैं। पवन का मार्ग उन्नति के मार्ग से विपरीत होता है परन्तु हमारे लिए यह जानना कठिन होता है कि वास्तव में हम किस मार्ग पर चल रहे हैं। हम पवन की ओर से जाने वाली प्रकृतियों पर धर्मशास्त्र में प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे—

(१) सभी धार्मिकताओं की प्रमुखता—हमारी सभी धार्मिकताओं में धार्मिक धार्मिकताएँ धर्मशास्त्र और स्वामी रूप से सर्वाधिक हैं और उनसे

१ Two-handed engine at the door

Stands ready to smite ones and smite no more.

२ I will not cease from mental fight

Nor shall the sword sleep in my hand

Till we have built Jerusalem

In England's green and pleasant land.

(यह कर्मशास्त्री धार्मिकताओं की नहीं उनका से जाननी मेरे हाथ में

जब तक हम बना नहीं लेते हैं वेकसनम इन्जन की दृष्टि व स्वामी भूमि में।)

विरन्त वह भय बना रहता है कि कहीं व अन्य सभी स प्रमुख न हो जाएँ। बहुत-स लोग केवल अपने प्रतिष्ठित्व के संघर्ष के प्रतिष्ठित धोर कुछ कर ही नहीं सकते और यद्यपि धन के लिए संघर्ष सामान्यतः कुछ धीरे धीरे के लिए संघर्ष होता है कभी-कभी वह स्वतन्त्रता और सौन्दर्य और कभी केवल जीवन के प्रतिष्ठित्व की अपेक्षा-यष्ट हितों के लिए भी होता है फिर भी प्राथमिक रूप में वह भौतिक पराधीनता ही सर्वप्रथम होता है और पश्चिम भी अधिकांशतः इन पर अधिकार और स्वायत्तत्व प्राप्त करने पर ही प्राप्त होती है। मानव जीवन पर इन घटक का इतना प्रभाव है कि समस्त सरकार की प्रत्येक पद्धति कुछ संघर्ष में भगिन्न-शासनक हानी है। किन्ती ऐसी पद्धति का निर्माण धार्मिक कठिन है जो इस बात को पूर्णतः रोक सके। फिर भी इसमें धार्मिक सामान्य हित के लिए घटक कोई और चीज नहीं हो सकती। यद्यपि यह पूर्णतः तथ्य है कि कभी संघर्ष धार्मिक होने हैं पर ऐसा प्रबन्ध प्रतीत होता है कि उन सभी के साथ धार्मिक भावनाएँ भी मिली हुई रहती हैं।

(२) धार्मिक प्रकृतियों की प्रकृतता—प्रमुख धार्मिक प्रकृतियों में प्रथम धीरे संघर्ष है। इन दोनों का ही मानव प्रकृति से गहरा सम्बन्ध है। प्रेम स्वतः ही एकलप की धोर बन जाता है परन्तु सामान्यतः इस प्रकार की एकता सीमित होती है। एक प्रकार की एकता दूसरों का विरोध करना है और इस प्रकार वह धार्मिक तीव्र संघर्ष का आधार बनती है। व्यक्तियों में प्रेम कभी-कभी ईर्ष्या और द्वेष का कारण भी बन जाता है कुछ लोगों की एकता दूसरों के विरोध को महकाती है यहाँ तक कि मानव प्राणत्व की भावना रोप और असहिष्णुता का स्वान ग्रहण कर लेती है। कार्लोस के अनुसार पृथ्वी एक प्रकार का 'परिवर्तित-बेम' होता है। ये भी धारम के सन्धे हैं—धरे ही मैं इन्हें सबैक बार रक्षुवा धत कोष और धोक को कभी नहीं भुक्षुवा। 'मानव-सङ्घर्ष व संघर्ष को समाप्त करना इसकी एक सजीव धक्ति को नाश करने के समान होना। हमें युद्ध की नैतिक समप्रमाणी बस्तु निर्धोय प्रतिद्वन्द्विता में प्राप्त हो सकती है, परन्तु केस को धार्मिक सुधिया द्वारा ही संरक्षता में बरता जा सकता है। लोग धार्मिक संघर्षों को एक एक पक्ष में नहीं कर सकते जब तक उनमें केवल युद्ध को ही महत्त्वपूर्ण धमन्ने की प्रकृति पैदा न हो जाए। संघर्ष को एक नवीन उत्साह द्वारा ही रोकना या रोकना है परन्तु नवीन उत्साह को पैदा करना सरल कार्य नहीं है और फिर नवीन उत्साह धार्मिक नहीं संघर्ष पैदा करेगा।"

(३) धार्मिक प्रकृतता—मानव को निम्न प्रकृति पर नियन्त्रण करने की क्षमता भी धिनाधारमक प्रकृति की धोर प्रथित कर सकती है। जीवन तत्त्वतः एक वर्तमान बस्तु है उसे धन्ने के मार के नीचे संरक्षता से रक्षता जा सकता है—

बाहे बह मन्त्र बहुत ही पूर्ण क्यों न हो। कभी-कभी बिनार उस पाण्डित्य द्वारा नवमय मन्त्र कर दिया जाता है जो पाण्डित्य कभी-कभी सिद्धान्तवाद का रूप धारण कर सकता है जैसे कठोर बलि-उत्सव के द्वारा नियमित धार्मिक मशीनरी का प्रयोग मात्र की जयहृद् हानिप्रद शक्ति हो सकता है। इसी प्रकार ये राष्ट्रीय-जीवन का स्वतन्त्र विकास निरङ्कुशता के पात्रों सहारे घात्माहीन नीकर पात्रों द्वारा मन्त्र कर दिया जाता है। प्राकृतिक काम में संघर्ष के व्यापक विकास के कारण 'दाहरण जर्मनी घोर आपात है।' घोर इन दोना देशों में राष्ट्रीय जीवन की विभक्तियों का विनाश ही हुआ है। ब्रिटेन में भी एक बार यह विवेक सतत वैधा हो गया था पर सब बसा मय नहीं रहा। होने ने कहा है कि इंग्लैंड में मशीनों जीवित लोगों के समान हैं घोर जीवित लोग नवमय मशीनों की तरह बन गए हैं। परन्तु इस समय पात्रिक पूरुता की घाटा हम जर्मनी से ही कर सकते हैं।

(४) धरातकता—यह मान लेना भी निरर्थक है कि संघर्ष के इन कठोरों से मुक्ति हमें धरातकता से मिल जाएगी। प्रो. बर्नसन न व्यवस्था के विरुद्ध यात्रिक स्वरूप को घटन्तोपग्रह बताया है परन्तु उन्होंने इस जैव-शक्ति के घन कर्तृत्व की बात को प्रोत्साहन भी बहुत दिया है। इस तरह की जैव-शक्ति में एकता नहीं होती अपितु उच्चमें घनेको सघनपरिमक प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं घोर उन्हें विचार-शक्ति द्वारा नियमित करना पड़ता है। हम यह भी घाभा नहीं कर सकते कि हम कबल जैविक विचारों को व्यवहार में लाने से मुक्ति मिल जाएगी। मैं सोचता हूँ कि प्रो. स्माल ने यह सही ही कहा है^१ कि समाजो धरुण के घावह द्वारा व्यष्टिकरण की कल्पना की परेधा समाजीकरण के गुणों द्वारा व्यष्टिकरण का नियम हमारी पीढ़ी की आवश्यकता के लिए एक विधायक विधाप्रद हो सकता है। व्यष्टिकार के स्मूथ रूप को घामान्य ठहराया जा चुका है। ब्रिटेन में भी लोका को इस प्रकृति का चित्रण घटिरजन ही होगा जैसा वैष्णु घानहन कहा है^२ 'एक घणज जहाँ बाहे बहाँ जा सकता है जिससे बाह बह बुला कर जिस बाह जमे बमरी व जिस बह बाहनष्ट करे। परन्तु बहाँ के भी कुछ विधय समाजों में कुछ व्यष्टिकरण घोनों के प्रति क्रोमस धारणाएँ होती हैं जिससे संघर्ष से बचकर अपने व्यष्टिकरण की संरक्षित में शान्ति प्राप्त करने का प्रयास होता है। निःसन्देह यह बात

१. वैज्ञानिक किन्तु महोदय ने घवनी कभी प्रकृतिय छवि "साहस्य भाठ पावर" ६ सं १ क—२ में इस पर नवपूर्वक प्रकाश बाबा दे। बर्नसन का निष्कर्ष भी देखिए, इस में ऐसे संकल्प के दोषों पर बल दिया गया है।

२. "जन्मल सोचिकालाजो" १ सं ४०२।

३. "धरुण मन्त्र बमारी"।

पवित्रता की प्रेरणा पूर्व में अधिक सामान्य रही है। भारतीय रहस्यवादी धर्मवादी मध्यकालीन सामु-अहमदा उस जीवन से बहुत दूर से त्रिज्वलीय जीवन से इन धारण परिचित हैं। पर धर्म की वे शीघ्र ऐसे कलाकार धर्मवादी स्वप्नदृष्टियों को नहीं चाहेंगे जो अपने लिए पूर्णतः अभिन्न नाम नहीं चाहते। यह धर्मिक उत्तम है कि वे धर्मकारणिक कार्बसामकों को अपनाएँ और इसके उपरान्त वे अपने ज्ञान की शक्ति के परिणामों से समृद्ध हो सामान्य-जीवन में पुनः सौतेले धर्मवादी जनकी स्थिति होने द्वारा बहिष्कृत धर्मवादी की-सी होनी और वे मानव जीवन की समस्याओं को सुलभाने की प्रयास इसभार्ये ही। फिर भी यह स्वीकार्य होगा चाहिए कि वैयक्तिक आत्म विकास में एकाग्रता के प्रतिरिक्त एका धर्म कोई रूप नहीं है। जिसमें प्रकाश के देवता की तरह चमकता हुआ धर्मुरतन स्वयं प्रकाश धारण करके जाता है।

(५) कठिनाई—यदि कोई सम्मता ऊपर विनाएँ अंतरों के बचकर अपना निर्माण करती है तो वह अपने ऊप्यवामी प्रयासों को निरन्तर नवीन बनाए बिना मुर्छित नहीं रह सकती। एक सुदृढ़ सम्मता के लिए सबसे बड़ा अंतर सामान्यतः वही है कि वह अपने मूलकाल पर आधारित रहती है। मूर्छे की पुनर्जीवनी सम्मताओं में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। हम शीघ्र अपनी धर्मवादी धारण की जीवन-पद्धतियों से धर्मिक सम्पुष्ट रहें हैं। विद्ये के लोभ प्रयास रूप से अपनी व्यक्तिगत अन्तर्गत से सम्पुष्ट रहें और वह कुछ परम्पराओं में बँधे से बचें हैं। उनकी परम्पराएँ भी लगभग मनीष्यवादीयक होती हैं। इस प्रकार से उनकी कुछ धार्मिक पद्धतियाँ और कुछ वेदों के संग्रह भी परम्परागत बन गए हैं। फल में शीघ्र सामाजिक व्यवस्था से इसी प्रकार धर्मिक सम्पुष्ट हैं और उन्हीं को सही बताते हैं। उनके दृष्टिकोण उन्हीं के मार्ग-पहलू करते हैं। ऐसे समाजों में यदि किसी का भ्रमण होता है तो वह कम या अधिक हित-सम्बन्धी होता है और वह देता हो सकता है जो धर्मवादी का विरोधी हो। ऐसे समाज देखने में तो कठिनाई प्रतीत होते हैं परन्तु अपने अन्तर में पतन का विस्फोट निकल हुए होते हैं क्योंकि उनमें अन्तर्गत विकास के स्पष्ट दृष्टिकोण का अभाव होता है। मैं सोचता हूँ कि कुछ संघों में एक धर्म-धुन के प्रति इसी प्रकार की धारण-दृष्टि और अन्तर्गत तथा अपने धर्मवादी में ताकती के अभाव से ही रोमन-साम्राज्य की विनाश के वर्त में विनाश विना। समाज व्यक्तियों की तरह अनिर्वाक्य अन्तर्गत और अन्तर्गत के बानी नहीं होते परन्तु अन्तर्गत काल की उपस्थितियों से ही सम्पुष्ट हो जाना मृत्यु के पथ पर बढ़ना है।^१

१. इसके अन्तर्गत में जीवन को शिवा का अन्तर्गत है। परन्तु वह शीघ्रता अन्तर्गत ही शिवा कि जीवन में कोई प्रवृत्ति नहीं है। इसके अन्तर्गत जीवन रहने का रहस्य अन्तर्गत अन्तर्गत ही है। यद्यपि वह अन्तर्गत से प्राप्त अन्तर्गत का अन्तर्गत अन्तर्गत नहीं है।

समान-विकास के मार्ग में ये कुछ बड़ जाती हैं। कुछ ऐसे जमाने भी आए जब एक ठेक मटेके के साथ लोगों के मस्तिष्क को इन बातों की धार प्रकृत किया है। फ्रांस की क्रांति तथा उसके बाद आने वाले वर्ष कुछ ऐसे दिन के घोर विप्लव इतरे दौर में हम स्वयं प्रकृत हो रहे हैं। फेरे ने फ्रांस की क्रांति का जो वर्णन किया है, उसे वर्तमान काल के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है—

उस समय तब कुछ ऐसी हलचल में वा मानव व्यवस्थित विप्लव पुन सम्भवता घोर ध्वंसकार में बदल जाएगा और उसके बाद फिर व्यवस्था एक नवीन रूप धारण करेगी।'

घोर मान कोई भी यह कहने में संकोच नरेया कि स्थिति ने पूर्णतः कीर्तनीय रूप धारण किया है। फिर ऐसी सुराहियों में व कुछ धारणाएँ उत्पन्न होती हैं; वे हमें एक नुम्बर विश्व के पुनर्निर्माण के लिए कुछ चीजें घोर कुछ चीजों के लिए बाध्य करती हैं। क्या हमारे पास यह विश्वास करने का कुछ आधार है कि इन प्रकार का पुनर्निर्माण सम्भव है? इस सम्बन्ध में कुछ उत्तर देने ही पर्याप्त होंगे।

इस कुछ विचारपूर्वक चिन्तानुमातों पर धरती तरह विचार करने के उपरान्त जब हमें इस विचार के उद्भवन पर भी धीरे भी उत्पन्न करना चाहिए।

फ्रांस की क्रांति के समय की तरह इस हलचल वाले घाटा के मुख्य आधार वर्तमान-काल में भी संसार धारणागत है कि जीवन की नवीन घोर ध्वंस पद्धति का उद्भव हो सकता है

वह घोर घाटा छजना होती है घोर भय भिण्या भी हो सकते हैं। फ्रांस की क्रांति के कुछ घंटों में विश्व को निर्मूल बना दिया और वह घाटा करने के पूर्ण आधार है कि कठिन प्रयास द्वारा संश्लित नुम्बर धारणा पूर्णतः ध्वंस विश्व नहीं हो सकते हैं, बावजूद आने वाले विचार मर नहीं सकते हैं, परन्तु वह हो सकता है कि उनकी कार्यक्षम में परिस्थिति में देर हो। मानव-जीवन में प्रकृति होना धनिवार है वरुणि उसे प्रकृति ध्वंस कर दिया जाता और स्फाट काल ही जाती है। घीस और रोम की सम्भवता घोर उन से हमें धर्म धर्मताओं के साथ

१. पुनर्निर्माण की संरक्षा पर इस समय धरती सिखा वा मुक्य है और इस पर ही बनना बड़ होने का अनिश्चारी भी नहीं है। एसेब महोरन की सुराह 'दि डिन्डिक्कथ थ्येस कोरान रिक्कडूरकन' नवीन प्रसारायकता और प्रभावशालिता के लिए प्रकृतनीय है, परन्तु उक्त महोदेकानिक आधार अनिश्चितक है और उधरधार करारक्या है। हुकोरकन धर्मधारे विश्व पर कुछ उपस्थित अनिश्चारी मिताओं के केलों का सम्भवन बन्तु० बच काल में किया है; इती तरह सभी घी धर्मधारे के हुकोरकन मय और घी पुस्तक को प्रकृतित किया है। इनके कदों की प्रथम मुक्यताम रिपोर्टों का भी अनिश्चित किया गया है।

सुरक्षा होती है। यदि हम बन्धुमूर्ख नहीं हैं तो प्रबन्ध ही अपनी पुरानी भूमि-सूक्ष्मताओं और अपराधों से तथा अपनी महान् उपसम्पत्तियों से सामंति बनाने से नहीं चूकते। इन विचारों के कारण हम यह विश्वास करने का साहस कर सकते हैं कि इन सनरों के बावजूद भी निकट भविष्य में यह संभव हो सकता है कि हम एक सुन्दर, स्थिर और सुख्यस्थित समाज का निर्माण करने में समर्थ हो सकें। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की सुख्यवस्था किसी प्रथा का कोई विशेष प्रतिकार नहीं होता वह अपने पूरे धर्मों में सामान्य स्थित होती। विभिन्न प्रकार के भोग सदैव विभिन्न प्रकार की मापार्थ विभिन्न सिद्धांत, विभिन्न कानून, विभिन्न विचार और नियमों से सुकट रहेगे और हम उनका सही मूल्यांकन कर सकेंगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि जब वे दिन नष्ट नए जब लोग सोच करते हैं कि अपनी सब प्राचीन रीतों में परम सष्ठ राज्य है प्रथम विद्वेन सातों समुद्रों का राजा है प्रथम केच भूमि सम्पत्ता को एकाकी स्वामिनी है प्रथम रोम एथेन्स या मक्का प्रथम प्रथम कोई पवित्र स्थल निष्ठा का एकमात्र स्थान है। प्रथम छोटी चट्टी हुआच रेश है और यहाँ के सभी निवासी हमारे पड़ोसी-भावरिक है और प्रथम में यही मान्यता हमें परम सार्थ का प्रतिकारी बनाएगी। सम्भवतः एक समय या जब प्रथम का सैनिक-साधन सामान्यतः इस सान्त विद्व में मुख्य रूप से बढ़ाकर करने वाला समझ जाता था। (मै ठीक ही सोचता हूँ) उन समय जर्मनी से घाती हुई इस प्रजाज से हमें बहुत प्रेरणाएँ मिल सकती हैं यह एक ऐसी प्रजाज थी जिसने यूरोप में उठती हुई प्रथमकर राष्ट्रीयता को रोक दिया था—

भविष्य में शक रहे हूँ।

मुझ और तुझ

हम उनमें रहे हैं

प्रथम स्वर्ग की धोखों में जो

प्रबन्ध किये हैं, प्राये पड़ने से।^१

१. वह आज रचना करता रहेगा कि वह वर्तमान प्रथम मैत्रियों के राष्ट्रीयतावाद से किसी भी तरह से निकल नहीं है। ऐसे निष्कर्ष अपनी राष्ट्रीयता का जो बाधा करते हैं, वह कर्मों के लिए भी देता ही होता है।

२. The future hides in it
Gladness and sorrow
We press still thorow
Naught that abides in it
Daunting us onward

निरन्तर संघर्ष द्वारा ही हम मज्जाई और हित का सुरक्षित रख सकते हैं। हमें यह स्वीकार करना चाहिए, जैसा बोसकिने ने कहा है कि कौसी भी परिस्थितियाँ क्यों न घाय हूम अविष्य में पूर्ण घाय है वह इसलिये नहीं कि हम घाने वाली बात को जानते हैं अपितु इसलिये कि कुछ भी क्यों न हो हम प्ररक्षा से अनुप्राणित हैं कष्ट सहने और सघनत रखने के लिये तैयार हैं ऐसी मज्जा में मज्जाई घमका हित के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होया।" यह बिस्वाय से नागरिकता और नैतिकता की सिखा का जन-जन में प्रचार करने पर ही उत्पन्न हो सकता है। इसी आधारभूत षर्त पर हमारी आचार्य भयी हुई है। मानव प्रयति हमारे अन्दर से ही होती। वह किन्हीं बाह्य परिस्थितियाँ से जन्म नहीं लेगी पर जबक लिये सभी लोगों द्वारा एक सामान्य हि। के समय के प्रति सुदृढ़ समझ की आवश्यकता है।

परिशिष्ट (क) प्लेटो के 'रिपब्लिक' पर कुछ टिप्पणियाँ

समाज-संरचना की व्यवस्थित व्याख्या का एक प्राथमिक प्रयास होने के कारण प्लेटो के 'रिपब्लिक' का हमारे लिए एक विशेष मूल्य है। वह जब भी बनेकों पहलुओं में इस विषय पर धार्मिक दृष्टि तथा प्रेरणादायक छवि है—कुछ घंटों में इसलिए कि मुकदम और प्लेटो को महान् महावी मानव व (समुक्त

भी बचने भी) जो धार्मिक धर्म्यन में अनुरक्त व धीरे कुछ घंटों में इसलिए भी कि प्राकृतिक समय की अतिम व्यवस्था की प्रयत्ना ही के छोटे तमर राम्यों की सरलतम व्यवस्थाओं ने नागरिक-जीवन के एक समय सर्वोत्तम को सरल बना दिया था। धर्म मने अपनी इन बचने-साधों में पग-पग पर प्लेटो के कथनों का सम्बोध किया है और मरी यह मामला है कि जो व्यक्ति इन विषयों का सम्पूर्ण धर्म्यन करता जाहूँ है वह कुछ घंटों में प्लेटो के विरसेण का पम्मीर धर्म्यन धारण करे। प्लेटो के विवरण सामान्यतः विरसेण रूप से स्पष्टता एवं प्रसाधारण रूप से दृष्ट्य उदाहरणों से युक्त है। फिर भी कुछ बातों में उनको प्रलत समझ जाने की सम्भावना है और ऐसी ही समतपहमी सं बचाने के लिए उनके सामान्य-विचार पर कुछ टिप्पणियाँ जोड़ना पबिक प्रच्छा रहेगा जैसा कि मने विरसेण किया है।¹

रिपब्लिक के सम्बन्ध में समतपहमी होने की सम्भावना मुकदम उसके कथोपकथन में मिले पये रूप क कारण है। वास्तव यह मान सकते हैं कि कथोप-कथन के बने-ठ स्वार्थों पर मुकदम के हाथ मिले गए विवरण प्लेटो की अन्तिम

1. यह वर जाने विशेष कामकारी के लिए, नेटलथिप और नोडाके की टिप्पणियों का तथा श्री जर्नेस करकर की पुस्तक "दि कोन्सिडरिबल बॉर्डर प्राय प्लेटो एवम् परिचयगत" का धर्म्यन किया जा सकता है। रीपब्लिक विषय पर भी के के कीर्तन की रङ्गम्य भाष्य हेलास को देखा जा सकता है। श्री पी० एच० वरैज तथा "मारबु (१९१४) में प्रस्ताव "दि प्लॉटि माफ प्लेटो व रिपब्लिक" नामक लेख का जर्नेस किया जाय है।

निरन्तर संघर्ष द्वारा ही हम प्रच्छाई और द्वेष को मुर्च्छित रख सकेंगे। हम यह स्वीकार करना चाहिए, जैसा बोसॉके^१ ने कहा है कि कौसी भी परिस्थितियाँ क्यों न घायें हमें मक्षिण में पूर्ण प्राणा है वह इसलिए नहीं कि हम घाने वाली बात को जानते हैं अपितु इसलिए कि कुछ भी क्यों न हो हम प्रेरणा से अनुप्रासित हैं, कष्ट सहने और सक्षम रहने के लिए तैयार हैं ऐसी अवस्था में प्रच्छाई अवकाश द्वेष से अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यह निस्वाद्य हो नापरिष्कृत और नैतिकता की शिक्षा का अन्त-जन्म से प्रचार करने पर ही उत्पन्न हो सक्ता है। इसी आचारभूत पठ पर हमारी प्राप्ताएँ सपी हुई हैं। मानव प्रपक्षि हमारे अन्तर से ही होती। वह किन्हीं बाह्य परिस्थितियों से जन्म नहीं लेती पर अत्यन्त लिए सभी मोनों द्वारा एक सामान्य द्वेष के अक्षय के प्रति मुहक संघर्ष की आवश्यकता है।

१ "सोशल एण्ड इन्टरनेशनल थ्योरिजल एंड ए. (२) रोक न की एक
"दिजर्नल एंड २-२१।

परिशिष्ट (क)

प्लेटो के 'रिपब्लिक' पर कुछ टिप्पणियाँ

समाज-दर्शन की व्यवस्थित व्याख्या का एक प्रारम्भिक प्रयास होने के कारण प्लेटो के रिपब्लिक का हमारे लिए एक विषय मूल्य है। वह धर्म की धारणाओं व हस्तुओं में इस विषय पर अत्यधिक उत्कृष्ट तथा प्रारम्भिक परिचय प्रेरणादायक इति है—कुछ धर्मों में इसलिए कि सुकृत और प्योटा दो महान् मन्त्रों मानव व (संयुक्त की धारणा में) जो आधुनिक समय की जटिल व्यवस्था की धारणा प्रीस के छोटे तमर सम्मों की सरलतम व्यवस्थाओं में नागरिक-जीवन के एक समय सर्वोत्तम को सरल बना दिया था। धर्म में धर्मों इन उपरेधाओं में पर-पर पर प्लेटो के धर्मों का उल्लेख किया है और मरी यह मान्यता है कि जो व्यक्ति इन विषयों का सम्पूर्ण अध्ययन करना चाहता है वह कुछ धर्मों में प्लेटो के विरोध का सम्पूर्ण अध्ययन करना करे। प्लेटो के विवरण सामान्यतः विमर्शण रूप से स्पष्टता एवं प्रकाशपूर्ण रूप से दृष्टव्य उदाहरणों से युक्त है। फिर भी कुछ बातों में उनको प्रकट समझाने की सम्भावना है और ऐसी ही गमनकहनी से बचाने के लिए उनके सामान्य-विचार पर कुछ टिप्पणियाँ जोड़ देना अधिक उपयुक्त होगा कि मैंने विरोध किया है।¹

रिपब्लिक के सम्बन्ध में प्रकटकहनी होने की सम्भावना मुकृत वरुके कथोपकथन में लिखे गये रूप के कारण है। वास्तव यह मान सकते हैं कि कथोप-कथन के धर्म-स्थानों पर सुकृत के द्वारा दिये गए विवरण प्लेटो की प्रकृत

१ इस पर अन्य विशेष ध्यानकारी के लिए, नेम्पतिव और रोनाके की टिप्पणियों का तथा जो धर्मों के कारण की प्रकृत दि रोमिटिकन डॉट भाग प्लेटो पर प्रकृत 'परिचय' का उत्कृष्ट विषय वा लक्ष्य है। ईसापूर्व दिवस पर श्री के० के० श्रीवैव की 'सुकृत काट ईसा' को देखना वा सज्जा है। श्री सी० एन० एरेंस द्वारा 'मारुत (१६१४) में प्रकृत "दि प्योटा काट प्लेटो व रिपब्लिक" नामक लेख का उल्लेख किया जाता है।

धर्मव्यक्ति के रूप में सहज किये जा सकते हैं। यह स्पष्ट है कि प्लेटो ने इस प्रकार के कबो-कबना में अपनी पुस्तक को इसलिए लिखा ताकि नमस्त धर्म सपाये जाने की सम्भावना को दूर किया जा सके। कई जगहों पर उसने यह भी उल्लेख किया है कि वह अपनी इस विधि को अन्तिम रूप से सम्शोधन नहीं समझता। कुछ लोग उसकी इस प्रकार की कबोपकरण की पद्धति को एक यन्त्रोपयोग मान सकते हैं परन्तु मेरे विचार से तो यह उसकी एक श्रेष्ठतम विशेषता है। बाह्य कोई व्यक्ति कितना ही ज्ञानवान् और योग्य क्यों न हो यदि वह ऐसे विषयों पर अपने रायों का अन्तिम समझता है तो वह उसकी सबसे बड़ी सुखंटा होगी। मुफ्फल ने कहा है कि वह स्वयं या कुछ जानता है वह यह है कि वह कुछ नहीं जानता। वास्तव में बड़ी एक ऐसा व्यक्ति था जो इस प्रकार की नमस्तियों में नहीं पड़ सका था। प्लेटो शायद अपनी मूर्ख पर अवेसाहृत धार्मिक विश्वास रखता था और इसका कारण भी है परन्तु उद्यम इस सम्बन्ध में अपने मुँह का बनिष्ठता के साथ अनुगमन किया। अतएव यह मानना उचित होगा कि उसकी कबोपकरण की पद्धति अन्त विज्ञानवाद का प्रतिपादन करती है अर्थात् उसे अन्त कठिन विषयों पर कुछ सम्भावित विषयों के सुझावों के साथ एक बहु-मात्र कहा जा सकता है। इसीलिए तो जैसे ही हम अन्त में पहुँचते हैं उसका दृष्टिकोण क्या है यह स्पष्ट समझ लेते हैं और एक अन्तिम मूर्ख के रूप में उसका कथन भी प्राप्त कर लेते हैं। उसे प्राचीन रटिकन के रूप में समझना एक बहुत ही गलत विचार होगा (यद्यपि रटिकन स्वयं उससे पदापि प्रेरणा पा सता था)।

अन्त विशेष रूप से यद्यपि उसकी कृति एक आदर्श-राज्य की रूपरेखा को निवेदित है परन्तु उसे धार्मिक समय में निर्मित विविध प्रकार के आस्पनिक आदर्श राज्यों (Utopias) के समान बिलकुल नहीं समझना चाहिए यद्यपि वे लोग कभी-कभी अपनी कृतियों में प्लेटो के कथनों को अपने आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्लेटो ने यह बिलकुल स्पष्ट कहा है, कि उसने अपनी रूपरेखा को पूर्ण राज्य के निर्माण के लिए एक व्यावहारिक योजना के रूप में नहीं बनाया है। वह तो अवेसाहृत उसके सुपरिचित नगर राज्यों का एक अध्ययन है। उद्यम उन राज्यों की मुख्य मुख्य विशेषताओं के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही उद्यम में मिश्रित प्रमुख शक्तों की ओर संकेत किया गया है तथा उनसे बचाव के लिए सम्भावित सुझाव दिये गए हैं। धार्मिक समय में प्राप्त विभिन्न प्रकार के समुदायों के ज्ञान के साथ हमें यह नहीं सोच लेना चाहिए, कि उसने विवेकनात्मक अथवा सम्भावित सुधार की दृष्टि से जो कुछ कहा है वह हमारे लिए बड़े महत्व का है। परन्तु धार्मिक परिस्थितियों

इतनी जटिल है कि एक तरल योजना का अध्ययन हमारे लिए घटि हितकर होगा।

इस प्रकार की सावधानियों के लिए पूर्णरूप से कबोपक्रम के सम्बन्ध में ही ध्यान रखना आवश्यक नहीं है। बरन् ज्येटो की विभिन्न विषय बातों, जैसे उसके शिक्षा-सम्बन्धी विवेचन कला का स्वाम त्वियों की दया धीर धमकता की प्रवधारणा आदि पर भी ध्यान रखना चाहिए। इन विषयों पर उसके विश्वास प्रत्यक्ष बुद्ध धीर उत्तरतापूर्ण है, तथा उसके अधिकार सुमध्य बड़े मूहयमान है परन्तु यदि उसके कर्मों को हम प्रदर्श प्रहृष्ट करें तो हम भटक कर कहीं-के-कहीं पहुँच जायेंगे। यनेको स्वानो पर जयने निताम्त निरिचल रूप से यह संकेत भी किया है कि उसके विवेचनों को प्रदर्श प्रहृष्ट नहीं किया जाना चाहिए। मेरे अपने विरवाच के अनुसार हम यह स्वीकार्य होना चाहिए कि कुछ स्थानों पर जयने पक्षपातपूर्ण विश्वासों से प्रभावित होने की सक्षी भी है जिसे समकल भाव के अधिकार पाठक स्वीकार नहीं करते। ज्येटो सबसे अधिक बुद्धिमान मनुष्यों में से एक के हलमें कोई सम्बन्ध नहीं है तथा यह अपने साथ मुकणत का भी सहुपयोग कर सका। एक विशेष बरवान जिसे हम कल्पनारमक-चिन्तन कहते हैं उसमें यह, मेरी माम्मता के अनुसार विश्व के मेखको में धिद्वितीय वा परन्तु निरन्तर पुनरती हुई पीछियों के विचारों तथा मनुषुत्रियों की भी हने प्रबद्धेभनर नहीं करती चाहिए।

भागे में उसकी कृति में से कुछ ऐसे स्वतों की धीर ध्यान पाकपित कबेवा जिवकी रचना में विश्लेषण भागि की सम्भावना होती है।

प्रथम पुस्तक में ग्याय की साधाम् प्रवधारणा की ध्याना की गई है

जिसका अधिप्राय समुदाय की उचित ध्यवस्था की

२ प्रथम पुस्तक का अपेक्षा व्यक्तितगत सराचार में अधिक प्रस्तनिहित है।

विवेचन

ग्याय के धर्म में प्रदुक्त यूपानी भाषा के एक ध्यद

की प्रस्पष्टता से कुछ धस य सर्वत्र तड़बड़ी फैसली

है। भरतू महोदय ने इस बहुत ही पक्षी तरह से स्पष्ट किया है^१। प्रथम

पुस्तक में प्रस्तुत किये गए विचारों को इस प्रकार से कोषलपूर्वक सजावा गया

है कि जलमें काम्यात्मक विरसेषण द्वारा साधारण सासाय धर्म से लेकर हेरवा

भास पूर्ण सिद्धान्त तक बपस्मिष्ठ हो जाते हैं। इन विचारों क विरच विवा गया

उर्ध्व भी स्वर्न कुछ धर्मों में क्लृर्क है। कभी-कभी उनकी रदा एक मूर्ख को

उसकी मूर्खता क अनुसार उत्तर देने के सिद्धान्त क अनुसार ही की वा सक्षयी

है^२ परन्तु के उर्ध्व पृष्ठ प्रकृष्ट करने में पकृष्ट होये कि को परिभाषा की

१ पक्षिम ५

२ मेरा विरवाच है कि ज्येटो स्वर्न बुद्धि की इस विधि के जर्धवीर से गूर रतिविध वा।

गई हैं वे मङ्गल और प्रसतोपजनक हैं तथा वे धार्ये की पुस्तकों से लिए विस्तृत विवेचन का मार्ग तैयार करने वाली हैं ।

प्रथम पुस्तक ही एक ऐसी है जिसमें मुकरराट की सुपरिचित विधि के अनुसार बाह-विवाह प्रस्तुत किये गए हैं परन्तु यहाँ भी यह विदवाह करना अत्यधिक कठिन हो जाता है कि कोई वास्तविक विवेचन जो कि वर्ण-विषय की सामयिकता के अनुसार स्वतः उद्भूत हुआ है कसलमकला के रूप को इतनी ही पूर्णता के साथ प्राप्त कर सका है परन्तु धार्ये यह मुकरराट के सामान्य मत और विधि को अत्यधिक सही रूप से प्रस्तुत करता है । यह कहना अत्यधिक सम्बन्धात्मक है कि धार्ये ध्यान वाली पुस्तक में बहिष्ठ विषय के बारे में भी इतना कुछ कहा जा सकता है या नहीं । यह प्रसंग है कि उनमें से कोई भी बात जो मुकरराट से सम्बन्धित बताई गई है, वास्तव में यह उसके विचारों और बोधन के विच्छेद रही हो ? उसके परिण को निम्नलिखित सुरक्षित रखा गया है परन्तु हम लोग मुक्ति के ही यह मान लेते हैं कि उसकी उचितियों के रूप में जो कुछ प्रस्तुत किया गया है वह किसी विचारों की सही अभिव्यक्ति है उसके प्रथम प्लेटों के । मेरे विचार में यह नहीं है जिस मुकरराट ने सम्भव कहा होगा तथा जिसे प्लेटों में भी कहा जा सके सम्भव होगा और जैसा कि प्रथम पुस्तक में है । यह सब ऐसे कलात्मक बन से उभोकर रखा गया है जिससे एक के बाद दूसरी बात को लेकर निरन्तर धार्ये बढ़ता रहें ।

द्वितीय पुस्तक में पूर्व पुस्तक में प्रहीत विवेचन विधि को विपरीत धार्ये धार्ये का विषय बनाया गया है और अधिक सूक्ष्म विधि को प्रहृत किया गया है ।

सामाजिक व्यवस्था का विचारण सुझाया गया है और ३ द्वितीय-अनुर्व पुस्तकों से पहले ही एक ऐसे निश्चित रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका नाम में ह्युवि ने प्रतिपादन किया है ।

इस विचार का समाज सुख समस्या को व्यक्तित्वत धार्ये से सामाजिक न्याय के रूप में बतल देता है और समाज के सामान्य-व्यक्ति के बारे में विचार करने को आवश्यक बना देता है । मुकरराट अब एक धार्ये के न रहकर सुष्टा बन जाता है । वह इस बात पर जोर देता है कि एक धार्ये का अस्तित्व इसीलिए आवश्यक है, कि प्रत्येक व्यक्ति धार्ये-निर्भर नहीं होता और फिर उसे प्रतिपादित करता बना जाता है कि धार्ये-निर्भरता का धार्ये-भूत विचारण सहकारिता और धार्ये-विचारण है । इसके उपरान्त इन्हीं महत्त्वपूर्ण पहलुओं का एक धार्ये समाज की एक संक्षिप्त एवं धार्ये-रूपरेखा खींची जाती है । परन्तु ऐसे समाज की धार्ये-नीय होने के रूप में धार्ये-नीय की गई है और कुछ भी हो

कुछ इसी प्रकार का समाज विवेचन यद्यपि कुछ कम विस्तृत और विचारण में नीय-रूप से प्रकट किया गया है ।

एक मुख्यवस्तुत्व राज्य के जीवन पर अधिक प्रभाव नहीं डाला गया है इसकी ।
 व्याख्या करने के माध्यम से विज्ञान के उत्थन का समानेस करना पड़ा है । विज्ञानिता
 पूरा विकासवात्मक रचिर्वा अन्य समुदायों व साथ व्यवहार स्थापित करने की
 मानसकता उत्पन्न करती है और अन्त में वे विस्तार की माँग की और मे
 जाती हैं । इसी व युद्ध को जन्म मिसता है और उसके लिए प्रभावशाली
 संयम-वर्ग के स्थायी अस्तित्व की आवश्यकता होती है ।

इस विषय में (सेटो का उत्तर विशेषण करता सरस है । उसके मन्तव्य
 को दो विरोधी तटों से समझा जा सकता है जो समबल दोनों ही तल्ल
 हैं । एक तरफ, वह एक सरल समुदाय को स्वयं और एक जटिल समुदाय को
 स्पष्ट बणित करता है तथा स्पष्टावस्था को युद्ध और वनों के भेद का जनक
 बतलाता है । इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि एक सरल समुदाय ही आदर्श होता
 है । दूसरी तरफ इस बात पर बल दिया गया है कि वह एक जटिल-समुदाय को
 ही आदर्श राज्य के रूप में मानता है और फिर सर्वत्र यह प्रतिपादित करता है
 कि ऐसा राज्य निरन्तर युद्ध प्रथमा उसकी संघर्ष में ही उत्पन्न रहेगा । जेटो
 के अभिप्राय को कोम-सा विचार सही व्यक्त करता है ? मैं सोचता हूँ सही
 विचार यह है कि वास्तव में वह एक सामग्री आदर्श का निर्माण करने की
 विफल चेष्टा नहीं करता बरन् मानव-समाज की प्रकृति को समझने की चेष्टा
 करता है । इस दृष्टिकोण को समझने के माध्यम से हमें मानव प्रकृति के सभी
 जटिल तलों का वर्णन करना पड़या चाहे वे स्पष्टता के स्रोत ही क्यों न हों ।
 दूसरे प्रकार व इस हमें यह कह सकते हैं, कि आदर्श समाज का वर्णन करते
 हुए वह यह नहीं मान लेता कि वह समाज आदर्श मनुष्यों से ही निर्मित
 होगा । इसकी बजाय वह यह मानता है कि उसके समुदाय क सभी सदस्यों
 को एक जटिल समुदायन-की आवश्यकता होगी । उसके अन्त में वे भारत
 नियन्त्रण की प्रकृति की ओर जाएँगे और इस प्रकार की प्रकृति को पैदा करने
 में अधिकतम सबस्य निरालय प्रसमर्थ रहेंगे । अतः एक आदर्श समुदाय भी पूरी

१. वह वह राज्य को एक सामग्री आदर्श के रूप में उपलब्ध करने के लिए
 कष्टक होता तो वह शक पर वह बता कि कुछ और सरकार की व्यवस्था की
 अर्थात् आन्तरिक सन्तुष्टता की अर्थात् परिशुद्ध समुदायों में विज्ञान के
 अन्तर्गत तथा परिष्कारण के अन्तर्गत करने की उसकी प्रकृति से वह स्पष्ट बाधा है कि
 आन्तरिक शासनका को स्वीकार करने की प्रकृति के अन्तर्गत बाधा है कि
 वह एक सामग्री आदर्श राज्य की अर्थात् एक विशेष राज्य का अन्तर्गत कर रहा है ।
 जेटो के उत्तर समुदाय की माध्यम के निष्पत्ति में प्रकृत समुदाय के साथ अन्तर्
 परिचित करके संस्था बना दीकत रहेगा । मोर्डेन के समुदाय में उत्तर का स्थाय
 नहीं है और अन्त निमाजन भी प्रतिकूल से हो है व साथ ही संघर्ष का प्रभाव भी
 नहीं है ।

तरह से रखना तथा अपने सभी भागों में धारण नहीं होना। उसका स्वस्थ होना इसी बात पर निर्भर करता कि सामाजिक भाव स्वस्थ है और वह उसके प्रत्येक भाग में व्याप्त रोग को रोकने में समर्थ है ताकि वह फैलकर समस्त समुदाय के जीवन को भीतरतापूर्वक प्रभावित न कर सके। अतः महत्त्वपूर्ण विचार उस प्रकार के जीवन पर निर्भर करता है जो घासकीय बन में सम्बन्धित होता है। इसके लिए प्राथमिक रूप से यह धारणात्मक हो जाता है कि घासकीय पण घासधानी से जुड़े हुए तथा पूर्णरूप से विविध होने चाहिए क्योंकि उनका कार्य संरक्षण तथा घास के रूप में दुबना होता है। मुकरात का भी कदाचित् यह मत नहीं था कि इन दोनों कार्यों को भिन्न समझा जाए, और वे विभिन्न प्रकार के सोपों को बिये जाने चाहिए। उसी तरह जिस प्रकार कि वह कुछ ही बार में कुछ सैद्धांतिक अध्ययन तथा व्यवहार में उसकी परिणति के अन्तर्गत रूप से मायता देता हुआ दिखाई नहीं देता। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि धर्म-विनाश के सिद्धान्त पर पर्याप्त रूप से प्रकाश नहीं डाला गया। बार में परन्तु ने इसको सही रूप देने का प्रयास किया है।

प्लेटो ने अपने नीचे प्रतिपादित करते हुए कहा है कि जो सोच राज्य की रक्षा तथा उसके घास के लिए तयार किये जायें उन्हें निम्न स्तर की प्रकृति के संसर्ग से वृत्त करके रखना चाहिए, और उन्हें समस्त समुदाय के हित में अपने-आपको धनत्व रूप से समपंख करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस प्रकार का शिक्षण निजी सम्पत्ति तथा पारिवारिक जीवन के उन्मूलन का कारण बन जाता है। इसके महत्त्व पर इस पुस्तक में पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला जा चुका है। इसी में राज्य में न्याय की प्रकृति तथा वैयक्तिक लोगों के विभाजन के सामान्य विवेचन को भी सम्मिलित किया गया है। व्यक्तिगत सम्बन्ध में न्याय की व्याख्या समान स्पष्टता के साथ नहीं की गई है। प्लेटो के विवरण में इसे धारण-समय से वृत्त करना कुछ कठिन है। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक व्यक्ति एक राज्य के धर्म वृत्त-वृत्त अस्तित्व से सम्बन्धित भागों के कार्यों को ठीक नहीं कर सकता, परन्तु इसके विवेचन की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

कुछ पाठक प्लेटो के इस कथन पर असंतोष व्यक्त कर सकते हैं कि लोगों को उनके अचित्त स्थान में रहने के लिए औचित्य के रूप में भूट का प्रयोग धारण होता है परन्तु वास्तव में मिरजाबरी ने सभी युगों में यही किया है विशेषतः तब जबकि वे राज्य के नियन्त्रण में रहे। विम्वन के कठने का भी यही तात्पर्य था कि सभी वर्ग एक न्यायाधीश के लिए सामाजिक होते हैं। वर्मनी के उद्घाटन की अपेक्षा अन्य कोई भी सोपों में पवित्रता को प्रोत्साहन देने के लिए इतना उत्पन्न नहीं होता। प्लेटो के कथन की वास्तविकता उनके वैयक्तिक भूट और धारणा के भूट के नेत्र में निहित है। वैयक्तिक धारण की

सप्रेक्षा नायिक-प्रसन्न उठ सूरत में करार नही होता जब कि उनकी प्रकृति तात्त्विक यथार्थता पर बल देने की होती है। उदाहरण के लिए यह प्रसन्न होना कि बुद्ध व्यक्तिमियों को पाताल में ले जाकर दण्ड दिया जाएगा परन्तु यह सत्य है कि उनके बुद्ध कार्यों का ऐसा परिस्साम होता है जो स्वयं उनके लिए तथा दूसरों के लिए अतिशय दुर्भाग्य-पूर्ण होते हैं। मानव-जीवन को प्रभावित करने वाले बुद्ध प्रसन्नों की व्याख्या पर्याप्त रूप से मुश्किल से ही की जा सकता है और मुश्किल से ही अत्यधिक सही माप में उसके उत्तर दिये जा सकते हैं। उनके महत्त्व को समझने के लिए ग्राम सबसे अच्छा तरीका कास्मिक कथाएँ होती हैं। निस्सन्देह ही प्लेटो के मुताबिक उन घनेकोँ मठों से अधिक घतिरंजित नहीं हैं जो हमारे मध्य प्रचलित हैं।

शासकीय वर्ग को ही जाने वाली शिक्षा के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए,^१ कि होमर के प्रति की गई कठोर आलोचना पर अत्यधिक समीरता से ध्यान नहीं देना चाहिए। यह स्मरण रहे कि प्लेटो के जमाने में होमर यूनान का केवल लोकप्रिय गीत नहीं था बल्कि वह वहाँ की नायिक और कास्मिक कथाओं में भी अग्रगण्य था। प्लेटो को होमर को कवि के रूप में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु वह उसे वास्तविक के रूप में मान्य तथा बच्चों के लिये कथाओं की सामग्री जुटाने वाले के रूप में अक्षतोपयोग पाता है। प्रायुक्त जगत् में बहुत लोभ कथाएँ लिखते हैं परन्तु सामयिक उन लोगों के लिए भी प्लेटो का कथन विचारणीय होगा चाहिए। जहाँ तक नायिक पुस्तकों का सम्बन्ध है दुर्भाग्य से उन्हें बदलना असल काम नहीं होता पर उनकी आलोचना और व्याख्या अबका व्याख्यास्वर किया जा सकता है। प्लेटो ने यही काय किया है जो कि भावकम व्याख्याकारों और टीकाकारों का होता है।

नाट्य कला की आलोचना अधिक समीर रूप में की गई है। इसका कारण प्लेटो की बड़ी चिन्ता थी कि राज्य के शासकमण अपनी लिच्छा में एकमत हों। अनेकप्रकृता उनके कर्तव्यों के उचित बहान में बाधक होती है। प्लेटो स्पष्ट कुछ प्रतिभ्रष्टापूर्वक ही (स्वयं एक नाट्यकार होते हुए भी) इस प्रकृति को बहान करने के लिए बाध्य हुआ था। यह विमर्शक बात है कि प्लेटो ने इसका अनुसरण कर उससे भी कहीं अधिक प्रतिच्छा का स्पष्ट परिचय दिया है।^२ उसके दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है। यदि हमें शासक-जग

१ प्लेटो की 'रिपब्लिक' में जो कुछ सामान्य आलोचनाएँ सोक्रेटी की विमर्शोत्तर 'एथिपोस्टेम्' दृ. सं. २, २६ में प्राप्य हो सकती हैं।

२ 'विमर्श' में जो कुछ भी है वह सब सं. १५। प्राथमिक शिक्षा में नाट्य-प्रदर्शन के महत्त्व पर जो बल काटते हैं कुछ ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में अन्धी तरह से प्रकट किया है।

को रक्षता है तो उनमें कुछ निरिच्छत मात्रा में कटोर धनसंचयन होना चाहिए। उन्हें पार्सर्स सम्प्रदाय की कपरेखा जमिंदार व्यवस्था कठोरता के समान अधिक होना चाहिए। प्लेटो का यह कथन कि शासक वर्ग के भावों के पास रोनी होने का समय नहीं होना चाहिए उसकी कटोरता को अरम-सोमा पर पहुँचा देता है। मुद्राराव और प्लेटो दोनों में ही कठोर उपस्थिति के कारण मिलते हैं।^१ यद्यपि मुद्राराव में उसकी कुछ प्रकृति तथा मरत कर देने वाले उपहास की मात्रा विशेषतः पाई जाती है जिस अद्वितीय स्वयं अपने ऊपर प्रयुक्त हो जाने पर भी संकोच नहीं किया।^२

शासकीय-व्यय के परिवार के उन्मुखन के लिए पंचम पुस्तक में अधिक दृढ़ता व साप साग्रह किया गया है। और फिर महिलाओं की स्थिति पर विचार किया गया है। प्लेटो कभी-कभी महिलाओं का नागरिक अधिकार देने वाला प्रथम मता समझा जाता है। यह पुस्तकों का विशेषतः अधिक स्पष्ट है कि क्या वास्तव में उस यह गौरवपूर्ण सम्मान दिया जाना चाहिए। उसकी दृष्टि लक्षण संबंध परिवार से मुक्त होने के अपने एकमात्र नियम की ओर रही है और महिलाओं के स्वतंत्र-विषयक उसकी व्यवधारणा महिलाएँ निम्नतर कोटि की हैं पर धारित है। उसकी यह विचारधारा टिप्पणमें अधिक स्पष्ट रूप से सामने पायी है (४२ की) वह इस विषय पर बड़ी मिलनसारता और कुटिलता से कर्मों के स्पष्ट यंत्रों को व्यवहारना करता हुआ-सा प्रतीत होता है। वह छोटे वर्गों की शिक्षा और उनकी बेसमयान के लिए तथा बृहत्त्व के प्रवर्ध के लिए महिलाओं की विशेष योग्यता का कोई विचार नहीं देता। यहाँ तक कि इस विषय में वह हॉमर से कुछ सीख सकता है।^३

इस पर अपने के व्यवहार के लिए यंत्रों को विशेष रूप से अन्वेषण समाना वा सकता है। मुद्राराव की राय नहीं सर्वोपर्य निरीक्षण थी जिसमें पहले पारसीक-सहितुता की विज्ञापक-तन्त्रि को मन्त्र दिया। वह जान सकता है कि वह गरवी व्यवस्था यौत व्यवस्था यदाव की किसी भी मात्रा को सह सकता था।

इसके अन्वेषे व्यवहार के विच्छिन्न तथा विन्वोन्वित में प्रकृत विन्ने जा सकते हैं। वह कहा जाता है कि वह परिच्छोपान में उसकी मन्त्र प्रवर्धित थी तो कोटिओं में से उन्वाराव पन्त्र करके हो गये इसलिये कि वह एक गण्य अस्ती जायसी की तुलना उसकी मन्त्र के साथ करने के लिये वह अन्वेषे व्यवस्था प्रकृत प्रायः हर उन्हें। कोई सुन्विक से ही वह अन्वेषे कर सकता है कि प्लेटो ऐसा कर सकता था। मुद्राराव के सामान्य अरिच और प्रमाण का कथन बचान भी अर विच्छेद कोट के द्वारा उन्वोटीय वि पैम एकद्विच मिशन में विच्छापूर्वक तथा कोटिप्रवर्ध से किया गया है (अर्थात् वह-सांख्यिक व्यवहारों के द्वारा साम्य रूप-का गया है)। मुद्राराव से कोटिटी में अर्थात्-वह उन्वेषे व्यवस्था के अन्वेषे एक महिला द्वारा रचित है।

राष्ट्रीयता की विचारधारा से हम भ्रान्ति में नहीं पड़ना चाहिए। प्लेटो वास्तव में किसी 'खैरियत' मद्दान जैसे व्यक्ति के बारे में नहीं सोचता। मेरे विचार में उसके तात्पर्य के लिए वह तथा प्रेसिडेण्ट विलसन उदाहरण के रूप में बहुत अच्छे रहे। जिन्होंने राज्य की प्रकृति के बारे में उल्लेखोक्ति का अध्ययन किया तथा उसके प्राप्त के लिए एक विचारणीय अनुमति प्राप्त की। यह ध्यान रखना चाहिए कि 'विशेषज्ञ' शब्द का प्रयोग अनुमति के रूप में पहलुओं के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्ति को पैदा करने वाला हो सकता है। कभी-कभी हम लोग विशेषज्ञ से केवल यह तात्पर्य लेते हैं कि वह एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसने किसी प्रकार के कार्य में एक लम्बे घण्टे तक सम्भास किया है। इस घण्टे में तो लोक सभा का एक पुराना सदस्य भी राजनीति में एक विशेषज्ञ कहलाएगा। दूसरी तरफ विशेषज्ञ से हमारा तात्पर्य यह होना कि एक ऐसा व्यक्ति जिसने कुछ विशेष कार्यों से सम्बन्धित शिक्षाओं के उच्च व प्रचुर अध्ययन में अपना जीवन समर्पण कर दिया हो। इन घण्टे में पेरिकीज की धारणा परन्तु विशेषज्ञ कहलाएगा। इसके अन्तर्गत प्रो० डायसी ने अपनी पुस्तक 'बी स्टेटमेंट्स ऑफ ग्रीक थिंकिंग' में अच्छा विश्लेषण किया है। प्रथम घण्टे के अनुसार ग्रीस में विशेषज्ञ नहीं था परन्तु अपने राजनीतिक समस्याओं पर प्रचुरमात्रा में चिन्तन किया था और अपने समय की राजनीतिक समस्याओं को ध्यानपूर्वक देखा था। प्रो डायसी ने इस पूर्वक यह प्रतिपादित किया है कि कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर जैसे उस समय के व्यावहारिक राजनीतिकों की धारणा प्रथम वास्तविक मूक प्रदर्शित की थी। गिस्समैड एक विशेषज्ञ नहीं होता है जो प्रायः उन दोनों घण्टों में विशेषज्ञ हो। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वर्क को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है परन्तु प्रो० डायसी ने स्वयं वर्क का एक कथन उद्धृत किया है, जिसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि कभी-कभी व्यावहारिक अनुमति लक्ष्य प्रयोगिता की मुश्किल होती है। वर्क ब्रूटा से प्रस्तुत करता है कि यह यही तौर पर कहा जा सकता है कि कार्यालयों में काम करने वाले प्रथमिक विपुल लोगों में बिरता ही ऐसा होता है जो बिलक्षण तौर पर मुकद्दम हुए विचार का हो। उनकी कार्यालय में काम करने की धारणा उन्हें किसी कार्य करने में जिस रूप में वह व्यवहृत होती रही है उससे प्रथम महत्त्वपूर्ण रूप से लोचने के लिए समय नहीं देती। यह हम सामान्य धारणाओं के लिए धारणाया जाता है यतः ऐसे लोग जो कार्यालयों में पलते हैं वे तभी तक सही ढंग से काम करते हैं जब तक व्यवस्था अपने सामान्य ढंग से चलती रहती है, परन्तु जब विधान अनुरूप टूट जाते हैं, बाड़ धारणा है और जब एक नया हलचलमय रूप उपस्थित हो जाता है, व्यवस्था

१. "बी स्टेटमेंट्स ऑफ ग्रीक थिंकिंग" पृ० ११४ से उद्धृत।

प्लेटो की कई बातों के लिए मार के इतिहास से उदाहरण देना सरल होना। क्रैबोलिक धर्म के अनुयायियों के प्राप्यारिम्भक पथ प्रदर्शन के साथ सामन्त छाही पद्धति प्लेटो के प्रार्थन सिद्धान्त से कुछ भिन्नगी-जुमती है। यद्यपि एक विशाल पैमाने पर यह देयता रोचक रहेगा कि उमन कई बार कुछ धर्मिक-साधन को तथा इसके बाद में बहुतरुण और लोकतन्त्र के कुछ रूपों को स्वाम किया है। नपोमियन के उद्भव का एक ऐसा उदाहरण लिया जा सकता है जिसमें लोकतन्त्र निरंकषता में बदल जाता है और धार्मिक समय में इसका कुछ उदाहरण सायब रुस में प्राप्त हो सकता है। इनमें जोड़ा-सा खिह है कि प्लेटो ने इन प्रवृत्तियों के बिबरण में अपनी पूरी मुक्त से काम लिया है। परन्तु इस विषय का धार्मिक विवेक हम यहाँ नहीं करेंगे।

यह कहना कि विभिन्न प्रकार के जीवन की प्रयत्नता के मूल्यांकन में हम जहाँ लोगों के नियंत्रण को स्वीकार कर सकते हैं वो सभी प्रकार के धार्मिकों की अनुभूति रखते हैं' एक ऐसा कथन या जिस धार्य धनकर जे एन० मिश ने प्रस्थापित किया। प्लेटो उसका प्रयोग मिस से भी धार्मिक दुकतापूर्वक कर सकता था परन्तु वह प्रयत्नता का मूल्य का धर्म्यतम माप नहीं समझता था। परन्तु इस पर विचार करना भी अपने क्षेत्र से बाहर की बात है।

नवम पुस्तक के अन्त में प्लेटो निरिषत निर्वेध देता है कि वह अपने प्रार्थन राज्य को वास्तव में कार्यान्वित होने वाला नहीं समझता और वास्तव में वह इस बात को पहले भी कह चुका था। यह एक ऐसी धनधारणा है जिसके द्वारा एक धर्म्य नागरिक को किसी राज्य-विशेष का सुधार करना चाहिए वह धन-प्रदर्शन पा सकता है। और यह भी संकेत किया जा चुका है कि एक धर्म्य नागरिक धार्य सामान्यतः एक राजनीतिज्ञ नहीं होता बरन् वह राजनीति से अपनी सम्बन्ध केवल तभी स्थापित करेगा जब वह राजनीति में महत्वपूर्ण सुधारों का समावेश करने का अवसर देखेगा। इन प्रकार अन्त में राज्य के जीवन की प्रतीक्षा स्थितियत जीवन में ही प्रार्थन को प्राथमिक रूप से प्राप्त किया जा सकता है। अपसम्भि पृथक्-पृथक् स्थितियों में नहीं अपितु

के लिए बहुत बड़ा आधार विचार देता है। मेरा विचार है कि अन्त में ही सरल प्रवृत्ति भी और धार्मिक उदाहर-मानवता परन्तु राजनीतिक धर्म में ऐसे स्थिति-यैर के लिए कोई आधार नहीं विचार देता। रिक्लिन्ड स्ट्रेट्समैन 'द ला' की छाही पर मैं यह सोचना है मेरे विचार में यह स्पष्ट है, कि अन्त में ही धर्मिक प्रवृत्ति का। परन्तु—उन सबकी प्रकृति—जहाँ एक प्राचीन विचारों के धार्मिक विचारों के साथ अन्त में ही प्रवृत्ति और स्पष्ट की प्रतीक्षा काव्यतः और टिकन के समान धार्मिक संभव है।

परन्तु अन्त में ही प्रवृत्ति का स्पष्टता बहुत धार्मिक कोशिश की भी इनमें से किसी के अन्त में कुछ ही नहीं घोषा प्रवृत्ति होता।

सामाजिक व्यक्तिता में ही संभव हो सकती है ऐसे व्यक्ति से जो स्वयं के साम्राज्य को अपने हृदय में संजोये रक्ता है। इसी पर मगशी पुस्तक में फिर बल दिया गया है।

बहु कथन कि घादसं राज्य की पड़ति स्वयं में ही स्थापित होती है, प्रायुक्तिक पाठक के लिए अर्थतोषप्रद बात हो सकती है। निम्नान्नेह यह कुछ पार्श्वकारिक है किन्तु यह धीन^१ के इस कथन से उत्पन्न अधिक शरय है जिसके अनुसार इसकी सृष्टि पूर्णतः चेतना में होती है। जैसा कि मैं प्लेटो के घादस्य को समझा हूँ वह वस्तु की प्रकृति में व्याप्त है और धीरे-धीरे उसका अनुसन्धान तथा कुछ संघों में साक्षात्कार किया जा सकता है।

दशम पुस्तक का विश्लेषण करना अत्यधिक कठिन है और मेरा विद्वान् है कि उसका अर्थ खरैर मतत समझा गया है। पहले तो ऐसा प्रतीत हो सकता

६ दशम पुस्तक का विश्लेषण है कि यदि यह एक परिधिष्ट है तो वह एक ऐसाई को जो अस्मन्वय विषयों की व्याख्या करता है और जो अपेक्षाकृत इस संघ का महत्त्वपूर्ण भाग नहीं है और यह इस कृति के लिए जो अस्मन्वय इतने कलात्मक रूप से संयोजित की गई है एक विशाल-सी बात होगी। परन्तु मैं सोचता हूँ कि विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तो विचार विमर्श को अपने स्वाभाविक रूप में साकर समाप्त कर देगा है और इस छेप भाग को अपेक्षा कम कलात्मक नहीं है।

इसे यह सब समझने में जो बाधा उपस्थित करती है वह है इत संपूर्ण संघ में प्रयुक्त कबोपकरण की धीनी जिसे कुछ संघों में इस पक्षानने में अद्यतन रहते हैं। कुछ संघों में सर्वाधिक वाक्य विचार में रहे हैं कि प्लेटो का मुख्य उद्देश्य एक पूर्ण राज्य का वर्णन करने का था और वास्तव सचसे आशा बाधा प्लेटो द्वारा प्रयत्नी गई विधि में हास्य का पुट है, जिसका मुख्योक्त करने की कोशों में कोम्यता नहीं है अथवा यह कथना अधिक उत्तम होगा कि यह सुकराव की विधि है। प्लेटो विधिपतः जब सुकराव के नाम से मिलते हैं तो वे तभीर विषय की व्याख्या को हास्य के एक ऐसे आकरण से युक्त कर देते हैं कि उत्तको समझ पाना कठिन हो जाता है। परन्तु वे सोच जो इस सम्बन्ध में उसकी विधि से परिचित हैं वे अन्धी तरह से जानते हैं कि न। वह किसी विशेष हास्य-रमक धीनी से उत्पन्न होकर भाव बढ़ता है तो वह अपेक्षाकृत एक तभीर उद्देश्य को सुसम्भवा है, अथवा उसे कोई तभीर विषय सुसम्भवा पकटा है तो वह एक हास्यात्मक धीनी को धागाता है। दशम पुस्तक के अन्त में हमारा परिषय

१ "प्रिथिव्यस्य वाक्यो विविक्त आशीयेत्यस्य" इय सम्बन्ध में प्रो० कोलिके द्वारा हास्य और मूड के बीच में प्रयुक्त मीह का अन्वेषण किया जा सकता है—देखें 'ओल्ड ररर एरर टुक्ल आरिजियर' अध्याय ३।

घमन्त्र के सिद्धान्त में कहाया जाता है जिसके बारे में हम उसकी घम रचनाओं द्वारा यह समझ पाते हैं कि ज्योती इसके घामयिक महत्त्व होता है। परन्तु यह कुछ धारणाजनक-सा लगता है कि उसने इस सिद्धान्त का समालोचनी पुस्तक में किया है जो मुख्यतः राज्यों के अधिकार से सम्बन्धित है। परन्तु क्या यह मुख्यतः राज्यों के अधिकार से ही सम्बन्धित है? केरे विचार में ज्योती में बताया है कि यह मुख्यतः मानव जीवन में धीमे-धीमे के मुख्य से सम्बन्धित है और कुछ घां में — और राज्य घामयिक स्वयं का स — राज्य के जीवन में देया जा सकता है और इसका पूर्ण सामाजिक धारणा के विकास में किया जा सकता है।

परन्तु यह पूछा जा सकता है कि नाट्य घमना अनुकरणात्मक कला का उसके साथ क्या सम्बन्ध है? हमारे लिए घामय कुछ नहीं परन्तु ज्योती के लिए निश्चय ही बहुत अधिक है। राज्य सम्बन्धी पुरा-का कुछ विवरण विधान रूप से विचार्यक और नाट्यत्मक घमों में प्रस्तुत किया गया है। हमारे सामने प्रत्येक मोड़ पर सामाजिक विचार उपस्थित किये गए हैं — नवम पुस्तक में भी कम मात्रा में नहीं — और ज्योती भी व्याख्या की इस घमत्वपूर्ण पद्धति के प्रति ध्यान धारणित करने के लिए उत्सुक है। इसी को प्रस्तुत करने के घामय से यह यह घामय करता है कि कला का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है परन्तु उसका यह कार्य अधिक्यजनना करने का है न कि सीधा-सादा धार्मिक विचारण प्रस्तुत करना है। घिया में कला के रचना का विवरण ऐसे समय उसने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। परन्तु — घम यह उस पर फिर नये ढंग से बस देता है और वास्तविक कला के विविध वर्ग पर विचार करते हुए उस घमभंगने का प्रयास करता है। मेरे विचार में उसके उद्देश्य को यहाँ पर सामान्यतया समझ समझा गया है। यह निश्चय ही कुछ परेशा। की बात होगी (विद्यमान और स यह हम यह मुझा हैं कि यहाँ मुझा को बोधते हुए माना गया है) कि कला के धर्मिकजननात्मक कार्य के अधिक विघेनात्मक विचार की उत्पत्ति के रचना पर यह घमैसाहत रसात्मक उत्पत्ति के अधिक कुछ घम-रणात्मक रणा की नियमात्मक घामोपना की उत्पत्ति करता है। इसका घमना घम यह उन पर घमने प्रहार में हेरोड की भी अधिक्यमित कला हुआ प्रतीत होगा है यह न केवल अधिक मघार्थकारी नाट्यकार को घमने उही मार्ग पर होते हैं उन्हीं का ही विरिदान करता है कच्छ होमर तथा घम घम कलाकारों को भी यहाँ तक के केवल या मुख्य रूप से अनुकरणात्मकता की घमनाते है। प्रत्येक घाठक घमना करता है कि घम घम कुछ घमिर्जन है। परन्तु निश्चय ही घामय की बात यह नहीं है कि ज्योती न यह इतना सघ विद्या है परन्तु घमैसाहत यह घमना

जाना कि जो बात प्रत्येक पाठक के लिए स्पष्ट है वह प्लेटो के लिए स्वयं स्पष्ट नहीं थी और कि उसी यह प्रकृति भी नहीं थी कि उसके पाठकों के लिए यह स्पष्ट हो। प्लेटो की धारणा स्पष्ट रूप में यह कहने की नहीं थी कि 'यह एक मजाक है भ्रमवा यह एक पौराणिक कथा है' भ्रमवा यह कि वह भ्रान्तिपूर्ण है। परन्तु मेरे विचार में एक व्यक्ति जो उसकी इति को पढ़ता है भ्रमवा बहुत सारे लोग जो उसकी कृत्तियों को पढ़ते हैं वे—चाहे जर्मनी के टीकाकार ही क्यों न हों वे सब उसमें एक मजाक भ्रमवा भ्रान्ति पाएँगे ही। निश्चय ही उसने अपने हास्यास्पक उद्देश्य को इस विषये बात तक नहीं छिपाया है बल्कि इसे और अधिक स्पष्ट करके बताने के लिए विशेष चेष्टा की है। वह न केवल बेहूदा यार्तें हकट्टी करता जाता जाता है, वह न केवल यह प्रकट करता है कि द्रविणस्य उसके समर्पण के लिए पर्याप्त समर्पण है वरन् वह वास्तव में अपने होमर-सम्बन्धी भ्रान्ति मजाक को अपने धारणा सिद्धान्त सम्बन्धी भ्रान्ति मजाक के साथ समन्वित कर देता है। उसने इसे एक ऐसा दर्प दिया है कि वास्तविक रूप एक ही है और उसे ईश्वर ने बनाया है। यदि प्लेटो ने कभी यह समझा होता कि उसका तात्पर्य कुछ इसी तरह का दर्प देता है (जिस पर मैं संश्लेष करने का साहस करता हूँ) निश्चय ही उसने कम-से-कम उस समय तो नहीं समझा था जब उसने रिपब्लिक को लिखा था। मेरे विचार में उसके कहने का तात्पर्य केवल यही था कि उसके धारणा सिद्धान्त का ऐसा विश्लेषण करना होमर के उस विश्लेषण के समान ही होया जिस पर कि वह विचार कर रहा था। वह साहित्यिक दृष्टि से नृत्तिपूर्ण रचना पर धारणा की दर्प करता है। उसका पूरा-का-पूरा ग्रंथ मुझे ऐसा लगता है जैसे कि वह निदान स्पष्ट रूप से 'कोसाहलपूर्ण मजाक'—या सुझावनी मूर्खता का एक दृश्य हो—किन्तु उसके लिखने की विधि एकदम सुकरात को पद्यति के अनुसार है तथा वह एक यन्मीर उद्देश्य को निवेदित है। सुकरात प्रति रचित सुझावनाटकों के जमाने में रहते थे जो सब उनकी किल्ली उड़ाने के लिए लिखे जाते थे तथा सुकरात कदापि यह प्रकटित करना चाहता था कि वह उन सब का प्रमुत्तर देने के लिए पूर्ण रूप से समर्थ था। वास्तव में वह यही हम से कहता भी है कि उसका मही उद्देश्य था। प्लेटो (भ्रमवा सुकरात) का होमर के साथ कोई वास्तविक झगड़ा नहीं था बल्कि वह अपनेसाहस बलि भ्रमवा भेदे-जैस कि को प्राक्निष्ठता देता। उसका झगड़ा वास्तव में कला में भ्रान्त-व्यार्थवाद के साथ था (जिसे व्यार्थवाद के रूप में अपने समय में ही बहुत बहूने विम जाएँगे) और उससे भी ज्यादा उसका झगड़ा धारणा कला में व्यार्थ मुन का विघ्ना रूप से व्यार्थ विश्लेषण करने के साथ था। वह उस मूर्खता पर प्रकाश डालना चाहता है जिसमें यह मान लिया जाता है कि व्यार्थ वाक्य भ्रमवा

यथायं कमा सामान्यतया गुरु रूप से धरणा मुख्य रूप से धन धरणात्मक होता है। यद्यपि यह मानता था (जैसा कि मेरे विचार में प्रत्येक ही मानता ही चाहिए) कि सर्वोत्तम कला भी धनुकरण के तत्त्व के मुक्त नहीं होती परन्तु उद्यम विश्वास में साधता है बस उसी धर्म में या जिसमें धनवीर्य विश्वास करता था और जिसे उद्यम (समयम प्लेटो की ही माया में) हेमन्ट के मूढ़ व व्यक्त किया है — अभिनय का उद्देश्य जिसका धन दोनों पहलुओं और धन मूल धरणा बतमान में यह प्रतिपादित करना होता है उन बहु प्रकृति को सर्वत्र दिखाना वहाँ को स्वयं धनवीर्य का प्राप्ति का साधन करना धनवीर्य की प्रतिष्ठा का विरसकार करना और उसी मूल तथा उसी काम की धनवीर्य प्रतिष्ठा और बर्बादों का प्रकट करना होता है।”

प्लेटो का कहना है कि एक स्टाटी निवासी को जब यह कहा गया कि वह एक कलाकार को एक बुलबुल की तरह गाते हुआ सुन सकता है तो उसने उत्तर दिया “मैं तो स्वयं बुलबुल को गाता हूँ। इसी तरह का समान उत्तर कला के सभी शानों के प्रति दिया जा सकता है। यदि कला का उद्देश्य केवल उन बस्तुओं का धनुकरण करना ही है जो देखी या सुनी जा सकती है और प्लेटो का हामर पर, यथा होमर के कुछ विभेयसुकृतियों पर (जो उद्यम प्रकार मूढ़ और पाश्चिम्यपूर्ण रहे बीजते हैं जैसे कोई भी प्राकृतिक समय में किये गए बुद्धिपूर्ण मनुष्य का प्राचन इसी बात को स्पष्ट करना है। यह सही है कि खीरस की घोड़े दूरी नाइटिगेल' यथा संस की स्काईलाक में एक पक्षी के बीज का धनुकरण है परन्तु कवि वास्तव में हमें जो कुछ प्रदान करता है वह गाने की शक्ति नहीं बल्कि गाने के द्वारा दिव्य विचारों और भावनाओं का अभिव्यञ्जन होता है उन्हें प्रदान करता है। मैं सोचता हूँ कि प्लेटो का अभिप्राय भी काव्य के इसी कार्य से था। काव्य वास्तव में उन सब बस्तुओं को स्थानीय वस्तुओं और नामों के साथ जोड़ देता है जो वायवीय धुन्धला से सम्बन्धित नहीं होते बल्कि प्रकृत्य और धर्म्य होते हैं तथा उन्हें मूल ताकिक रूप से बलिष्ठ या सिद्ध नहीं किया जा सकता। प्लेटो यह प्रबोधित करना चाहता है जैसा कि धर्म्य कही किया जा सकता है कि किस प्रकार के काव्य को धर्म के लिए और धर्म को काव्य के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है और धर्म ही यह कहा जा सकता है कि प्रयुक्त कविमय इस पाठ को धीमे-धीमे तो कम-से-कम पीछे नहीं रहे हैं। क्या बातें और मठे स्पेन्सर और बर्ड्स-बर्ड तथा संस और टिन्सन (दूसरों का नाम नहीं है तो) सब-के-सब-कुछ संसों में उसके विषय नहीं हैं ?

इस प्रकार से काव्य तथा कला के धर्म्य रूपों व सही कार्य के विषय में
२. सनातन-दंगन की स्तूपेन्द्रा

उसका विश्वास क्या है। यह प्रदर्शित करने के उपरान्त वह उसे समझने के लिए धात्मा की भावबलता के सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा का उदाहरण प्रस्तुत करता है। हम उसके इस बलानर्धन दंत की दिवाइन कामंडी में बलिष्ठ विषय का बचपि बोझ किन्तु कुछ घटा में घबिक महान् धीर अभिध्म्यञ्जतात्मक रूप का पूर्वाभास मिल जाता है। जेने ने अपनी महान् समस्याओं की व्याख्या करने में इस प्रकार की पौराणिक कथा-व्यक्ति का प्रयोग बड़ी स्वतन्त्रता के साथ किया है। धीर उसका महत्त्व धन बहुत प्रशंसी तरह से स्वीकार किया गया है। नायक मुक्यतः उसी समय से जब से इस विषय पर प्रो. जे. ए. रिटवार्ट की अष्ट पुस्तक प्रकाशित हुई है। यहाँ हम इस विषय उदाहरण पर विस्तृत विचार करने के लिए आगे नहीं बढ़ेंगे क्योंकि इसका सामान्य उद्देश्य पर्याप्त स्पष्ट है। उसका ध्येय यह है कि इस अस्तित्वहीन विश्व में प्रकृत अस्तित्व में आने की सम्भावना वाले किसी भी विश्व में अन्ध्या अस्थित सामान्यतया, किसी भी राजनैतिक शक्ति में सीधे का। ये शक्त सेने से प्रकृत समय अपनी हृदय की इच्छा का प्रमुखार समान के जीवन को धाकार देने में समर्थ नहीं होया कम से-कम उसे अपने धातको जिस राज्य विधेय में वह रह रहा है उसकी अपेक्षा स्वयं के राज्य का नागरिक समझना होया। धीर ऐसे राज्य का सवस्य बनने पर ही हम यह दिखाने की आशा कर सकते हैं जो अन्तिम रूप से विस्वात शायक हो कि उसका जीवन वास्तव में धामन्धपूर्ण धीर विजयी है। हमें तक उसे किसी एक राज्य के सवस्य के रूप में नहीं बल्कि सवस्य ब्रह्माण्ड के सवस्य के रूप में समझना होगा। जेने का कहना तो यह है कि सवस्य होने के नाते उसका धामन्ध हम बात पर निर्भर करता है कि वह विकासोन्मुख मार्ग पर है धीर विश्व के अन्तिम ध्येय के साथ उसका सामञ्जस्य है। वह उसे पौराणिक कथा के रूप में प्रकट करता है क्योंकि इस विषय पर उसका अपना कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। हालांकि उसका यह दृढ़ विश्वास है कि वैमर्षिक धात्मा का जीवन उस विधि का एक धामन्धक भय है जो अपने-आपमें धारवत है। अपने इसी दृढ़-विश्वास के साथ वह बड़ी मुक्यता धीर सम्यता के साथ कथा हास्य रास अमकता धर्म धीर वर्णन के विषयण समन्वय से प्रस्तुत विषय को समाप्त करता है। इस प्रकार वह एक ऐसा धामन्धमुक्त धामन्धय प्रस्तुत करता है जो विश्व के कभी देखा नहीं।

परिशिष्ट (स)

सुकरात तथा प्लेटो पर टिप्पणी

अपने पूर्वलिखित विवरण में मैंने कई स्थलों पर ठीक से समझ न पाने के कारण यह उल्लेख किया है कि यह बताना कठिन है कि 'रिपब्लिक' का कितना अर्थ-विषय सुकरात के सम्बन्धित है और कितना प्लेटो से। यह एक ऐसा विषय है जिसकी मूल बगलवा की गई है फिर भी यह कहना कठिन है कि हम किसी अन्तिम निष्पत्ति पर पहुँच सके हैं। कभी-कभी हम बला को प्लेटोप्लेटीड¹ कहने का सोच संभवतः नहीं कर पाते क्योंकि अपनी अनभिज्ञता के कारण हम एक दूसरे को पहचान पाने में असमर्थ रहे हैं। यहाँ मेरा अविषय विश्व में प्रकट करना चाहता हूँ और जिसकी धार में संकेत भी कर चुका हूँ वह यह है कि इन में से कोई भी वास्तविक बलव्य कभी सुकृत्य द्वारा दिया गया या ऐसा हम मान लेने के अधिकारी नहीं हैं। परन्तु पहली पुस्तक में वह इस प्रकार से बोधता हुआ प्रस्तुत किया जाता है जिस प्रकार वह वास्तव में बोधा करता या और सेव कबोपकरण में सर्वत्र उसके बोधने के सहजे की अधिक या कम मात्रा में रखा की गई है परन्तु उसमें सोचने और जोड़ने के प्रकार का एक ऐसे ढंग से समावेश करवाया गया है जो अपेक्षाकृत स्वयं प्लेटो का ही है। मैं इस निर्णय पर प्रमाण रूप से उसको सीमा क ही आधार पर पहुँच सक्त हूँ। डिमोदियम में एलसीविवादीय को सुकरात की सीमा का वर्णन करते हुए निम्नलिखित

१ इसमें कोई उल्लेख ही नहीं है (जैसे किन्तु जल में) एक इनाम से अधिक कुछ नहीं था। मैं सोचता हूँ कि आर्यन (सीमा) भी एक उपनाम है। उसके पार के बारे में वह सोचते हुए कहा था, कि वह कबोपकरण है यही सीमा मानें तथा एक अत्यन्त न्यूनतम था। वह उल्लेख रहे कि आर्यन और अन्तिम प्लेटो के अर्थ थे। वह उल्लेख था उल्लेख है कि कबोपकरण है सीमा पार करने के अर्थ में। प्लेटो का अर्थ कि वह नाम परिच्छेदनीय था। नूनानी बोधों के कुछ पद्य अपने अर्थों में विशिष्ट रूप से धारणित है, जैसे सॉन्टीय (अरिष्टोपनीय) परिच्छेदनीय (अरिष्टोपनीय की अर्थ अर्थ), अरिष्टोपनीय (अर्थ-अर्थ) उनके साथ इसमें परिच्छेदनीय (अर्थ-अर्थ) को भी जोड़ना संभव है।

घर्मों में प्रस्तुत किया गया है 'उसके घर्म जब तुम पहली बार सुनते हो तो वे अग्राह्यतास्पद से लगते हैं। वह अपने चारों ओर ऐसी भाषा का परिवान सपेटता है जो विनाशी बन-बेकता की दशा के समान होता है क्योंकि उसकी भाषा में मधे मारने वाली धीर सुहरों तथा मोषियों धीर जमारों की-सी होती है और वह हमें सा एक ही बात को उन्हीं घर्मों में बोहराता है जिससे कि एक एका मनुष्य भी जो उसे नहीं जानता उसका उपहास करने के लिए प्रवृत्त हो जाए परन्तु पा पदों को हटाकर देखता है कि घर्म क्या है वह समझ पाता है कि वे ऐसे ही सारपथित घर्म हैं जो अपने में गर्भार एवं पवित्र घर्मों को धारण किये हुए हैं, जो ठीक होते हैं तथा जो एक मने धीर धारणीय मानव के सम्पूर्ण कर्तव्यों को प्रकट करने का विद्यासम सम्भाषण है।^१ मेरे विचार में हम यह मान सकते हैं कि सुकराज के बोसने के दश का यह एक मन्त्र रूप में सही विचारण है। यह सिनोफन के द्वारा प्रस्तुत किये गए अभिनेकों से तथा प्लेटो के कथोपकथन के एक विद्यास भाग जिसमें 'रिपब्लिक' की प्रथम पुस्तक को सम्मिलित किया गया है सर्वत्र ठीक संगत बैठता है। परन्तु बाह की प्रविष्टि पुस्तकों में तथा प्रथम कथोपकथनों में ऐसा बहुत कुछ है जिन पर निश्चय ही इस वर्णन को प्रबोध में नहीं लाया जा सकता। मेरे विचार में इस कथोपकथन में प्रयुक्त प्रतिक समृद्ध स्वयं प्लेटो की अपनी ही है। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि वह अपने प्रथम नेतृत्व करने वाले पात्रों को कभी-कभी जब वे प्रधीर हो उठते हैं तो उसी क्षणी में बुझाता है। ठीक जैसे ही, जैसे कि ऐसी ही परिस्थितियों में सेक्सुसियर अपने पात्रों को स्वयं अपनी ही प्रदान करता था। इस विस्मय के साथ मैं इसका स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि ऐसी सामान्य धारणा इसकी क्षणी पर आधारित है और इसकी पुष्टि उसकी विधि धीर उक्त में होने के परिचर्तन से होती है किन्तु इससे प्रतिक में इस जटिल प्रल पर कोई संसदा देने योग्य अपने आपको नहीं समझता। इस विषय पर प्रो० बर्ने तथा ए ई टेलर^२ की रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

१ यह संदर्भित में कथेय का अनुवाद है। मेरे विचार में कथेय का अनुवाद प्रथम ही नहीं है, किन्तु मेरे इसे करने का उद्देश्य भी वही है।

२ 'वेरिफा सोवियत' तथा प्लेटो की 'पारोमासि फॉड स्टोरी'। प्रो टेलर के विचार मुझे कुछ अभिहित प्रतीत होते हैं। जो जो ही कीलक के उल्लेखित दश प्लेटो पुस्तक में उनकी कुछ धारणाएँ हैं। इसी प्रकार की धारणाएँ भी विस्मय कोश की पूर्व कल्पना पुस्तक में भी हैं। यह विचार पर जो कुछ बात था, उसे संक्षेप में प्रो बर्ने की वेब विद्यासदी में उद्धृत तथा बहुत प्रथम संशुद्धनात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट (ग) पुस्तक-सूची

निम्नलिखित पुस्तकें इस विषय पर अध्ययन के लिए उत्तमसंगीय हैं

१ सामान्य समाज-शास्त्र पर—

| | |
|-------------|--|
| J J Findlay | An Introduction to Sociology for Social Workers and General Readers. |
| E. A. Ross, | Foundations of Sociology |
| E. Barker | Political Thought from Spencer to the Present day |
| G P Gooch, | Political Thought from Bacon to Halifax. |

२ सामाजिक पद्धतों में मानव प्रकृति पर—

| | |
|----------------|--------------------------------------|
| W McDougall, | An Introduction to Social Psychology |
| G Wallas, | Human Nature in Politics. |
| Bhagvan Das, | The Science of Social Organization. |
| Rudolf Steiner | The Three fold State |

३ सामाजिक एकता पर—

| | |
|--------------------------------------|--|
| H J W Hetherington and J H Muirhead, | Social Purpose. |
| W McDougall, | The Group Mind. |
| G. Wallas | Our Social Heritage. |
| Sir Henry Jones | The Principles of Citizenship |
| E. M. White | The Philosophy of Citizenship |
| J. M. E. McTaggart | Studies in Hegelian Cosmology (chap vii) |

४ सामाजिक संस्थाओं पर—

| | |
|------------------|---------------------------------|
| R. M. MacIver | Community |
| F H. Bradley | Ethical Studies. |
| G D H. Cole, | Social Theory |
| Ramiro de Maeztu | Authority Liberty and Function. |

५ परिवार पर—

| | |
|---------------|--|
| W Goodsell, | The Family as a Social and Educational Institution |
| W F Lofthouse | Ethics and the Family |

परिशिष्ट (ग) पुस्तक-सूची

निम्नलिखित पुस्तकें इस विषय पर अध्ययन के लिए उम्मेदनीय हैं

१ सामान्य समाज-शास्त्र पर—

| | |
|-------------|--|
| J J Findlay | An Introduction to Sociology for Social Workers and General Readers. |
| E. A. Ross | Foundations of Sociology |
| E. Barker | Political Thought from Spencer to the Present day |
| G P Gooch, | Political Thought from Bacon to Halifax. |

२ सामाजिक विज्ञान में मानव-प्रकृति पर—

| | |
|----------------|--------------------------------------|
| W McDougall, | An Introduction to Social Psychology |
| G Wallas | Human Nature in Politics. |
| Bhagavan Das, | The Science of Social Organization. |
| Rudolf Steiner | The Three fold State |

३ सामाजिक एकता पर—

| | |
|--|--|
| H J W Hetherington and J. H. Muirhead, | Social Purpose. |
| W McDougall, | The Group Mind. |
| G. Wallas, | Our Social Heritage. |
| Sir Henry Jones | The Principles of Citizenship |
| E. M. White | The Philosophy of Citizenship. |
| J M. E. McTaggart | Studies in Hegelian Cosmology (chap. vii). |

४ सामाजिक संस्थाओं पर—

| | |
|-------------------|---------------------------------|
| R. M. MacIver | Community |
| F H Bradley | Ethical Studies. |
| G D H. Cole | Social Theory |
| Ramiro de Maeztu, | Authority Liberty and Function. |

५. परिवार पर—

| | |
|---------------|---|
| W Goodsell | The Family as a Social and Educational Institution. |
| W F Lofthouse | Ethics and the Family |

Ellen Key

The Women Movement.
Love and Marriage
The Century of the child.
The Family and the Nation

W C. D and C. D Whetham,

६ वार्षिक संस्थाओं पर—

J Dewey
J J Findlay
L Ferriere
J M. Guyau
J MacCunn,
M. E. Sadler
S G. Hobson

Democracy and Education.
The School.
L. Autonomie des Ecoliers
Education and Heredity
The Making of Character
Moral Instruction and Training in Schools.
National Guilds and the state

७ प्रौद्योगिक-संस्थाओं पर—

S. J and B Webb
G D H. Cole
B A. W Russell,
J G Brooks,
G C. Field,
W Smart,
Sir H. Jones,
A. J. Penty
J W Scott

Industrial Democracy
The World of Labour
Roads to Freedom.
Labour & Challenge to the Social Order
Guild Socialism.
Second Thoughts of an Economist
The Working Faith of the Social Reformer
A Guildsman & Interpretation of History
Syndicalism and Philosophical Realism.

८ राज्य पर—

B Bonanquet
J H. Muirhead,
M. P. Follett
E. Jenks,
L. T. Hobhouse
F W Maitland,
C. D. Burns,
D G Ritchie

The Philosophical Theory of The State.
The Service of the State.
The New State.
The State and the Nation
The Metaphysical Theory of the State.
Collected Papers, Vol. III
Government and Industry
Principles of State Interference

९ न्याय पर—

W Jethro Brown,
D G Ritchie
L. Duguit,

The Underlying Principles of Modern
Legislation
Natural Rights.
Law in the Modern State

१० अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर—

J Westlake
G. L. Dickinson

International Law
Collected Papers on Public International
Law
The Choice Before Us.

| | |
|---------------|-------------------------------------|
| L S Woolf, | International Government. |
| J A. Hobson | The Frame work of a Lasting Peace |
| T Veblen, | Problems of a New World. |
| J J Rousseau, | The Nature of Peace |
| I Kant | A Lasting Peace (Ed. C. E. Vaughan) |
| | Perpetual Peace |

११ धर्म पर—

| | |
|------------------|--------------------------------------|
| B. Bosanquet | What Religion Is |
| A Clutton Brock, | Studies in christianity |
| J N Figgis, | Churches in the Modern state |
| S. Coit | National Idealism and a state Church |
| E. J. Urwick, | The Message of Plato. |
| E. Caird | Social Philosophy and Religion of (|
| J B. Crozier | Civilization and Progress. |

१२ परम आदर्शों पर—

| | |
|-----------------------|--|
| F J C. Hearnshaw | Democracy at the Crossways. |
| Prince Kropotkin, | Fields, Factories and Workshops. |
| B. A. W Russell, | Principles of Social Reconstruction |
| Sir H. Jones, | Idealism as a Practical Creed |
| B Bosanquet, | Social and International Ideals |
| C. D Burns, | Political Ideals |
| E. Carpenter | The Healing of the Nations. |
| Dean Inge, | Outspoken Essays. |
| B. Brandford | Janus and Vesta. |
| P Geddes and G Slater | Ideas at war |
| J B Crozier | Sociology applied to Practical Polit |
| A. J. Penty | Old Worlds for New |
| W H Dawson, | After War Problems. |
| Lord Leverhulme | The six hour Day and Other Inq Questions. |

